निष्पक्ष भाव से लिखा हुआ
एक उपयोगी ग्रन्थ

लेखक :—

श्री० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए०

प्रकाशक :—

"चाँद" कार्य्यालय

इलाहाबाद

(नवीन संशोधित संस्करण)

मूल्य सजिल्द पुस्तक का ३) तीन रुपये

Pages 1 to 80 printed at the Hindi Sahitya Press and the rest of the Book and Illustrations printed and published by K. Sagal at the Fine Art Printing Cottage, 28, Elgin Road, Allahabad.
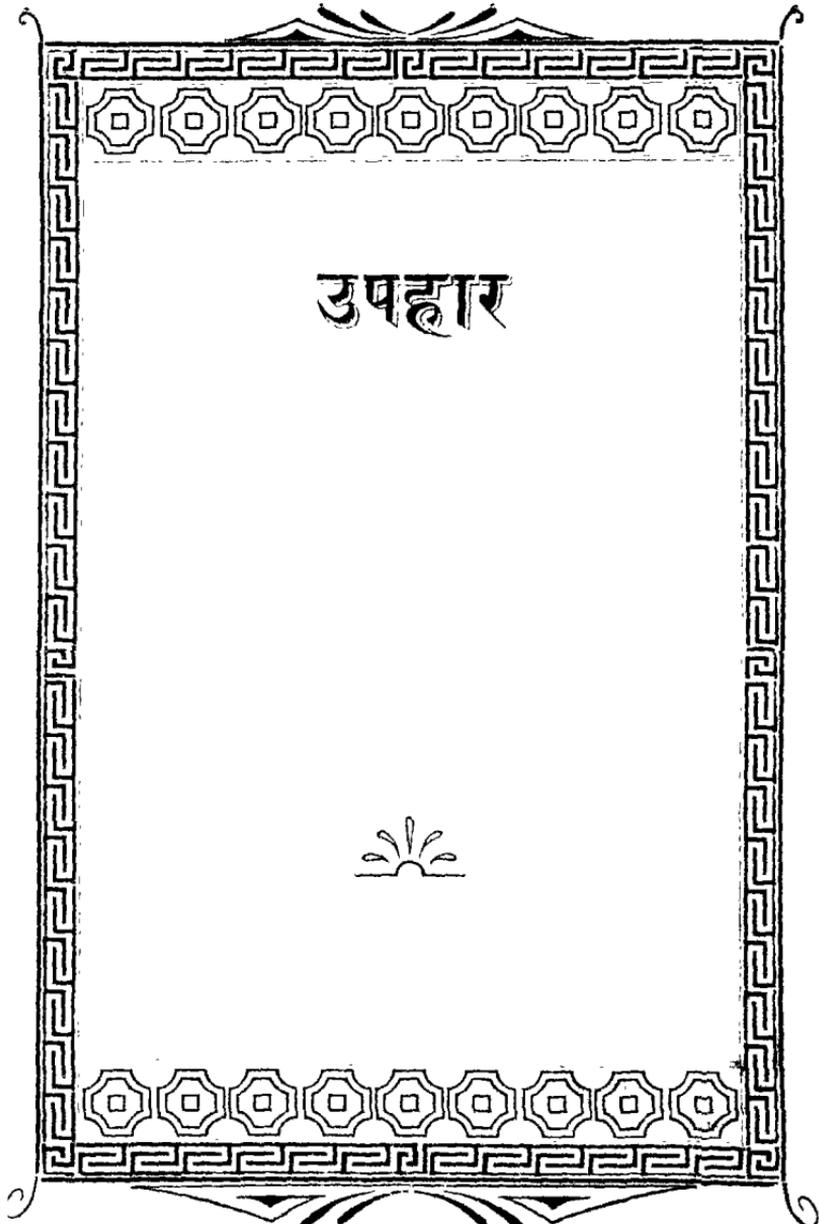
उपहार

गोद में ईसाइयत इस्लाम की

बेड़ियाँ कुछ मिटा कर हम चले

आज चलने पर हमें पाता हुआ

मार देवों का पता कर हम चले

कामिनी यह अस्वामिनी होकर, मारती चित्त मार कर हाय !
भस्म सारा समाज हो जावे चित्त से आह ! आह जो काढ़े !!

विधवा का हृदय

[ले० श्री० "विक्रम"]

(१)

बहो न मेरे तन को छू कर, हे सौरभ से भरे समीर ।
हा ! दूषित कर देंगे मुझ को, मधुर मयन के कोमल तीर ॥
भरो न मुझ में हे वसन्त तुम, सुन्दरता का मधुर विकास ।
मँडरायेंगे रसिक भ्रमर नाहक मुझ हतभागिनि के पास ॥

(२)

कहाँ भूल कर आये हो तुम, मेरे प्यारे मनोविनोद ?
चिर विषाद ने अब तो भर ली आजीवन को मेरी गोद ॥
सखि आशे ! अब इस जीवन में किस को देती हो सन्तोष ?
भरा हुआ है विपुल निराशा से मेरे मानस का कोष ॥

(३)

है अनन्त मेरे वियोग के अखिल मरुस्थल का विस्तार ।
रच रक्खा है विधि ने मेरे हित असीम दुख का संसार ॥
है अगाध मेरी विपदा का भरा हुआ यह पारावार ।
जिसमें किञ्चित् अस्फुट स्मृति का है केवल मुझ को आधार ॥

(४)

अतुल निराशा मेरा धन है, नीरवता मेरा व्यापार ।
विरह-व्यथा निशि-दिन पीती हूँ, चिर चिन्ता मेरा आहार ॥
तन मेरा प्रज्वलित चिता है, मेरा जीवन घोर मसान ।
ज्वालामुखी हृदय है मेरा, मानस मेरा बन सुनसान ॥

(५)

मैं वह जीवन की सरिता हूँ, सूख गया जिसका सुख-नीर ।
मैं वह नीरव व्याकुलता हूँ, हुई निराशा में जो धीर ॥
मैं वह निर्जल मानस-सर हूँ, जिसमें अब उड़ती है धूल ।
मैं वह शुष्क लता हूँ बन की, जिसमें अब न खिलेंगे फूल ॥

(६)

मैं वह करुणामय गाथा हूँ, सुन जिसको पिघले पाषाण ।
मैं वह विधि के हाथ सताई जिसका यम के कर कल्याण ॥
मैं वह जीवन-धारी शव हूँ, जिसका जीना मरण-समान ।
मैं वह हतभागिनि विधवा हूँ, जिसका यह करुणामय गान !!

—"चाँद"

प्रकाशक के दो शब्द

नवीन संस्करण के सम्बन्ध में

स पुस्तक को प्रकाशित करते समय हमें भय था कि, इस ग्रन्थ का विशेष आदर हिन्दी-संसार में न होगा; पर हमारा यह भय सर्वथा मिथ्या सिद्ध हुआ। केवल दो मास के भीतर ६०० से अधिक कॉपियाँ हाथों-हाथ बिक गईं और ५ मास के भीतर पहिला संस्करण समाप्त हो गया। हमें पुस्तकें इतनी जल्द निकल जाने का उतना हर्ष नहीं हुआ जितना यह देख कर कि, भारतवासियों का ध्यान अन्त में हमारी अभागी विधवा बहिनों की ओर बहुत तेज़ी से आकर्षित हो रहा है।

सभी सामयिक पत्र-पत्रिकाओं ने भी पुस्तक की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। विधवा-विवाह के विरोधियों ने भी इस पुस्तक को मंगा कर बड़े चाव से पढ़ा है। जहाँ तक हमें स्मरण है, ऐसे भाइयों तक ने पुस्तक के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा, बल्कि उन्हें भी पुस्तक में दी गई दलीलों और प्रमाणों को स्वीकार करना

पड़ा है। क्या यह अतिशयोक्ति होगी, यदि हम यह समझें कि, प्रस्तुत पुस्तक ने ही बहुत से विधवा-विवाह के विपक्षियों को इसका पक्षपाती बना दिया है ? हर समाज में पुस्तक का समान रूप से आदर हुआ है, इसमें सन्देह नहीं। हमें वास्तव में खेद है कि, इतनी अधिक माँग होते हुये भी आज से पहिले हम इसे प्रकाशित न कर सके और सैकड़ों पाठकों को निराश तक हो जाना पड़ा। इधर और भी माँग बढ़ जाने के कारण अन्य कई महत्वपूर्ण नये-नये ग्रन्थों के प्रकाशन को रोक कर पहिले हम इसी पुस्तक का नवीन संस्करण प्रकाशित कर रहे हैं।

पहिली बार पुस्तक का प्रूफ लेखक महोदय ने स्वयं बड़ी सावधानी से देखा था, जो छोटी-मोटी भूलें रह गई थीं उन्हें भी इस परिशोधित संस्करण में स्वयं लेखक महोदय की सहायता से सुधार दिया गया है। स्वयं लेखक महोदय की निगरानी में यह नवीन संस्करण प्रकाशित हुआ है। यदि फिर भी कुछ भूलें रह जाँय, जिन्हें हम न देख पावें तो हमें आशा है, हमारे सुयोग्य पाठक तथा पाठिकायें इसे उसी आदर से अपनावेंगी जिस प्रकार उन्होंने हमारी अन्य सेवायें स्वीकार की हैं।

यदि इस पुस्तक द्वारा हमारे समाज का कुछ भी भला हो सका अथवा समाज की कुछ भी सहानुभूति हमारी विधवा बहिनों के पक्ष में हो सकी तो निश्चय ही हम इसे अपना, समाज का तथा विधवा बहिनों का सौभाग्य समझेंगी तथा अन्य सामाजिक

पुस्तकों को प्रकाशित करने का प्रयत्न करेंगी। हमारी सेवा को सफल करने का भार सर्वथा हमारे देशवासियों के सहयोग और सहानुभूति पर निर्भर है।

"चाँद" कार्यालय,
इलाहाबाद,
१ दिसम्बर, १९२६

—विद्यावती सहगल

प्रस्तावना
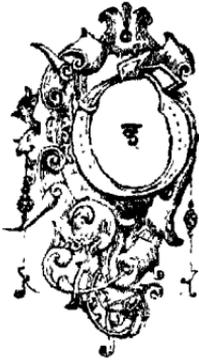
स महत्वपूर्ण पुस्तक की प्रस्तावना लिखना मेरी शक्ति के सर्वथा बाहर की बात है, किन्तु किया क्या जावे मजबूरी है। विधवाओं के प्रसङ्ग को आम तौर से लोग छूत की बीमारी समझते हैं। विधवाओं के विषय में बातचीत करने वाले "आर्या" समझे जाते हैं। कई पुश्त से गुलामी की कठोर ज़ञ्जीरों से जकड़े रहने के कारण आत्मिक बल का क्रमशः घटते जाना उतना ही स्वाभाविक है जितना जीवन के बाद मृत्यु।

साधारण जनता की बात तो दूर रही स्वयं बड़े-बड़े नेतागण इस विषय से उदासीनता प्रकट करते हैं। कई पुश्त से अन्धपरम्परा के चक्कर में पड़े रहने के कारण हमारी आत्मा का इतना अधिक ह्रास हो चुका है और गन्दी सोसाइटियों में पलते रहने के कारण हम में इतनी अधिक मात्रा में दुर्बलतायें समा गई हैं कि, आज अधिकांश जनता में, यह जानते हुये भी कि, अमुक कार्य उचित है, इतना भी नैतिक बल शेष नहीं रह गया है कि, वह इस घोर अन्याय का विरोध कर सकें! वे जानते हैं सामाजिक सङ्गठन का प्रश्न राष्ट्रोन्नति का एक अङ्ग है? वे यह भी जानते हैं कि, विधवाओं के सुधार का प्रश्न सारे राष्ट्र का प्रश्न है, विधवाओं का जीवन पहिले की अपेक्षा आज कहीं कष्टपूर्ण हो रहा है। यह सब बातें

आज बहुत लोग समझने लगे हैं। वे विधवा-विवाह और ख़ास कर बाल-विधवाओं का विवाह तो अवश्य ही हो जाने के पक्ष में हैं, किन्तु सवाल यह है कि, करे कौन ? "Who should bell the cat ?" पुरुषों को समाज का भय, नेताओं को अपने नेतृत्व मारे जाने का भय और स्त्रियों को नाक कट जाने का भय केवल यही तीन बातें ऐसी हैं जिनके द्वारा समाज-सुधार का कोई भी कार्य आज सफल नहीं हो रहा है। अतएव सब से पहिले हमें स्थितिपालकता के रोग से मुक्त होना चाहिये। जब तक हममें यह रोग घुसा रहेगा हम देशोन्नति का कोई भी कार्य्य नहीं कर सकते, न सामाजिक और न राजनीतिक।

हिन्दू-समाज की स्थितिपालकता के विषय में मैं अपने उन्हीं शब्दों को दोहराना चाहता हूँ जो मैं "चाँद" के विधवा-अङ्क में सविस्तार रूप से कह चुका हूँ।

किसी विचार पर या किसी रस्म पर अन्धविश्वास रखना उसकी असत्यता और दुष्परिणामों से आँखें बन्द कर लेना ही स्थितिपालकता है। स्थितिपालकता दृढ़ता की भी द्योतक हो सकती है और बुद्धि और साहस के अभाव की भी। स्थितिपालकता से जीवन भी ज़ाहिर होता है और मृत्यु भी।

अङ्गरेज़ी क़ौम अन्य यूरोपियन जातियों से अधिक स्थितिपालक कही जाती है, किन्तु इनकी स्थितिपालकता और भारतवर्ष की स्थितिपालकता में ज़मीन और आसमान का फ़र्क़ है। फ़्रान्सीसियों ने राष्ट्रीयता, स्वतन्त्रता और समता आदि राजनीतिक आदर्शों से प्रेरित होकर अपने देश की समस्त राजनीतिक संस्थाओं को उलट-पलट दिया। प्राचीन

राजनीतिक मर्य्यादा का सत्यानाश कर दिया, राजा का और राज-सत्ता का नामोनिशान मिटा दिया, किन्तु अङ्गरेज़ी क़ौम स्थितिपालक थी, उसने इस प्रकार का कोई भी काम नहीं किया। अपनी राजनीतिक संस्थाओं को ज्यों का त्यों क़ायम रक्खा, किन्तु स्वतन्त्रता, समता आदि सिद्धान्तों से उन्होंने फ़्रान्सीसियों से कम फ़ायदा नहीं उठाया। उनका राजा और राज-सत्ता अब भी क़ायम है, किन्तु उन्हें हम फ़्रान्सीसियों से राजनीतिक दृष्टि से कम उन्नत नहीं कह सकते। प्रजावाद (Democracy) के सिद्धान्त का इङ्गलैण्ड में फ़्रांस से कम पालन नहीं होता। इङ्गलैण्ड की जनता फ़्रांस की जनता से, राजनीतिक दृष्टि से, कम स्वतन्त्र नहीं कही जा सकती।

इङ्गलैण्ड में स्थितिपालकता है, किन्तु बुद्धि और साहस की कमी नहीं है। जिस विचार की सत्यता या जिन सिद्धान्तों की सफलता और हितैषिता का अङ्गरेज़ों को विश्वास हो जाता है उसके स्वीकार करने के लिये और जिन विचारों की असत्यता और जिन सिद्धान्तों के दुष्परिणामों का उन्हें ज्ञान हो जाता है उन्हें त्यागने के लिये उनमें काफ़ी साहस पाया जाता है। यह दूसरी बात है कि, किसी दुष्परिणाम कारिणी प्रथा को वह बाहरी रूप से क़ायम रक्खें। किन्तु उस प्रथा के अहित-कर्ता का वे अवश्यमेव नाश कर देंगे। सर्प को चाहे वे न मारें, किन्तु उसके दाँत ज़रूर तोड़ देंगे। अङ्गरेज़ों के तमाम कार्यक्षेत्र में आप उनकी इस बुद्धि और साहसयुक्त स्थितिपालकता का प्रमाण देख सकते हैं।

भारतवर्ष में जो स्थितिपालकता है वह इससे बिलकुल भिन्न है। दो-तीन हज़ार वर्षों से अभाग्यवश हिन्दू-जाति में कुछ ऐसी स्थिरता

आ गई है कि, इसने सामाजिक क्षेत्र में, नैतिक क्षेत्र में, साहित्यिक क्षेत्र में, वैज्ञानिक क्षेत्र में—किसी भी क्षेत्र में उन्नति कौन कहे, कान पर जूँ तक नहीं रेंगने दिया है। आज से दो हज़ार वर्ष पहले जब कि, भारतीय ब्रह्म और जीव, प्रकृति और पुरुष के अध्यात्म प्रश्नों को हल करने में लगे हुये थे, पश्चिमी देशों के निवासी वृक्षों के कोटरों में रहते थे और चर्म का बदबूदार वस्त्र पहनते थे। आज पश्चिमी देश-निवासी वायुयान द्वारा आकाश की सैर करते हैं, वरुण देवता के समान जलमग्न नौकाओं में बैठ कर समुद्र तल पर राज्य करते हैं और हम ज्यों के त्यों बने हैं। अपने इतिहास पर नज़र करते हुये शरम मालूम होती है। जो ज़माना कि, औरों की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करने का था, हमारे पतन और अन्धकार में प्रवेश करने का रहा है। जिस समय पश्चिमीय देशवासी अपनी बुद्धि, साहस और वीरता के कौशल से अपने समाज की निर्बलतायें दूर करके अपने को दृढ़ बना रहे थे हम बच्चों को गङ्गा में डाल कर गङ्गा माई को ख़ुश करते थे और विधवाओं को मृत पति के साथ ज़िन्दा जलाकर विधवा-समस्या के हल कर सकने की अपनी अनुपम बुद्धिमत्ता और दयालुता का परिचय देते थे! भारत की स्थितिपाल कता और इङ्गलैण्ड और अन्य देशों के स्थितिपालकता में इसलिये बड़ा अन्तर है। हमारी स्थितिपालकता के जन्मदाता, हमारी साहसशून्यता, व्यक्तिगत स्वार्थपरायणता और बुद्धिहीनता है। हमारी स्थितिपालकता, हमारी निशक्ति और निर्लज होने का परिणाम है। हमारे समाज में इतनी बुद्धि नहीं कि, वह यह समझ सके कि, कौनसी बात हमें नुक़सान पहुँचाती है और कौनसी नहीं। अगर किसी अङ्ग ने यह अनुभव भी किया कि,

हानि होती है तो साहस की इतनी कमी है कि, वह उसके मिटाने की हिम्मत नहीं करता। हिन्दू-समाज के अधिकांश व्यक्ति विधवाओं की यातनापूर्ण स्थिति के समझ सकने के लायक़ बुद्धि ही नहीं रखते। जिन्हें बुद्धि है उनके मर्य्यादित अन्धविश्वास ने दयालुता की इतनी कमी पैदा कर दी है कि, वह उनकी यातनाओं का अनुभव नहीं करते। जिनमें दया और बुद्धि दोनों हैं, जो समझते हैं कि, विधवाओं के कारण समाज कमज़ोर होता जाता है और वर्तमान रस्म व रिवाज उन पर अत्याचार करते हैं, उनमें इतना साहस नहीं कि, उसके मिटाने की हिम्मत कर सकें। इसलिये हिन्दू-समाज सामाजिक मामलों में आज क़रीब क़रीब बिलकुल ही वैसा है जैसा १००-१५० वर्ष पहले था। यह स्थितिपालकता स्थिरता और मुरदा-दिली का चिन्ह है—साहसहीनता का द्योतक है। अगर कोई वस्तु विधवाओं की अवस्था सुधारने में विशेष रूप से मार्ग-कण्टक होती है तो वह यही है।

स्थितिपालकता विशेष रूप से पूर्वीय देशों में बहुत ज़ोरों से पाई जाती है। क्या टर्की क्या ईरान क्या चीन क्या जापान सभी हिन्दुस्तान के समान स्थितिपालक थे और हैं। यही स्थितिपालकता इनके राजनीतिक सामाजिक, वैज्ञानिक और साहित्यिक पतन का कारण रही है। जापान भी कुछ दिन पहले स्थितिपालकता के नशे में था, किन्तु जब से उसने आँख खोली है—स्थितिपालकता को सदा के लिये नमस्कार किया है तब से उसकी दिन दूनी रात चौगुनी तरक्क़ी हो रही है। टर्की को देखिये किसी ज़माने में यह भी बड़ा स्थितिपालक देश था और यूरोपीय राष्ट्रों से 'Sickman'

'रुग्ण पुरुष' की उपाधि हासिल कर चुका था, किन्तु आज उसने आँख खोली हैं। मुस्तफ़ा कमालपाशा अपनी पत्नी को बेपर्दे रखते हैं और एक मुसलमान के लिये अपनी स्त्री को बेपर्दे रखना पुरानी साधारण परिमाण की उदारता नहीं है। इतना ही नहीं टर्की ने अपनी केंचुल बिलकुल उतार दी है और इसलिये आज वह उन्नति कर रहा है। चीन अभी पुरानी पीनक में है। ईरान भी हाफ़िज़ की ग़ज़लों के तरानों से पैदा होने वाले सरूर से नहीं जगा है, हिन्दुस्तान पर भी स्थितिपालकता की केंचुल चढ़ी हुई है, जिसके कारण वह बिलकुल मन्द, गतिहीन और स्थिर-सा हो रहा है। जिस दिन इसने अपनी पुरानी केंचुल को उतार फेंका, सामाजिक प्रश्नों पर उदारता, बुद्धिमत्ता और साहस से विचार करना आरम्भ कर दिया, यह जापान और टर्की के समान उन्नति के रास्ते पर बढ़ता जायगा। और इसकी समस्त सामाजिक समस्यायें स्वयं ही हल हो जाँयगी।

अतएव अब हमारे सामने सवाल केवल इतना ही है कि, "जो सदा से होता आया है वही होगा" इस भोले विचार को दूर कर के लिये हम अपने सामाजिक प्रश्नों पर उदारतापूर्ण विचार करें, इसी में हमारा कल्याण है, हमारी भावी सन्तान का कल्याण है, हिन्दू-समाज का कल्याण है, देश का कल्याण है, राष्ट्र का कल्याण है अथवा यों कहिये कि, विश्व का कल्याण है।

संसार के भिन्न-भिन्न देशों में विधवाओं की संख्या नीचे दिये गये कोष्टक से प्रकट होगी:—

संसार की १५ वर्ष और १५ वर्ष से अधिक उम्र की स्त्रियाँ

नं०	नाम देश	संख्या	फ़ी हज़ार			
१	२	३	४	५	६	७
			अविवाहित	विवाहित	विधवा	तलाक़ दी हुई
१	इङ्गलैण्ड और वेल्स	१,१५,१८,८००	३६५	४६७	१०८	...
२	स्काटलैण्ड	१५,५६,२००	४४५	४४३	११२	...
३	आयरलैण्ड	१५,६३,०००	४६७	३७१	१३२	...
४	जर्मनी	१,८८,४५,८००	३५२	५२०	१२५	३
५	आस्ट्रिया	८७,६६,००	३६७	५१०	१२३	...
६	हङ्गरी	६२,४८,६००	२३३	६२५	१४०	२
७	रूस (१८६७)	३,६०,१५,४००	२२४	६४१	१३४	१
८	फ़िनलैण्ड	६,०५,७००	६८०	५०१	११८	१
९	फ़्रांस	१,४५,२८,३००	२८६	५४८	१६६	...
१०	इटली	१,०८,३४,८००	३१८	५४८	९३	...
११	पोर्चगाल	१६,३२,६००	४०६	४६८	१२५	१

नं०	नाम देश	संख्या	अविवाहित	विवाहित	विधवा	तलाक़ दी हुई
१२	स्वीज़रलैण्ड	११,७४,९००	४१०	४५९	१२३	८
१३	नॉरवे	७,६७,३००	४१४	४७०	११५	१
१४	स्वीडन	१८,०९,६००	४१२	४६८	११८	२
१५	डेनमार्क	८,४५,०००	३७५	५०३	११९	३
१६	हालैण्ड	१७,०१,३००	३९९	४९४	१०५	२
१७	बेलजियम	२३,११,७००	३९४	४९५	१०९	...
१८	सरविया	६,९७,०००	१५१	७२७	११९	३
१९	रोमेनिया	१७,४३,९००	१९४	६५४	१४६	६
२०	बलगेरिया	१०,९१,१००	२०५	६८७	१०५	३
२१	लक्समवर्ग	८०,४००	३८०	४९९	१२०	१
२२	यूनाईटेडस्टेट अमेरिका	२,४२,२,६००	३१२	५७१	११२	५
२३	जापान (१९०३)	१,५४,११,८००	४६६	५३४	...	...
२४	हिन्दुस्थान	८,९६,७८,१००	४५	६६९	२८६	...

भारतवर्ष में संसार के सब देशों से, सबसे अधिक विधवायें पाई जाती हैं जैसा कि, निम्न-लिखित अङ्कों से प्रकट होगा :—

देश	विधवायें	देश	विधवायें
युनाईटेड किङ्गडम	७ फी सदी	हौलेण्ड	७ फ़ी सदी
डेनमार्क	८ ”	बेलजियम	८ ”
नॉरवे	८ ”	फ्रांस	१२ ”
स्वीडन्	८ ”	इटाली	६ ”
फ़िनलैण्ड	८ ”	सरविया	७ ”
स्वीज़रलैण्ड	८ ”	ऑस्ट्रेलिया	६ ”
जर्मनी	६ ”	न्यूज़ीलैण्ड	५ ”
परशिया	६ ”	केपकोलोनी	५ ”
बवेरिया	८ ”	भारतवर्ष	१८ ”
वरटम्बर	८ ”		

समस्त भारतवर्ष में १५ और ४० वर्ष के बीच की अवस्था वाली स्त्रियाँ ११ फ़ी सदी विधवायें हैं। हिन्दुओं में मुसलमानों से अधिक विधवायें पाई जाती हैं। इस अवस्था की हिन्दुओं में १२ फ़ी सैकड़ा और मुसल-मानों में ६ फ़ी सैकड़ा पाई जाती हैं। भारतवर्ष के किसी प्रान्त में विध-वाओं की संख्या बहुत अधिक है और किसी में बहुत कम।

उत्तर पश्चिमीय सीमा-प्रान्त में ६ फ़ी सदी, काश्मीर में ७, मध्यप्रान्त बरार और पञ्जाब में ८, बम्बई, मद्रास, संयुक्त-प्रान्त, अवध, कोचिन और

मध्यभारत की देशी रियासतों में ११, मैसूर और आसाम में १३ और बङ्गाल में १६ फ़ी सैकड़ा विधवायें पाई जाती हैं।

भिन्न-भिन्न देशों में अविवाहित प्रौढ़ स्त्रियों की संख्या इस प्रकार है :—

देश	अविवाहित प्रौढ़	देश	अविवाहित प्रौढ़
यूनाईटेड	फी सदी	हॉलेण्ड	६० फी सदी
किंगडम	६० ”	बेलजियम	५८ ”
डेनमार्क	५८ ”	फ्रांस	४७ ”
नॉरवे	६१ ”	इटाली	५५ ”
स्वीडन	६० ”	सर्विया	५१ ”
फिनलैण्ड	५६ ”	ऑस्ट्रेलियन-	
स्वीजरलैण्ड	५६ ”	कामन् वेल्थ,	६२ ”
जर्मनी	५७ ”	न्यूजीलैण्ड	६१ ”
परशिया	५७ ”	केपकोलोनी	६२ ”
बेवेरिया	५६ ”	भारतवर्ष	३४ ”
वरहमवर्ग	५६ ”	जापान	६४ ”
वेडन्	५६ ”		

बङ्गाल को छोड़कर और प्रान्त में ऊँची जातों में, नीची जातों से अधिक विधवायें हैं। बिहार और उड़ीसा में ब्राह्मण, बाभन, कायस्थ और राजपूतों में २० और ४० वर्ष की अवस्था के दरमियान की स्त्रियों में

२० फ़ी सदी विधवायें हैं। चमार चाम्मर, धनुक, धोबी, गोआला, कुम्हार, कोरी, लुहार, मुसैर और तेलियों में केवल १३ फ़ी सदी विधवायें हैं। बम्बई में ब्राह्मणों में २५ फ़ी सदी, और मरहठों में २० फ़ी सदी विधवायें पाई जाती हैं। मध्यप्रान्त, बरार, संयुक्तप्रान्त, पञ्जाब और मद्रास की भी यही दशा है। निम्न-लिखित अङ्क भी विधवाओं की दशा पर बहुत कुछ प्रकाश डालते हैं :—

फ़ी हज़ार हिन्दू-विधवायें

स्त्रियों की उम्र	१८८१	१८९१	१९०१	१९११
०—५ वर्ष	३	१	१	१
५—१० ,,		४	३	५
१०—१५ ,,	२१	१६	२१	१७
१५—२० ,,	५०	३८	४९	४२
२०—३० ,,	१०४	८६	१०१	९०
३०—४० ,,	२३९	२१३	२२९	२१४
४०—६० ,,	५३१	५३२	५२२	५२३
३० और उसके ऊपर	८५५	८६१	८४२	८५०

इन अङ्कों को देखने से पता चलता है कि, समाज-सुधारकों के कठिन परिश्रम करते हुये भी हिन्दू समाज ने इस प्रश्न को अर्थात् विधवाओं की संख्या कम करने में, आशाजनक सफलता प्राप्त नहीं की। १८८१ से १९११ तक अर्थात् गत ३० वर्षों में हिन्दू-विधवाओं की संख्या ज्यों की

त्यों ही रही। १६११ में, १६०१ से कम विधवायें पाई जाती थीं, किन्तु १८६१ अङ्कों से मुक़ाबला करने पर मालूम होता है कि, १६११ में, १८६१ से विधवाओं की संख्या कहीं ज़्यादा बढ़ गई थी। १८८१ में हिन्दुओं में १८७ फ़ी हज़ार विधवायें पाई जाती थीं। १८६१ में १७६, १६०१ में १८० और १६११ में १७३। इस लिये हम यह तो नहीं कह सकते कि, विधवाओं की संख्या पहले से बढ़ती जा रही है, किन्तु यह ज़रूर कह सकते हैं कि, विधवाओं के सम्बन्ध में हिन्दू-समाज ने जगत्प्रसिद्ध सङ्कीर्णता और स्थितिपालकता का परिचय दिया है।

विधवाओं की इतनी भारी संख्या भारत में देख कर किस भारतीय का दिल न भर जायगा? सवाल उठता है कि, विधवाओं का हित कैसे हो सकता है? विधवाओं की यातनायें कैसे कम की जा सकती हैं? और विधवाओं की संख्या कैसे कम की जा सकती है? किन्तु, यह एक ऐसा जटिल प्रश्न है जिसका उत्तर एक शब्द अर्थात् 'हाँ' वा 'नहीं' में नहीं दिया जा सकता और न एक नियम बना देने से भारतीय समाज का कुछ उपकार ही हो सकता है। यही कारण है कि, आज तक अनन्य समाज सुधारकों को, उनके निरन्तर प्रयत्न करने पर भी, सफलता प्राप्त नहीं हुई और तब तक हो भी नहीं सकती जब तक व्यक्तिगत रूप से जनता स्वयं अपना सुधार न करे। कारण स्पष्ट ही हैं:—

भारतवर्ष एक ऐसा विचित्र देश है जहाँ अनगिन्ती सम्प्रदाय हैं और उनके अनुयायी अपने उन्हीं सम्प्रदायों को अपनी धरोहर समझ कर विपक्षी सम्प्रदायों की निन्दा और तिरस्कार करने में ही अपना अमूल्य जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों का रहन-सहन, सभ्यता और भेष ही जुदा नहीं है, बल्कि उनकी भाषायें भी अपनी हैं, धर्म्म अपने हैं, आचार विचार अपने हैं, धर्म्म-ग्रन्थ अपने हैं, देवता अपने हैं। कहने का सारांश यह है कि, सभी सम्प्रदायों का परमात्मा भी अलग-अलग हैं। याद रहे, हम केवल एक धर्म्म अर्थात् हिन्दू-धर्म्म के सम्बन्ध में ही कह रहे हैं, अन्य धर्म्मों के बारे में नहीं। भला जिस देश में तीन हज़ार तीन सौ बहत्तर भिन्न-भिन्न जाति (Main Castes) के लोग बसते हों और जहाँ १८०० भिन्न-भिन्न भाषायें बोली जाती हों उस देश में एकाएक एक विश्व-धर्म्म (Universal Religion) को ठूँसने का प्रयत्न करना कभी भी अच्छा फल नहीं दे सकता, बल्कि उसके द्वारा लाभ तो नहीं पर हानियाँ अधिक होती हैं। एक सम्प्रदाय वालों से दूसरों का लड़ पड़ना, एक ऐसी बात है जिसे हम राह चलते हुये हर रोज़ महसूस करते हैं। ऐसी स्थिति में और ऐसे समाज में जहाँ इतने मतमतान्तर हों, एक धर्म्म का दाख़िल करना असम्भव है। सुप्रसिद्ध विद्वान् लाला कन्नोमल जी ने "चाँद" के विधवा-अङ्क में ठीक ही कहा है कि, हिन्दू-समाज के सामने एकाएक विधवा-विवाह का पेश करना, हिन्दू-समाज में बम फेंक देने के समान है। हम आपके इस विचार से अक्षरशः सहमत हैं।

भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के जन्मदाताओं की हमारी निगाह में उतनी ही इज़्ज़त और श्रद्धा है जितनी मुहम्मद या कृष्ण की, अली या शङ्कर की अथवा राम या रहीम की। हम सभी सम्प्रदायों तथा उनके सञ्चालकों को केवल इस बात का विश्वास दिलाया चाहते हैं कि, सामाजिक सुधार-

सम्बन्धी आन्दोलन की ओर तुरन्त ध्यान देना इस समय प्रत्येक विचार-शील स्त्री अथवा पुरुष का पहिला कर्तव्य होना चाहिये। हमारी राय में, यदि इन विचारों को सामने रखते हुये प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने रीति रिवाजों में सुधार कर ले तो बात की बात में वास्तविक सुधार हो सकता है। लम्बे-चौड़े व्याख्यान किसी ख़ास आन्दोलन को भले ही चलाने में समर्थ हो सकें, पर वे किसी धर्म्म को सर्वव्यापी बनाने में कदापि सफल नहीं हो सकते।

बाल-विवाह के दुष्परिणामों को देख कर उन्हें तुरन्त रोकना, विधवाओं से अच्छा व्यवहार करना, बेचारी अबोध बाल-विधवाओं की ओर करुणा दृष्टि करना, वृद्ध-विवाह की प्रथा को समूल नष्ट करना, स्त्रियों में स्त्रीत्व मानना, और उनकी उचित शिक्षा की ओर ध्यान देना अथवा अपनी भावी सन्तान की रक्षा करना—इनमें से कोई बात भी ऐसी नहीं है जो किसी व्यक्ति विशेष के निजी धर्म्म को नष्ट करती हो अथवा उन्हें गुमराह करती हो।

प्रत्येक धर्म्म अथवा रीति-रिवाज उसके (उस रिवाज अथवा धर्म्म के जन्मदाता के) अपने निजी सिद्धान्त मात्र होते हैं। मोहम्मद साहब का जो अपना यक़ीन था वही मुसलमानों का ईमान है। महात्मा ईसा के जो कुछ अपने निजी विचार थे वही ईसाइयों का सर्वस्व है। प्रातः स्मरणीय बाल-ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द सरस्वती महोदय के जो सिद्धान्त हैं आज प्रत्येक आर्य-समाजी भाइयों के लिये वे ही मन्तव्य हैं। जो सांसारिक अथवा आध्यात्मिक सिद्धान्त महात्मा बुद्ध के थे वे ही बौद्ध-धर्म्म के सिद्धान्त कहलाते हैं।

यदि प्राचीन, भारतीय ही नहीं, दुनिया के इतिहास पर हम एक बार दृष्टि डालें तो सहज ही पता चलता है कि, समय-समय पर प्रत्येक देशों में महान पुरुषों का जन्म इस लिये होता रहता है कि, वे उस देश की जनता को आने वाली विपत्तियों से सचेत कर दें और उन्हें सच्चा मार्ग बतला कर उचित रास्ते पर चलने की सलाह दें। हम प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं कि, भारत में आज कितनी ही महान आत्मायें चलते-फिरते पुरुषों के रूप में देश का उपकार कर रहीं है। महात्मा गाँधी उन पवित्र आत्माओं में से एक हैं जिनकी ओर हम ने इशारा किया है। महात्मा जी के अनुयायी असहयोग आन्दोलन का पक्ष समर्थन करते हैं, और माननीय चिन्तामणि महोदय के अनुयायी आज मिनिष्ट्री के उच्च पद पर चढ़ कर ही देश का सुधार करने में भलाई का अनुभव कर रहे हैं। सम्भव है, लक्ष्य दोनों के एक हों, पर मत-भेद दोनों दलों में है और दोनों दलों के अनुयायी भी अपने उस नेता को ही अपना नेता मानते हैं जिसने उस आन्दोलन (यहाँ पर 'आन्दोलन' शब्द का अर्थ सामाजिक अथवा राजनैतिक सुधार ही समझ लेने में विशेष सुविधा होगी) को जन्म दिया है।

इन सब बातों से पाठकों को यह समझने में सुविधा हुई होगी कि, प्रत्येक धर्म्म एक व्यक्ति विशेष के अपने निजी सिद्धान्त (Self conviction) मात्र होते हैं। आज भी प्रत्येक सम्प्रदायों का लक्ष्य केवल उन सिद्धान्तों का प्रचार करना मात्र है, जिसके वे अनुयायी हैं अथवा यों कहिये कि, वे उस धर्म्म अथवा रीति-रिवाज के जन्मदाता के सिद्धान्तों का प्रचार करते हैं।

संसार में कोई भी ऐसी जाति नहीं है जिसने अपने वीरों को देवताओं के समान न माना हो। यह एक मानी हुई बात है कि, प्राणि मात्र अपने से अधिक बढ़कर शक्ति रखने वाले की ओर झुकते हैं और जब कभी वे किसी ऐसे महान पुरुष को देखते हैं जिसमें उनसे बढ़कर पराक्रम और बुद्धि होती है और उनकी बुद्धिमत्ता की कल्पना भी उनके विचार में नहीं आती, तो उनका अन्तःकरण उनकी महान शक्ति की ओर आकर्षित हो जाता है और वे स्वतः उस शक्तिशाली पुरुष को अवतार समझने लगते हैं। बात बहुत ही स्वाभाविक है, पर वास्तविक ज्ञान होने के कारण हम इन सिद्धान्तों की खोज नहीं करते और फलतः अन्ध-परम्परा के विश्वास में पड़ कर आज भी वही बातें करते हैं जो दस हज़ार वर्ष पहिले हमारे पूर्वज करते थे। भारतवासी वास्तव में कैसे भोले हैं ?

जिस प्रकार संसार की अन्य वस्तुयें परिवर्तनशील हैं ठीक उसी प्रकार धर्म्म-ग्रन्थों की रचना भी समय-समय पर होती आई है। हमारे कहने का सारांश यह है कि, कोई भी धर्म्म, अनन्त काल के लिये पर्याप्त नहीं हो सकता। अतएव सिद्ध यह हुआ कि, प्रकृति के नियमों की अपेक्षा विवेक से काम लेने से शीघ्र और सरलता से उन्नति हो सकती है। हमारे सामने इस समय वही समय उपस्थित है कि, "दैवेच्छा बलीयर्सी" के उस महान मन्त्र को, जिसे हम पचासों पीढ़ियों से जपते आये हैं छोड़ कर, अपने विवेक से प्रकृति के वर्तमान नियमों को ढूंढ़ निकालें और उन्हें काट-छाँट कर ऐसा बना लें जो हमारे लिये तथा हमारी भावी सन्तान के लिये पथ-प्रदर्शक हों और जिसके द्वारा भविष्य में हमारा ह्रास न हो।

यह हम पहिले ही कह आये हैं कि, भारतवर्ष में, जहाँ कि, इतनी भिन्न-भिन्न मुख्य जातें (Main Castes) हैं और जहाँ हज़ारों भिन्न-भिन्न भाषायें बोली जाती हैं, वहाँ किसी भी एक धर्म्म का एकाएक प्रचार करना, कभी भी सन्तोषजनक फल कदापि नहीं दे सकता। यही कारण है कि, आज तक कोई भी महान सुधारक, निरन्तर प्रयत्न करते रहने पर भी, सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। तात्पर्य्य यह कि, यदि कुछ लोग समस्त विधवाओं का पुनर्विवाह ही करा देने की कोशिश करें तो उसमें वे आजीवन सफलता प्राप्त नहीं कर सकते और न उन्हीं को सफलता हो सकती है जो विधवा-विवाह का आज विरोध कर रहे हैं, बल्कि यह सुधार तभी सम्भव है जब प्रत्येक व्यक्ति भारतीय विधवाओं की वास्तविक दशा से भली-भाँति परिचित हो और इस विषय के सुधार की आवश्यकता को महसूस करे।

भारतीय विधवायें जब तक कई कोटि (Sections) में न बाँटी जावें इस प्रश्न का उत्तर सन्तोषजनक हो ही नहीं सकता। अतएव सब से पहिले हम बाल-विधवाओं की शोचनीय दशा पर ही विचार करेंगे।

यों तो भारत में आज विधवाओं की संख्या ३॥ करोड़ के भी ऊपर पहुँच चुकी है लेकिन उनमें बाल-विधवाओं की दशा बहुत ही शोचनीय है। लाखों विधवायें इतनी छोटी हैं जिनके दूध के दाँत भी नहीं टूटे हैं, लाखों विधवायें ५ से १० वर्ष की आयु की हैं और लाखों विधवायें ऐसी हैं जिनकी आयु १० से १५ वर्ष की है जैसा कि, अन्यत्र दिये गये ब्योरों से पता चलेगा। १५ से २५ वर्ष की विधवाओं की संख्या भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इस प्रकार है:—

पञ्जाब	... ३२,८७७	यू० पी०	... १,६६,९७३
बम्बई	... ९३,४६६	मद्रास	... १,९८,०१४

बङ्गाल, आसाम, बिहार, उड़ीसा, राजपूताना और सी० पी० आदि प्रान्तों में ऐसी विधवाओं की संख्या ५,४४,६०५ है। पर, हमें यह देख कर वास्तव में आश्चर्य होता है कि, विधवाओं की इतनी लम्बी-चौड़ी संख्या देखकर भी भारतवासियों के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती।

बाल-विधवाओं की यह अपार संख्या सामने रखते हुये इस बात की आशा करना कि, वे सभी सदाचारपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करेंगी, पत्थर से पानी निकालने की आशा के समान मूर्खतापूर्ण है और खास कर ऐसी स्थिति में, जब कि भारतीय पुरुष-समाज इतना पतित होता जा रहा है! विधवाओं की शिक्षा का न तो कोई उचित प्रबन्ध ही है और न उनके लिये ऐसी संस्थायें (Rescue Homes) ही हैं जहाँ वे विधवायें, जो सर्वथा अनाथ हैं, रहकर सदाचारपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें और शिक्षा पा सकें। ज़रा सोचने की बात है कि, ऐसी विकट स्थिति में, जब न तो उनके कहीं रहने का प्रबन्ध है, न शिक्षा का और न उदर-पूर्ति ही का कोई साधन है। हमें यह मानना ही पड़ेगा कि, ऐसी हालत में, उनका कर्तव्य-भ्रष्ट हो जाना उतना आश्चर्यजनक नहीं है जितना सदाचारी रहना।

पातिव्रत धर्म्म क्या है? जो बहिनें इसका महत्व जानती हैं अथवा जो दाम्पतिक प्रेम का भली भाँति अनुभव कर चुकी हैं—जो बहिनें जानती हैं कि, भारतीय-विवाह-प्रणाली अन्य योरोपीय देशों के समान काम-वासना की तृप्ति का साधनमात्र अथवा "Matrimonial

contract" नहीं है, बल्कि स्त्री और पुरुष की दो भिन्न-भिन्न आत्माओं को एक में मिलाकर मोक्ष प्राप्ति का एक अनुष्ठान और गृहस्थि-जीवन में रहकर भी निरन्तर तपस्या का एक साधन है—उनके बारे में हमें कुछ नहीं कहना है। वे साक्षात् देवी हैं और हमें उनके पवित्र चरणों में श्रद्धा है। ऐसी विधवाओं के पुनर्विवाह की कल्पना करना भी हम अपनी माता का घोर अपमान करना समझते हैं। हम जानते हैं कि, पातिव्रत धर्म्म का पालन करने और पुनर्विवाह के सिद्धान्त में कौड़ी और मोहर का अन्तर है, पर आपद्धर्म्म भी कोई चीज़ है। अङ्गरेज़ी में कहावत है "Imergency has no law" हम उस आपद्धर्म्म की ओर इशारा कर रहे हैं जिसे स्वयं योगिराज महात्मा श्रीकृष्ण जयद्रथ-वध के समय काम में लाये थे। अर्जुन की प्राण-रक्षा के निमित्त उन्होंने माया के बादलों से सूर्य को छिपाकर, जान बूझकर कौरव-दल को धोखा दिया था ताकि वे समझें कि, सूर्यास्त हो गया और अन्त में हुआ भी ऐसा ही। सूर्यास्त हुआ समझ कर जैसे ही जयद्रथ चक्र-व्यूह के बाहर निकला वैसे ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन से, जो कि अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जीवित अग्नि में भस्म होने जा रहा था, बाण चलाने की आज्ञा दी और इस धोखे में जयद्रथ का वध किया गया था। इस बात का साक्षी महाभारत का इतिहास है। साधन कितना ही निन्दनीय क्यों न हो पर उद्देश निस्सन्देह बहुत उच्च था। श्रीकृष्ण समझते थे कि, जयद्रथ की अपेक्षा अर्जुन जैसे वीर और पराक्रमी की रक्षा करना ही बुद्धिमत्ता है। ठीक वही [illegible] इस समय भारतवासियों के सामने उपस्थित है। मान लीजिये [illegible]ओं के पुनर्विवाह का कार्य "मुँह काला करना" है, [illegible] एक ही बार तो।

आज हज़ारों स्त्रियाँ भगाई और बेची जा रही हैं, बढ़ते हुये व्यभिचार की ओर दृष्टि फेरने से रोमाञ्च हो आता है, वेश्याओं की दिनों दिन वृद्धि देखकर शरीर एक बार थर्रा उठता है। दूध पीती बच्चियों का करुणाक्रन्दन सुन कर, जो अपनी माताओं की गोदियों में मुँह डाल कर सिसक-सिसक कर रो रही हैं, भला कौन ऐसा मानव-हृदय होगा जो करुणा से परिपूर्ण न हो जावेगा और कौन ऐसा नेत्र होगा जिससे आँसू न निकल पड़ेंगे ?

हमारी सम्मति में नीचे लिखे उपायों को काम में लाने से बहुत कुछ उपकार हो सकता है :—

(१) वे बाल-विधवायें जो अक्षत योनि की हैं अथवा जो अपने पति के साथ नहीं रही हैं, उनका विवाह तो सब जाति में और हर हालत में अवश्य ही होना चाहिये। भला वे बालिकायें जो पति के साथ बिलकुल ही नहीं रही हैं अथवा जिन्होंने पति का दर्शन भी नहीं किया है—उनके हृदय में पति का प्रेम हो ही किस प्रकार सकता है ? ऐसी कन्याओं के सामने दाम्पत्य प्रेम का ढकोसला रखना ठीक वैसा ही है जैसे कुमारी कन्या से यह कहना कि "तुम्हारा विवाह हो चुका है और तुम्हें आजीवन अपने पति के चरणों में प्रेम करना चाहिये।" जो कन्यायें अपने पति के साथ कुछ दिन रह चुकी हैं, पर अभी जवान हैं—पुनर्विवाह का प्रश्न सर्वथा उनकी इच्छा पर निर्भर होना चाहिये। यह बात असम्भव है कि, घर के लोग अथवा माता-पिता लड़की के व्यवहारों को देखकर यह न समझ लें कि, लड़की दूसरा विवाह करना चाहती है कि नहीं। अथवा स्पष्ट शब्दों में यों कहिये कि,लड़की को दूसरे पति की आवश्यकता

है कि नहीं ? यदि वे ऐसा समझते हैं तो समाज के विरोध को पैरों तले कुचलकर उन्हें अवश्य कन्या का किसी योग्य वर से, जो रँडुआ हो उसका विवाह तुरन्त कर देना चाहिये।

(२) भारत के कई प्रान्तों में कन्याओं की अपेक्षा अविवाहित पुरुष कहीं ज़्यादा हैं और लड़कियों की कमी है। उदाहरण के लिये आप पञ्जाब ही को लीजिये वहाँ ५ वर्ष के आयु के लड़कों से संख्या में २५,१९२ लड़कियाँ कम हैं और ५ वर्ष से ऊपर और १० वर्ष तक की आयु की लड़कियाँ इसी अवस्था के लड़कों से ८०,७४० कम हैं और १० से १५ वर्ष तक आयु की लड़कियाँ इसी उम्र के लड़कों से १,५५,८८८ कम हैं और १५ से ऊपर और २० वर्ष तक अवस्था की लड़कियाँ इसी अवस्था के लड़कों से १,२१,३८६ कम हैं।

दूसरी ओर यदि ध्यानपूर्वक देखा जावे तो दिल्ली में २६,८३६, मुल्तान में ७,७४३, रावलपिण्डी में ६,०५८, अम्बाले में ३,८१० और फ़िरोज़पुर में ६,५१६ स्त्रियाँ पुरुषों से कम हैं। सारांश यह कि, समस्त पञ्जाब में कुँआरे हिन्दू-पुरुषों की संख्या २४, १३, ३६५ है और कुमारी लड़कियों की संख्या १६,२६,८३० है। अर्थात् ११,८६,५३५ पुरुषों को बिन ब्याहे इसलिये रहना पड़ता है कि, उन के लिये लड़कियों की कमी है। रँडुए पुरुषों की संख्या जिनकी आयु १ वर्ष से ५० वर्ष तक है और जो पुनर्विवाह करना चाहते हैं, २४,२,८२६ हैं। यदि थोड़ी देर के लिये इनकी संख्या भी कुँआरे पुरुषों में जोड़ दी जावे तो कुल १४,२६,३६४ पुरुष ऐसे हैं जिनके लिये स्त्रियों की कमी है।

(३) कन्याओं के इस अभाव का एकमात्र कारण है हिन्दू समाज में

प्रचलित बहु-विवाह की प्रथा, जिसे तुरन्त तोड़ना ज़रूरी है। एक पुरुष अपनी काम-वासना को तृप्त करने अथवा सन्तानोत्पत्ति की आड़ में एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी, चौथी और पाँचवीं यहाँ तक कि, हमारी जानकारी में ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं है जिन्होंने १४ से १८ विवाह तक किये हैं। और एक पति के मरने पर १८ विधवा स्त्रियाँ आज अपने जीवन को कोस रही हैं।*

रँडुए पुरुषों से कुमारी कन्याओं को ब्याहे जाने की प्रथा बहुत हद तक इस प्रश्न, अर्थात् लड़कियों के कमी की लिये ज़िम्मेदार है। अतएव इन अङ्कों को सामने रखते हुये प्रत्येक विचारशील व्यक्ति का यह लक्ष्य होना चाहिये कि, वह बहु-विवाह का ज़ोरों से विरोध करे और रँडुए पुरुषों का यदि विवाह हो भी तो विधवा से ही होना चाहिये—कुमारी कन्याओं से नहीं। ऐसा करने से न केवल कुमारी कन्याओं का भला होगा, बल्कि पुरुषों की सहानुभूति स्वयं ही विधवाओं के पक्ष में क्रमशः होने लगेगी और तभी वे विधवाओं के कष्टों का वास्तविक अनुभव भी कर सकेंगे। विधवा-विवाह के विरोधी जो वेदशास्त्रों को उलट कर इस बात को सिद्ध करते हैं कि, प्राचीन-काल में विधवाओं के पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित नहीं थी वे क्या यह बात सिद्ध करते हैं कि, उस पवित्र युग में आज ही के समान पुरुष अपनी स्त्री के मरने पर अनेक विवाह कर लिया करते थे? यदि यह बात थी तो दाम्पत्य प्रेम का अर्थ हम विडम्बनामात्र ही करेंगे।

(४) बाल-विवाह की कुप्रथा को समूल नष्ट करना चाहिये।

* यह विहार के एक प्रतिष्ठित ज़मींदार की सत्य घटना है।

(५) भिन्न-भिन्न शहरों में विधवाओं के लिये उच्चकोटि के ऐसे आश्रम होने चाहिये जहाँ विधवायें सदाचारपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें और उन्हें उच्चकोटि की शिक्षा दी जावे। ऐसी संस्थाओं के कार्यकर्ता ऐसे होने चाहिये जिनका चरित्र बहुत ही उज्ज्वल हो और जिन पर जनता का विश्वास हो। पुरुषों की अपेक्षा यदि स्वयं स्त्रियाँ ही ऐसे कार्य्यों को अपने हाथ में लेकर चलावें तो अधिक उपकार की सम्भावना है। इन संस्थाओं का एक खास केन्द्र (Head Office) होना चाहिये जहाँ से समय-समय पर अन्य शाखाओं को परामर्श (Instructions) मिलते रहें और उन्हीं के अनुसार कार्य किये जावें।

* * *

पुरुष-समाज और विधवायें

भारतवर्ष में स्त्रियों के उपकार के लिये, विशेष कर विधवाओं की सहायता और उद्धार के लिये जितने काम किये जाते हैं उन सब कामों में अगर कोई विशेष रूप से विघ्नकारी और मार्ग-कण्टक हो जाता है तो वह पुरुषों का तर्ज़ अमल है।

महाराष्ट्र या दक्षिण के अन्य प्रान्तों के बारे में हम कुछ नहीं कहना चाहते। उत्तरीय भारत में, विशेष कर संयुक्त-प्रान्त में अभाग्यवश बाल्यावस्था से ही बालकों के कुछ ऐसे संस्कार पड़ जाते हैं कि, पुरुष होकर वह लोग स्त्रियों की और विशेष कर के विधवाओं की इज़्ज़त करने में ज़रा भी अग्रसर नहीं होते। हम तो यहाँ तक कहेंगे कि, भारतवर्ष में

स्त्री-जाति के सम्मान करने की प्रथा और मर्य्यादा का साधारण जनता में तो अभाव है ही, मगर दुख के साथ कहना पड़ता है कि, अगर किसी सड़क से कोई भी महिला निकल जाय या किसी सभा में कोई स्त्री जाकर बैठे तो उस सड़क और उस सभा के शायद ही दो-चार भले मानुस ऐसे होंगे जो उस की तरफ़ व्यर्थ टकटकी लगाने की गुस्ताख़ी न करें। इन प्रान्तों में पुरुषों को स्त्रियों का सड़क पर चलना, सभा-समाजों में भाग लेना आदि काम कुछ ऐसे अनोखे मालूम होते हैं कि, टकटकी बँध जाना कुछ स्वाभाविक-सा हो गया है। अगर किसी मुहल्ले में, किसी स्थान पर विधवायें एकत्रित की जाँय और आसपास के आदमियों को मालूम हो जाय कि, अमुक स्थान पर प्रत्येक दिन स्त्रियाँ या विधवायें एकत्रित होंगी तो खेद के साथ कहना पड़ता है कि, बुरे आदमी ही नहीं, बल्कि ऐसे भी दो-चार आदमी जो सज्जन कहलाते हैं आसपास टहलते हुये नज़र आवेंगे! तफ़सील में न जाकर निर्भीकता के साथ हम कह देना चाहते हैं कि, स्त्रियों के प्रति सम्मान, सच्चरित्रता और पवित्रता दिखाने में हमारा पुरुष-समाज इतना कमज़ोर है कि, स्त्रियों के उपकार और विधवाओं के उद्धार के लिये ऐसे आदमी भी, जो इनकी दुर्दशाओं का अनुभव करते हैं, इस डर से कोई क़दम नहीं बढ़ा सकते कि, कहीं पुरुष-समाज की निन्दनीय अपवित्र प्रेरणायें असहाय विधवाओं को कुमार्ग और दुष्चरित्रता के अधिकतर यातनापूर्ण और लज्जाजनक गढ़े में न डाल दें, परदा तोड़ने का सुधार, स्त्री-शिक्षा का काम, विधवा-सहायता की स्कीम अर्थात् स्त्री-जाति के उपकार की जितनी भी बातें हैं सभी पुरुष-समाज की इस निन्दनीय नीचता और नैतिक निर्बलता के

कारण या तो आरम्भ ही नहीं होतीं और अगर आरम्भ हुई भी तो थोड़े दिनों में ही अपमानजनक असफलता को प्राप्त हो जाती हैं।

इसलिये अगर भारतवर्ष में स्त्री-जाति की उन्नति होनी है और यदि हिन्दू-समाज अपनी माँ-बेटियों की शिक्षा, सम्मान और मर्य्यादा क़ायम रखना चाहता है तो उसे पुरुष के तर्ज़ अमल में विशेष रूप से पवित्रता लाने की आवश्यकता है। हिन्दू-समाज के प्रत्येक पुरुष का यह कर्तव्य है कि, अगर वह विधवाओं की यातना-पूर्ण अवस्था से वास्तविक सहानुभूति रखता है, यदि असहाय दरिद्र पतिहीन स्त्रियों की दुर्दशा और उनके रुदन-क्रन्दन, उनके हृदय में कुछ भी दर्द पैदा करता है तो वह स्त्रियों की तरफ़ से अपने और समाज के भाव एकदम पवित्र कर दें। स्त्रियों के सम्मान करने की प्राचीन भारतीय प्रथा को, जिसका पश्चिम आज बहुत ज़ोरों के साथ अनुकरण कर रहा है, अपने जीवन में कार्य रूप में परिणत करके दिखा दें। सड़क पर चलने वाली, सभा-समाजों में भाग लेने वाली, किसी संस्था में एकत्रित स्त्रियों को घूरने, छेड़ने और उनका पीछा करने की निन्दनीय, नीच और ज़लील आदत को छोड़ दें। जब तक समाज अपने-अपने भावों में इस प्रकार की पवित्रता पैदा नहीं करता, स्त्रियों और ख़ासकर विधवाओं की दुर्दशा में कोई कमी नहीं आ सकती और समाज-सुधारक चाहे जितना शोर करें समाज की उन्नति असम्भव है।

निस्सन्देह इस विषय में हमने पुरुष-समाज पर कड़े आक्षेप किये हैं। किन्तु, हम उसके लिये इस स्थान पर क्षमा-प्रार्थना न करेंगे। क्योंकि जब हम देखते हैं कि, पुरुष-समाज के व्यक्तियों के निन्दनीय और घृणित

कार्यों से समाज में निर्बलता और कष्टों की वृद्धि होती है और समाज का एक अङ्ग सदा के लिये व्यथित रहता है, उस समय न्याय और दया से प्रेरित होकर हम उन व्यक्तियों के कुचरित्रता और अपवित्रता पर कठोर से कठोर कुठाराघात करने को तैयार हो जाते हैं, जिनकी ख़ुदग़रज़ी और नीचता के कारण समाज व्यथित, कलुषित और निर्बल बना जा रहा है।

हम अपनी बहनों से प्रार्थना करेंगे कि, वह अपने बच्चों में उनकी बाल्यावस्था से ही स्त्री-जाति के प्रति आदर और सम्मान तथा पवित्रता के भाव अङ्कित करेंगी जिससे इस बालक को जब वह पुरुष हो तब समाज को एक पवित्र और आदर्श पुरुष-समाज रखने का सौभाग्य प्राप्त हो सके।

* * *

समाज और विधवा

हमारी सामज में विधवा एक बेकार-सी चीज़ है। अधिकांश लोग तो इसे बेकार ही नहीं, बल्कि निश्चित रूप से समाज के लिये हानिकर समझते हैं और इसलिये विधवा का जीवन हिन्दू-समाज में विशेष रूप से यातनापूर्ण है। यों तो विधवायें हर एक देश में अभागी समझी जाती हैं, किन्तु अन्य देशों में विधवाओं को इतनी अधिक तकलीफ़ें नहीं उठानी पड़तीं, जितनी हिन्दुस्तान में। पति की मृत्यु की और उसके सदा के लिये वियोग की ही असह्य मानसिक पीड़ा तो सब देश की विधवाओं के लिये है, किन्तु बेकारी, दरिद्रता, असहायता, सम्मानशून्यता इत्यादि कष्ट जिस मात्रा में भारत की विधवाओं को सहने पड़ते हैं शायद ही किसी सभ्य जाति की विधवाओं को सहन करने होते हों।

जो सज्जन विधवा-विवाह में विश्वास नहीं करते वह अगर अपने घर की विधवाओं के जीवन को सुखमय बनाने की कोशिश करने लगें तो भी विधवाओं के जीवन की वर्तमान दुर्दशा बहुत कुछ कम हो सकती है। हमें वास्तव में बहुत ही दुख होता है जब हम यह देखते हैं कि, विधवाओं के जीवन को सुखमय बनाने का तो कोई प्रयत्न नहीं किया जाता, किन्तु उनके चरित्र पर कड़ी दृष्टि से समालोचना की जाती है। किसी विधवा को, अगर उसके माँ, बाप, देवर, श्वसुर, सास आदि सम्बन्धी लाड़ प्यार से रक्खें, उसकी असहाय अवस्था का स्मरणमात्र भी उसके सामने न आने दें, अपने चरित्र से कुटुम्ब का वायुमण्डल पवित्र रक्खें तो १०० में ७५ विधवाओं की तकलीफ़ें कम हो जाँय और शायद ही दो-चार ऐसी मिलें जो ऐसी अवस्था में सच्चरित्रता के पथ का उलङ्घन करें।

अगर हिन्दू-समाज अपने भाव को जीता-जागता कहती है और उसमें दया और उदारता का ज़रा भी अंश है तो उसे विधवा-प्रश्न को उदारता और बुद्धिमत्ता के साथ हल कर डालना चाहिये। अगर किसी प्राणी का कोई अङ्ग व्यथित हो और वह उसे अनुभव न करे या अनुभव करके उसके प्रतिकार का कोई उपाय न करे तो उसका शरीर या तो मुरदा समझा जायगा या मृत्यासन्न। हिन्दू-समाज यदि विधवा की व्यथा का अनुभव नहीं करती या अनुभव करके उसके प्रतिकार का उचित उद्योग नहीं करती तो मुरदा होने या मृत्यासन्न होने का लाञ्छन उस पर उचित ही है। किन्तु, हमें हिन्दू-समाज की उदारता, दया और विचारशीलता में विश्वास है। हम यह स्पष्ट देख रहे हैं कि, हिन्दू समाज में पुनर्जागृति

पैदा हो गई है और मानुषिक कार्य के प्रत्येक क्षेत्र में, राजनीति में, आचार-नीति में, साहस में, वीरता में, साहित्य में, विज्ञान में अर्थात् प्रत्येक उच्च और आदरणीय क्षेत्र में, यह समाज उन्नति कर रहा है। इसके दुर्बल और रुग्ण शरीर में फिर से जीवन का सञ्चार हो रहा है! चैत-बैशाख के नवपल्लवित वृक्ष के समान यह बहुत ही शीघ्र जीर्ण अवयवों का त्याग कर हँस पड़ने वाली है। जिन-जिन व्यथाओं से यह पीड़ित है उन उन व्यथाओं को दूर करने में सपरिश्रम उद्योग कर रहा है। कोई कारण नहीं कि, विधवा-प्रश्न का यह सन्तोषजनक उत्तर न दे सके।

हमें हिन्दू-समाज के प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा है कि, यदि उसने आज तक व्यक्तिगत प्रश्नों को छोड़ कर सार्वजनिक और सामाजिक प्रश्नों में दिलचस्पी नहीं ली है तो वह अब समाज के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी अनुभव करेगा और समाज-सुधार के, विशेष कर असहाय विधवाओं के जीवन को सुखमय बनाने और उनकी दशा सुधारने के पवित्र, शान्तपूर्ण और पुण्यदायक कार्य में श्रद्धा और उत्साह के साथ भाग लेकर अपना जन्म सफल करेगा।

इस पुस्तक के सुयोग्य लेखक ने उन लोगों की शङ्का का जो विधवा-विवाह का विरोध करते हैं, बहुत ही मार्मिक दलीलों द्वारा समाधान किया है और ऐसे-ऐसे धार्म्मिक और ऐतिहासिक प्रमाण पेश किये हैं जिनका खण्डन करना उस समय तक असम्भव है, जब तक लोग कोरे 'हठ' की शरण न लें। जो लोग विधवा-विवाह के जन्म-सिद्ध विरोधी हैं, मैं तो कहूँगा—उन्हें भी इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को बड़ी सावधानी से आद्योपान्त पढ़ना चाहिये और इसमें दिये गये अकाट्य प्रमाणों को ठण्डे

दिल से समझना चाहिये। मेरा तो पूर्ण रूप से विश्वास है कि, इस पुस्तक को जनता बहुत ही आदर की दृष्टि से देखेगी और इससे पूर्ण लाभ उठावेगी। यदि मेरी स्मरण शक्ति मुझे धोखा नहीं देती तो मैं यह ज़रूर कहूँगा कि, विधवाओं की जटिल समस्या पर, ऐसी उपयोगी पुस्तक हिन्दी-संसार में अब तक प्रकाशित नहीं हुई थी। मैं समाज की ओर से लेखक को उनकी इस सफलता पर हार्दिक बधाई देता हूँ।

"चाँद" कार्यालय,
इलाहाबाद,
१—१२—२६

—रामरख सिंह सहगल

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ

* * *

कवितायें

पहिला संस्करण २०००; अक्तूबर, १९२३
दूसरा संशोधित संस्करण २०००; दिसम्बर, १९२६

विधवा-विवाह-मीमांसा

पुस्तक के रचयिता

श्री गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए०

Fine Art Printing Cottage, Allahabad

विधवा-विवाह-मीमांसा

आरम्भ

अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या

—अथर्ववेद, काण्ड ३, सूक्त ३०, मन्त्र १

परम-पिता परमात्मा इस वेद-मन्त्र द्वारा उपदेश करते हैं कि, हे संसार के मनुष्यो! तुमको चाहिये कि, एक-दूसरे के साथ इस प्रकार व्यवहार करो, जसे एक गौ अपने नव-जात बछड़े के साथ करती है। गौ का अपने हाल के उत्पन्न हुए बछड़े के साथ कैसा प्रेम-युक्त व्यवहार होता है, इसका और कोई दृष्टान्त ही नहीं मिलता! बछड़ा मल में सना हुआ है; परन्तु गौ-माता न केवल

उसका मल ही दूर करती है; किन्तु उसको अपना अमूल्य मधुर-दूध पिला कर शक्ति भी प्रदान करती है! इसी प्रकार ईश्वर की ओर से आज्ञा है कि, हम लोग भी एक-दूसरे की बुराइयों को हटाने और उनके दुःख दूर करने का यत्न किया करें—परस्पर प्रेम से बरतें और एक-दूसरे पर कभी अत्याचार न करें! प्रायः देखा जाता है कि, जो जातियाँ वेदों के इस उपर्युक्त उपदेश को भुला देती हैं, उनमें व्यक्तिगत और समाजगत अनेक अत्याचार आ जाते हैं—बलवान् निर्बलों को सताने लगते हैं और सभ्यता का नाश हो जाता है। आजकल भारतवर्ष में विधवाओं पर जो अत्याचार हो रहे हैं, वह केवल वेदों से विमुख होने ही का फल है। मनुष्य-समाज का बलवान् अङ्ग अर्थात् पुरुष शक्तिशाली होने के कारण, अपने लिये तो अनेक विवाहों का अधिकारी बताता है; परन्तु जब अबलाओं के पुनर्विवाह का प्रश्न उपस्थित किया जाता है, तो अनेक आक्षेप करता है।

यद्यपि प्राचीन काल में विधवा का पुनःसंस्कार धर्म के अनुकूल समझा जाता था एवँ आवश्यकताऽनुसार उसका प्रचार भी होता था और वर्त्तमान समय में भी अनेक देशों और जातियों में इसका प्रचार है; तथापि कुछ काल से आर्य्य-जाति के उच्च-वर्गों में इसको धर्म विरुद्ध समझा जाने लगा है। जिसके कारण अनेक प्रकार के दोष हिन्दू-समाज में प्रविष्ट होकर उसकी जड़ काटने का काम कर रहे हैं। अतः यहाँ विधवा-विवाह की पूरी मीमांसा की

जायगी। विधवा-विवाह धर्मानुकूल है या धर्म-विरुद्ध इसका निश्चय करने के लिये निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है :—

(१) विवाह का प्रयोजन क्या है? मुख्य-प्रयोजन क्या और गौण-प्रयोजन क्या? आजकल विवाह में किस २ प्रयोजन पर दृष्टि रक्खी जाती है?

(२) विवाह के सम्बन्ध में स्त्री और पुरुष के अधिकार और कर्तव्य समान हैं या असमान? यदि समानता है, तो किन-किन बातों में और यदि भेद है तो किन-किन बातों में?

(३) पुरुषों का पुनर्विवाह और बहु-विवाह धर्मानुकूल है या धर्म-विरुद्ध? शास्त्र इस विषय में क्या कहता है?

(४) स्त्री का पुनर्विवाह उपर्युक्त हेतुओं से उचित है, या अनुचित?

(५) वेदों से विधवा-विवाह की सिद्धि।

(६) स्मृतियों की सम्मति।

(७) पुराणों की साक्षी।

(८) अङ्गरेज़ीक़ानून (English Law) की आज्ञा।

(९) अन्य युक्तियाँ।

(१०) विधवा-विवाह के विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर :—

(अ) क्या स्वामी दयानन्द विधवा-विवाह के विरुद्ध हैं ?
(आ) विधवाएँ और उनके कर्म्म तथा ईश्वर-इच्छा;
(इ) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं;
(ई) कलियुग और विधवा-विवाह;
(उ) कन्यादान विषयक आक्षेप;
(ऊ) गोत्र विषयक प्रश्न;
(ऋ) कन्यात्व नष्ट होने पर विवाह वर्जित है;
(ॠ) बाल-विवाह रोकना चाहिये, न कि विधवा-विवाह की प्रथा चलाना;
(ऌ) विधवा-विवाह लोक-व्यवहार के विरुद्ध है;
(ॡ) क्या हम आर्य्य-समाजी हैं, जो विधवा-विवाह में योग दें ?

(११) विधवा-विवाह के न होने से हानियाँ:—

(क) व्यभिचार का आधिक्य;
(ख) वेश्याओं की वृद्धि;
(ग) भ्रूण-हत्या तथा बाल-हत्या;
(घ) अन्य क्रूरतायें;
(ङ) जाति का ह्रास;

(१२) विधवाओं का कच्चा-चिट्ठा ।

(१३) विधवाओं की दुर्दशा।

(१४) विद्वानों की सम्मतियाँ।

इस पुस्तक में चौदह अध्याय होंगे, जिन में क्रमशः उपर्युक्त विषयों की आलोचना होगी !

पहिला अध्याय

विवाह के प्रयोजन

ईश्वर की सृष्टि में दो प्रकार की शक्तियाँ पाई जाती हैं:—एक पुरुष-शक्ति और दूसरी स्त्री-शक्ति ! इन दोनों के संयोग से ही वंश-वृद्धि होती है। परमात्मा ने इन दोनों शक्तियों में एक प्रकार का ऐसा स्वभाव उत्पन्न किया है कि, वह एक-दूसरे की ओर स्वयँ ही आकर्षित होती हैं। यह नियम न केवल मनुष्य-जाति में ही पाया जाता है; किन्तु पशु-पत्ती, कीट-पतङ्ग आदि सब ही इसका अनुकरण करते हैं। घोड़ा घोड़ी को देख कर हिनहिनाता है। शुक-सारिका अपने-अपने जोड़ों की ओर स्वयँ ही प्रलोभित होते हैं। साँप और साँपिन साथ-साथ रहना पसन्द करते हैं। मक्खी और मक्खे में स्वाभाविक प्रेम होता है। इसी प्रकार पुरुष और स्त्री सहवास में ही आनन्द-लाभ करते हैं; परन्तु मनुष्य-जाति और इतर जातियों की कार्य्य-प्रणाली में भेद है। ईश्वर ने मनुष्य को ज्ञान दिया है; और पशु-पत्ती को नहीं; परन्तु इस बहुमूल्य वस्तु अर्थात ज्ञान के उपलक्ष में मनुष्य को कर्म्म करने में स्वतन्त्रता दी गई है और पशु-पक्षियों को परतन्त्र बनाया गया है। दार्शनिक

परिभाषा में यों कहिये कि, मनुष्य कर्म्म-योनि और भोग योनि दोनों है और मनुष्य को छोड़ कर अन्य सब प्राणि-वर्ग केवल भोग-योनि हैं। वह जो कुछ करते हैं, स्वभाव से प्रेरित होकर करते हैं—प्रयोजन को दृष्टि में रखना और उसकी सिद्धि के विषय में तर्क करना उनकी शक्ति के बाहर है। मनुष्य को जहाँ बुद्धि दी गई है, वहाँ उसके सिर पर उत्तरदायित्व का भार भी है। वह किसी काम को चाहे करे, चाहे न करे और चाहे उलटा करे; जैसा करेगा, वैसा फल पावेगा!

ईश्वर ने पशु-पत्तियों की सामाजिक योजना अपने हाथ में रक्खी है। जो नियम उसने इस विषय में बना दिये हैं, उनको वह भङ्ग कर ही नहीं सकते। ऋतुगामी होना उनका स्वभाव है; उनके लिये संस्कार विशेष की आवश्यकता नहीं; परन्तु मनुष्य को स्वतन्त्र और नियमोलङ्घन करने में समर्थ होने के कारण अपने समाज का सङ्गठन स्वयँ ही करना पड़ता है। यदि वह नियमों का पालन करता है, तो समाज की उन्नति होती है और यदि पालन नहीं करता, तो समाज नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है!

हम ऊपर कह चुके हैं कि, स्त्री और पुरुष में पारस्परिक आकर्षण शक्ति है और इस आकर्षण को नियमित करने का ही नाम विवाह है। अतः विवाह से दो प्रयोजन हैं; एक सन्तानोत्पत्ति और दूसरा इस स्वाभाविक आकर्षण को नियम में रखना! समस्त प्राणियों को भूख लगती है—जब वह किसी खाद्य पदार्थ को देखते

हैं, तो उसको खाने की इच्छा करते हैं ! अब यदि प्रश्न किया जाय कि, भोजन करने का क्या प्रयोजन है ? तो इसके दो ही उत्तर हैं:—एक तो यह कि, यदि भोजन न किया जाय, तो शरीर नित्य-प्रति दुबला होता जायगा और थोड़े ही काल में जीवन की समाप्ति हो जायगी: दूसरा यह कि, प्राणियों में खाने की जो स्वाभाविक इच्छा है, उसको नियम में रखना ! भोजन करने का मुख्य प्रयोजन शरीर का स्वास्थ्य ठीक रखना ही है; परन्तु यदि भूख न लगा करती, तो खाने के लिये कष्ट उठाने वाले थोड़े ही होते। इसीलिये ईश्वर ने भूख को उत्पन्न किया है, जिससे बिना सोच-विचार के मनुष्य को भोजन की इच्छा हो ही जाती है। बच्चा उत्पन्न होते ही भोजन माँगने के लिये रोने लगता है, तो वह यह नहीं समझता कि, मैं शरीर-रक्षा के लिये दूध माँग रहा हूँ। उस बिचारे को यह पता भी नहीं कि, दूध किसे कहते हैं—शरीर क्या वस्तु है और दूध का शरीर के स्वास्थ्य से क्या सम्बन्ध है। उस समय वह स्वभावत: ही भूख से पीड़ित होकर चिल्लाता और दूध मिलते ही सन्तुष्ट हो जाता है ! इसलिये एक अवस्था में गौण-प्रयोजन अर्थात् भूख की निवृत्ति भी मुख्य ही हो जाती है। प्राय: ऐसा होता है कि, जो खाना आरम्भ में भूख की निवृति के लिये खाया जाता है और जिसका मुख्य प्रयोजन शरीर का स्वास्थ्य है, उसको लोग स्वास्थ्य के बिगाड़ने के लिये भी खाते हैं। हम प्राय: बहुत सी वस्तुएँ ऐसी खाते हैं—जैसे शराब वग़ैर:, जिससे यद्यपि हम को स्वाद मिलता

है, तथापि उससे शरीर को हानि पहुँचती है। इसलिये वैद्यों ने भोजन के नियम बनाये हैं, जिनसे दोनों कार्य्य सिद्ध हो सकें; अर्थात् :—

[१] मुख्य-प्रयोजन—शरीर-रक्षा;

[२] गौण-प्रयोजन—स्वाद की सन्तुष्टि।

वैद्यक-शास्त्र के देखने से विदित होता है कि, यह दोनों प्रयोजन ही दृष्टि में रक्खे जाते हैं और कटु-कषाय वस्तुएँ भोजन से निकाल दी जाती हैं। कई वस्तुएँ भोजन में केवल इसलिये रक्खी जाती हैं कि, उनके द्वारा भोजन भली प्रकार खाया जा सके।

इसी प्रकार विवाह के भी दो प्रयोजन हैं—पहिला अर्थात् मुख्य-प्रयोजन-सन्तानोत्पत्ति है; परन्तु यदि सन्तानोत्पत्ति ही स्त्री-पुरुष के संयोग का कारण होता और स्वभावतः उनमें आकर्षण न होता, तो प्रति शतक एक भी सन्तानोत्पत्ति के झगड़ों में न पड़ता; इसीलिये परमात्मा ने परस्पर संयोग का स्वभाव उत्पन्न कर दिया है। अतः इस संयोग को नियम में रखना भी विवाह का एक प्रयोजन है; यद्यपि यह गौण है। जिस प्रकार बिना नियम के भोजन करने वाले इसके मुख्य-प्रयोजन अर्थात् शरीर-रक्षा को भूल जाते हैं, उसी प्रकार यदि स्त्री-पुरुषों के सहवास का नियम न हो, तो शारीरिक तथा सामाजिक भयङ्कर परिणाम निकलने लगते हैं, अतः विवाह के नियम बनाते समय दो बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है; अर्थात् :—

(१) स्त्री-पुरुष के परस्पर संयोग की स्वाभाविक इच्छा भी पूर्ण हो जाय ;

(२) और उससे मुख्य प्रयोजन अर्थात् सन्तानोत्पत्ति की भी सिद्धि हो सके !

स्त्री-पुरुष में परस्पर संयोग की इच्छा सन्तान की इच्छा से कई गुनी बलवान् है। पशु-पत्ती तो संयोग यह सोच कर कभी नहीं करते कि, उनके सन्तान होगी। वह तो स्वयँ एक प्रकार की अनिर्वचनीय शक्ति से आकर्षित हो जाते हैं; परन्तु मनुष्य में भी सन्तानोत्पत्ति की इच्छा संयोग की इच्छा की अपेत्ता बहुत कम होती है और जो स्त्री-पुरुष केवल सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से ही संयोग करते हैं, वे केवल वही होते हैं, जिनको इन्द्रिय-दमन की पूर्ण शित्ता मिली है और जिन्होंने कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर भली भाँति विचार किया है। साधारणतया तो उनके मिलने का कारण केवल एक प्रकार की अकथनीय स्वाभाविक इच्छा ही होती है। इसलिये जहाँ विवाह का मुख्य-प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति रक्खा गया है, वहाँ उस गौण-प्रयोजन पर भी पूरा ध्यान दिया गया है कि, स्वाभाविक संयोग करने की इच्छा की नियमपूर्वक पूर्त्ति हो जाय। इसीलिये शास्त्रों में यत्र-तत्र आदेश मिलता है कि, यदि पुरुष ब्रह्मचारी और स्त्री ब्रह्मचारिणी न रह सकें अर्थात् वह इस स्वाभाविक इच्छा का दमन न कर सकें, तो विवाह कर लें अर्थात् उन नियमों को दृष्टि में रखते हुए संयोग करें, जिनसे वह इच्छा उचित सीमा से बाहर

न जा सके। इन नियमों के अनुकूल संयोग करने का नाम ही विवाह है और गृहस्थाश्रम के मूलाधार—विवाह के ही नियम हैं।

यदि हम संसार की वर्त्तमान स्थिति पर विचार करें, तो वहाँ भी हमको यही नियम कार्य्य करता हुआ दिखाई पड़ता है। जब किसी पुरुष की लड़की १३ या १४ वर्ष की होती है, तो वह कहता है कि, अब यह लड़की विवाह के योग्य हो गई—इसका विवाह कर देना चाहिये। यदि उस लड़की की आयु १६ या १७ वर्ष की हो जाती है और विवाह करने में कुछ विघ्न उपस्थित होते हैं, तो वह बड़ा चिन्तित होता है; क्योंकि वह जानता है कि, पुरुष से मिलने की स्वाभाविक इच्छा से प्रेरित होकर, जिसको कामचेष्टा के नाम से पुकारते हैं, कहीं वह नियम-भङ्ग न कर बैठे। वहाँ पिता को यह पूछने की आवश्यकता नहीं कि, लड़की सन्तानोत्पत्ति की इच्छा रखती है या नहीं! सम्भव है कि, लड़की को स्वप्न में भी सन्तान की चाह न हो; परन्तु उसके पिता को भली भाँति मालूम है कि, यदि लड़की का विवाह न किया गया, तो काम-चेष्टा के वशीभूत होकर वह नियमों को उल्लङ्घन कर देगी। इसी प्रकार माता-पिता अपने पुत्र का भी विवाह करते हैं। उनको भय होता है कि, यदि अमुक समय तक विवाह न किया गया, तो लड़का नियम-विरुद्ध रीतियों से स्त्री-प्रसङ्ग की सामग्री इकट्ठी कर लेगा।

बहुत से लोग कहेंगे कि, धर्म तो यही बताता है कि, केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये ही विवाह किया जाय और बिना सन्तानो-

त्पत्ति की इच्छा के विवाह करना पाप है; परन्तु ऐसा कहने वालों ने धर्म के केवल एक अङ्ग पर विचार किया है—सब अङ्गों पर नहीं! इसमें सन्देह नहीं कि विवाह का मुख्य उद्देश सन्तानोत्पत्ति ही है, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है; परन्तु केवल इस मुख्य उद्देश को ही दृष्टि में रख कर समस्त मनुष्य कार्य्य नहीं कर सकते। उनकी स्वाभाविक शक्ति को देखना और उसके अनुकूल उनके कर्त्तव्य का निश्चय करना भी तो धर्म के अन्तर्गत ही है। धर्मशास्त्रों के संस्थापक इस बात पर बड़ा ध्यान रखते हैं कि, जिस धर्म का प्रतिपादन किया जा रहा है, उस पर चलने की मनुष्यों में शक्ति भी है या नहीं! उदाहरण के लिये हम मनुजी का प्रमाण देते हैं—मानव-धर्म-शास्त्र की आज्ञा है कि, हिंसा करना सब से अधिक पाप है। मनुष्य का धर्म है कि, चींटी क्या, इससे भी छोटे जन्तुओं को पीड़ा न दे; परन्तु मनुजी ने इस बात पर विचार किया होगा कि, मनुष्य को खाना पकाने, झाड़ू देने, चलने-फिरने आदि में अपनी इच्छा के विरुद्ध भी कुछ न कुछ हत्या करनी ही पड़ती है—चाहे अनजाने ही क्यों न हो—इनसे सर्वथा बचा रहना उसकी शक्ति से बाहर है; इसीलिये उन्होंने इसके प्रायश्चित्त के लिये पञ्च-यज्ञ महाविधि का विधान किया है। इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य अपनी आय का सम्पूर्ण भाग दान दे या अधिकांश दान दे दिया करे, तो अच्छा ही है। बहुत से पुरुष हैं,

जो अपनी आय का बहुत-कुछ भाग दरिद्रों और पीड़ितों की सहायता में दे देते हैं; तथापि सर्व-साधारण के लिये यह नियम रख देना उनकी शक्ति से बाहर हो जाता। अतः शास्त्र ने आज्ञा दी है कि, अपनी आय का दशाँश दान कर दिया करो। कहने का तात्पर्य्य यह है, कि धर्म अर्थात् कर्त्तव्य के निश्चय करते समय कर्त्ता की शक्ति पर पूर्ण विचार आवश्यक है।

धर्म के मुख्यतः दो अङ्ग हैं—एक तो उद्देश्य और दूसरा उस उद्देश की पूर्त्ति का साधन। इन साधनों के दो भाग हैं:—

(१) उस उद्देश तक पहुँचने के लिये किस मार्ग पर चलना चाहिये ?

(२) उस मार्ग से भटक न जायँ, इस बात के लिये क्या-क्या कार्य्य करना चाहिये ?

इस प्रकार जो कार्य्य मनुष्य को अधर्म से बचाते हैं, वह भी धर्म में ही गिने जाते हैं। इसके लिये एक दृष्टान्त दिया जाता है। सभी जानते हैं कि, युद्ध कोई अच्छी वस्तु नहीं है; क्योंकि इससे मनुष्य-जाति को अनेक प्रकार के भयङ्कर कष्ट उठाने पड़ते हैं; परन्तु राजा के लिये विशेष अवस्थाओं में युद्ध करना इसलिये धर्म माना गया है कि, युद्ध बहुत से अधर्म और अन्यायों को रोकता है। किसी कसी अवस्था में तो राजा के लिये युद्ध न करना

पाप बताया गया है, क्योंकि युद्ध के न होने से अत्याचार अपनी सीमा से बढ़ जाते हैं और उसके बिना उनका सुधार हो ही नहीं सकता।

इसी प्रकार यद्यपि समस्त आयु पर्य्यन्त ब्रह्मचारी तथा जितेन्द्रिय रहना धर्म है; परन्तु ऐसा करना सर्व-साधारण की शक्ति के बाहर है। एक करोड़ मनुष्यों में एक भी मुश्किल से मिलेगा, जो आयु पर्य्यन्त ब्रह्मचारी रह सके। विवाह करने से अनियमित काम-चेष्टा की रोक होती है, इसलिये यह भी धर्म्म में ही सम्मिलित है। जिस प्रकार यह सिद्ध है कि, राजा को युद्ध उसी समय करना चाहिये, जब अन्याय रोकने के लिये उसकी आवश्यकता हो और मनुष्य की प्रकृति इस प्रकार की है कि, राजा को युद्ध करने के लिये मजबूर होना ही पड़ता है; इसी प्रकार नियम-विरुद्ध काम-चेष्टा तथा पाशविक व्यवहार को रोकने के लिये विवाह की आवश्यकता पड़ती है। यह विवाह उस समय तक न्यायसङ्गत है, जब तक उससे दो कार्य्य सिद्ध हो सकें:—

(१) सन्तानोत्पत्ति;

(२) अनियमित काम-चेष्टा या व्यभिचार का रोकना।

मनुष्य की प्रवृत्ति बताती है कि, यदि विवाह-प्रणाली न हो, तो व्यभिचार बहुत बढ़ जाय और इसके साथ यह बात भी, इतिहास तथा मनुष्य-जाति की गति पर दृष्टि डालने से, स्पष्टतया विदित हो जाती है कि, यदि विवाह के इतने कड़े नियम बनाये जायँ, जिनके

भीतर रहना सर्व-साधारण की शक्ति के बाहर हो, तब भी व्यभिचार बढ़ता है। यह दो प्रकार से होता है :—

(१) गुप्त रीति से व्यभिचार करना ; और

(२) नियमों को जान बूझ कर तोड़ना।

सब जानते हैं कि, चोरी करना पाप और महापाप है, परन्तु जब सामाजिक नियम इतने कड़े हो जाते हैं कि, लोगों को खाने को नहीं मिलता, तो वह गुप्त या प्रकट रीति से चोरी करने लगते है और भयङ्कर से भयङ्कर दण्ड तथा जेलखाने भी इनको रोक नहीं सकते।

किसी मनुष्य को नियम में रखने के लिये दो बातों की आवश्यकता है :—

(१) नियम इतने सरल भी न हों कि, उनको नियम न कहा जा सके ; और

(२) इतने कड़े भी नहीं, जिन पर चलना अधिकांश जन-संख्या की शक्ति के नितान्त बाहर हो।

यदि नियम केवल नाम मात्र ही हों अर्थात् यदि विवाह का ऐसा नियम बना दिया जाय कि, कोई स्त्री किसी पुरुष के साथ जब चाहे और जहाँ चाहे बिना किसी विशेष सीमा के सम्भोग कर सके ; तो यद्यपि यह भी एक प्रकार का नियम है, तथापि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय, तो यह नियम केवल कथनमात्र ही है; इसका होना

न होना बराबर है अर्थात् यदि ऐसा नियम न होता, तो भी वही परिणाम निकलता, जो इस नियम के होने से निकलता है।

परन्तु उसके साथ ही यदि केवल यह नियम बना दिया जाय कि, जब तक सन्तान की इच्छा और आवश्यकता सिद्ध न हो, उस समय तक स्त्री या पुरुष को परस्पर सम्बन्ध करने की आज्ञा ही न दी जाय, तो यह नियम सर्व-साधारण की शक्ति से बाहर है और हज़ार में एक मनुष्य का भी इस पर चलना सम्भव नहीं! अतः इस कड़े नियम से भी वही परिणाम निकलेगा, जो उसके न होने से निकलता अर्थात् या तो लोग गुप्त रीति से इस नियम का उलङ्घन करेंगे या इस नियम से तङ्ग आकर खुल्लमखुल्ला इसका सामना करेंगे और अपने सुभीते के लिये अन्य नियम बना लेंगे। इस लिये इन दोनों के मध्यवर्त्ती एक ऐसा नियम बना दिया गया है कि, यदि स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य्य के पालन में असमर्थ हों, तो वह विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करलें अर्थात् अपनी काम-चेष्टा को इतना सन्तुष्ट करलें, जिससे मुख्य उद्देश अर्थात् सन्तानोत्पत्ति की पूर्ति हो जाय। लोक में भी यही देखने में आता है—स्त्री और पुरुषों के विवाह इसी उद्देश को ध्यान में रख कर किये जाते हैं।

कुछ लोगों का विचार है कि, विवाह का एक मात्र उद्देश स्त्री-पुरुष के प्रेम की वृद्धि है; परन्तु यह केवल वाग्जाल है। जब हम कहते हैं कि, गृहस्थ-प्रेम का आधिक्य ही विवाह का प्रयोजन है, तो हम केवल शब्दों की रोचकता पर ही मुग्ध होकर कहते हैं—

उनके अर्थों पर गम्भीर दृष्टि नहीं डालते। वस्तुतः प्रेम-वृद्धि से भी वही तात्पर्य्य है, जो ऊपर कहा गया है अर्थात् स्त्री और पुरुष में परस्पर संयोग की जो स्वाभाविक इच्छा है, उसको नियम के अनुकूल रखना! सम्भव है कि, कोई ऐसा आक्षेप करने लगे कि, तुमने प्रेम जैसे उच्च-भाव को काम-चेष्टा जैसे निकृष्ट-भाव का समानार्थक समझ लिया; परन्तु यह बात नहीं है। दाम्पत्य-प्रेम का वही अर्थ नहीं होता, जो भाई-बहिन के प्रेम, पिता-पुत्र के प्रेम एवँ माता और पुत्री के प्रेम का होता है। वस्तुतः प्रेम शब्द पर पूर्ण विचार करने से ही पता चलता है कि, जब हम यह कहते हैं कि, अमुक स्त्री अमुक पुरुष से प्रेम करती है या अमुक पुरुष अमुक स्त्री से प्रेम करता है, तो इसका वही तात्पर्य्य नहीं होता, जो उस समय होता है, जब हम यह कहते हैं कि अमुक पुरुष अपने पुत्र से प्रेम करता है। रही उच्च-भाव या नीच-भाव की बात: उसके विषय में केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि, परमात्मा ने मनुष्य को जो-जो भाव दिये हैं, वह सभी उच्च और पवित्र हैं। केवल उनका सीमा से बढ़ जाना या दुष्ट-प्रयोग करना ही नीचता है! जिस प्रकार स्त्री और पुरुष के प्रेम को सीमा से बढ़ जाने या दुरुपयोग की दशा में काम-चेष्टा के दुष्ट नाम से सम्बोधित करते हैं, उसी प्रकार पिता और पुत्र के प्रेम को सीमा से बढ़ जाने या दुरुपयोग करने की दशा में मोह जैसे दूषित नाम से पुकारते हैं। बात वही है, उसमें कुछ भेद नहीं पड़ता!!

दूसरा अध्याय

स्त्री और पुरुष के अधिकार एवं कर्त्तव्य

अब प्रश्न यह है कि, विवाह के उपर्युक्त प्रयोजनों को लक्ष में रखते हुए स्त्री और पुरुष के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों में कितना साधर्म्य वा वैधर्म्य है ? इसमें सन्देह नहीं कि, स्त्री और पुरुष की शारीरिक आकृति तथा आन्तरिक स्वभाव में अनेकों समानताएँ और अनेकों भेद हैं ; परन्तु यदि विचार किया जाय, तो समानताएँ अधिक और भेद कम हैं। भेदों का होना तो स्वाभाविक है ; क्योंकि यदि भेद न होता, तो स्त्री-पुरुष नाम ही अलग-अलग न होते। पदार्थ की भिन्नता से ही पदों की भिन्नता है ; परन्तु प्रायः देखा जाता है कि, इस भेद को, जहाँ तक इसका सम्बन्ध कर्त्तव्य और अधिकार से है, अत्युक्ति के साथ कथन किया गया है। नीम और आम के वृक्ष यद्यपि भिन्न-भिन्न होते हैं, तथापि इस भेद के कारण उनके पालन-पोषण की आवश्यकता में भेद नहीं होता। जिस प्रकार नीम को जल-वायु तथा प्रकाश की आवश्यकता है; उसी प्रकार आम को; परन्तु स्त्री और पुरुष में तो इतना भी भेद नहीं, जितना नीम और आम के वृक्षों में है। स्त्री और पुरुष के शरीर की आवश्यकताएँ एक सी

हैं। भोजन-आदन दोनों के समान हैं या कम से कम एक से होने चाहिये।

प्रायः भारतवर्ष तथा दो-एक अन्य देशों में स्त्रियों के लिये शुद्ध वायु तथा प्रकाश की इतनी आवश्यकता नहीं समझी जाती, जितनी पुरुषों के लिये! सभी पुरुष जानते हैं कि, सूर्य्य के प्रकाश के बिना हमारा जीवन ही दुःसाध्य हो जाता है। न केवल नेत्रों के लिये ही सूर्य्य देव की सहायता की आवश्यकता है; किन्तु शरीर के समस्त अवयवों की वृद्धि के लिये सूर्य्य के प्रकाश की जरूरत है। परन्तु कुछ महानुभावों ने स्त्रियों के लिये इसकी आवश्यकता ही नहीं समझी और उनका नाम "असूर्य्यंपश्या" रख दिया। यदि केवल नाम का ही प्रश्न होता, तो कुछ हानि नहीं थी। वस्तुतः यदि देखा जाय, तो अधिकांश में स्त्रियाँ ईश्वर के इस अमूल्य दान से वञ्चित रक्खी जाती हैं और उन की पञ्चज्ञानेन्द्रियों के गोलकों को घूँघट से छिपा कर उनकी इन्द्रियों को कलुषित अथवा कुण्ठित कर दिया जाता है। इससे उनके शरीर को कितनी हानि होती है, इसका परिमाण उस मृत्यु-संख्या से जाना जा सकता है, जो दिन प्रति दिन स्त्री-जाति में होती है *। गत युद्ध-ज्वर के अवसर पर

---

* सन् १९११ ई० के अखिल भारतीय मनुष्य-गणना-विवरण (Census Report of India, 1911, Vol. I. Pt. I) के पृष्ठ १६६ के चित्र से विदित होता है कि, युवती-स्त्रियाँ युवा-पुरुषों की अपेक्षा अधिक

देखा गया था कि, स्त्रियाँ पुरुषों से कई गुनी अधिक मरीं ! यह क्यों ? केवल इसलिये कि, उनके शरीर पुष्कल प्रकाश और पुष्कल वायु के न प्राप्त होने के कारण बहुत दुर्बल होगये हैं और वह भयङ्कर रोगों का सामना नहीं कर सकते। भारतवर्ष की उच्च-जातियों में इन अत्याचारों की मात्रा अधिक पाई जाती है और जो स्त्री सब से कम वायु तथा प्रकाश का सेवन करे, उसे सबसे उच्च समझा जाता है। मुझे केवल अपने घर का अनुभव है। मेरी पूज्य माता जी बताती हैं कि, उनकी सास के समय में बहुएँ सूर्य्योदय से पूर्व ही कोठे के भीतर चली जाती थीं और वहीं किवाड़ों के भीतर अपना कार्य्य करती रहती थीं, केवल सूर्य्यास्त के पश्चात् ही उनको बाहर अर्थात् तङ्ग आँगन में आने की आज्ञा होती थी। वह वास्तव में "असूर्य्यपश्या" थीं और इस नियम का अपवाद केवल उनके पिता के घर ही हो सकता था। मेरी एक दादी के लिये प्रसिद्ध है कि, थोड़े दिन सुसराल के कड़े नियमों का पालन करने के पश्चात् उनका शरीर इतना पल गया था कि, चुकटी से उनका चमड़ा नोंच लिया जा सकता था। इस पर उनके पिता की ओर

मरती हैं। बङ्गाल प्रान्त में ११ वर्ष से लेकर १२ वर्ष की आयु तक, बम्बई में १८ और ३५ वर्ष के बीच में, ब्रह्मा में २४ और ४४ वर्ष के बीच में, मद्रास में ७ और ३० वर्ष आयु के बीच में, संयुक्तप्रान्त में ९ और १७ वर्ष के बीच में स्त्रियों की मृत्यु अधिक होती है।

से बड़ा आन्दोलन हुआ और उसका केवल इतना परिणाम निकला कि, मेरे प्रपितामह सायँकाल के समय आकर यह आज्ञा दे जाया करते थे कि, बहुओं को रात्रि के समय कोठे की छत्तों पर भ्रमण करने के लिये भेज दिया जाया करे। यद्यपि आज कल ऐसे कड़े नियम भारतवर्ष में देखने में नहीं आते, तथापि यहाँ के उच्च-वर्गों में आजकल भी इससे कुछ ही कम अत्याचार स्त्रियों पर किया जाता होगा और जिस प्रकार अन्धेरे में नित्य-प्रति रहने वाले नेत्रों को प्रकाश से चकाचौंध मालूम होता है, इसी प्रकार स्त्रियों को परम्परा से घर के भीतर रहते-रहते ऐसा स्वभाव हो गया है कि, प्रकाश से भली प्रकार लाभ उठाना उनके लिये दुर्लभ है। परन्तु यह बड़ी भारी भूल है; क्योंकि स्त्रियों के शरीर भी वायु और प्रकाश में उसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं, जैसे पुरुषों के! अतएव कोई ऐसा कारण नहीं है कि, स्त्रियों के शरीर की वृद्धि की आवश्यकता न हो।

जिस प्रकार स्त्रियों तथा पुरुषों की शारीरिक आवश्यकताएँ समान हैं, उसी प्रकार उनकी मनोवृद्धि तथा आत्मिकोन्नति में दो बातें सम्मिलित हैं—प्रथम मस्तिष्क-विकाश; द्वितीय हृदय-विकाश! मस्तिष्क विकाश का साधन विद्या है और हृदय-विकाश का साधन आचार की शुद्धता! बिना विद्या के मस्तिष्क का विकाश हो ही नहीं सकता और यदि मस्तिष्क विकसित न हो, तो स्त्रियाँ पशुवत् रह जाती हैं। ज्ञान के अभाव से हृदय का विकाश भी उन्नत नहीं

हो सकता। हृदय का विकाश सदाचार की शुद्धता से ही होता है और उसका तथा विद्योपार्जन का घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिये। सदाचार व्यावहारिक है और विद्या काल्पनिक! व्यावहारिक तथा काल्पनिक उन्नति समकालीन होती है। अत: जो लोग स्त्रियों के लिये आचार की आवश्यकता समझते हैं; परन्तु उनको विद्या से वञ्चित रखना चाहते हैं, वह सङ्गमरमर के महल को रेत की नींव पर बनाना चाहते हैं। जिस प्रकार यदि शरीर में एक हाथ बलिष्ठ हो जाय और शेष अवयव दुर्बल रह जायँ, तो ऐसे शरीर को रोग-ग्रसित समझा जाता है, उसी प्रकार शरीर, मस्तिष्क तथा हृदय में से किसी एक या दो का अत्यन्त बढ़ जाना और शेष का बलहीन रह जाना मनुष्य की रुग्ण-अवस्था का सूचक है। तमाशा यह है कि, स्त्रियों के यह तीनों अङ्ग ही अपूर्ण हैं। शरीर तो निर्बल है ही! मस्तिष्क, विद्याऽभाव के कारण वृद्धि पाने से रुक गये। शरीर और मस्तिष्क के न रहते हुए सदाचार की उन्नति की आशा व्यर्थ तथा असम्भव है!

बहुधा लोगों का कथन है कि, विद्या न पढ़ने से सदाचार सुरक्षित रहता है; परन्तु यह लोग सदाचार का वास्तविक अर्थ नहीं जानते। यदि सदाचार इसी वस्तु का नाम है, तो पत्थर तथा लकड़ी सब से अधिक सदाचारी ठहरते हैं; क्योंकि यह झूठ नहीं बोलते और न चोरी करते हैं!

सदाचार का मूलाधार ईश्वर-पूजा है, जिससे स्त्रियों को सर्वथा

वञ्चित रक्खा गया है और इस प्रकार के कपोल-कल्पित सिद्धान्त गढ़ लिये हैं कि, स्त्री को पति-भक्ति के सिवाय और कुछ कर्तव्य ही नहीं है * । इसमें सन्देह नहीं कि, स्त्री के लिये पति-भक्ति एक आवश्यक वस्तु है ; जैसा कि कहा है :—

"सा भार्य्या या गृहे दक्षा, सा भार्य्या या पतिव्रता ।
सा भार्य्या या पतिप्राणा, सा भार्य्या या प्रजावती ॥"

परन्तु पति-भक्ति पर इतना बल देना कि, अन्य सब कर्त्तव्य छूट जायँ, बड़ी भूल है । पति-भक्ति एक सामाजिक आवश्यक व्यवहार है, जिस प्रकार पत्नी-भक्ति पुरुष के लिये एक सामाजिक कर्त्तव्य है ; परन्तु क्या पुरुष का सम्बन्ध इस संसार में केवल स्त्री से ही है और स्त्री का केवल पति से ही ? क्या स्त्री को आत्मा का परमात्मा से कुछ भी सम्बन्ध नहीं, जैसा कि पुरुष की आत्मा का है ? वास्तव में बात यह है कि, पुरुषों ने स्त्रियों पर अत्याचार करने के निमित्त इस प्रकार के सिद्धान्त चला दिये हैं कि, वह अपने पति की ही सेवा-सुश्रूषा में लगी रहें और ईश्वरोपासना पर ध्यान न दें, जबकि पति लोगों के लिये स्त्री-व्रत की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती ।

अब प्रश्न यह है कि, यदि इन सब बातों में स्त्री-पुरुष समान

---

* "न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च ।
नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ॥"

ही हैं, तो क्या इन अधिकारों और कर्त्तव्यों में कुछ भेद भी है ? हाँ, है अवश्य ; परन्तु इसके कारण उनके (स्त्रियों के) अधिकार बढ़ ही जाते हैं, कुछ कम नहीं होते। प्रथम तो स्वभावतः स्त्रियाँ शारीरिक बल में कुछ न्यून होती हैं, जिसके कारण यह आवश्यक है कि, समाज की ओर से उनकी रक्षा के लिये ऐसे नियम बनाये जायँ, जिनसे समाज का अधिक बलवान् भाग अर्थात् पुरुष इन अबलाओं पर अत्याचार न कर सके ! दूसरे यह कि, उनका हृदय अधिक कोमल और प्रेमयुक्त होता है ; अतः बच्चों के पालन-पोषण का अधिक भार माता पर है, न कि पिता पर ! परन्तु इससे स्त्रियों के अधिकार बढ़ ही जाते हैं—कम नहीं होते !

प्रायः देखा गया है कि, असभ्य और सभ्य जातियों में यही भेद है कि, असभ्य जातियों में शारीरिक बल ही अधिकार होता है—वहाँ 'जिसकी लाठी उसी की भैंस' होती है। कोई मनुष्य किसी वस्तु पर अधिकार प्राप्त करने के लिये इससे अधिक कारण नहीं बता सकता कि, वह बलवान् है और उसे ले सकता है। किसी अमुक कार्य्य के औचित्य और अनौचित्य के लिये भी इससे अधिक कारण नहीं कि, वह शारीरिक बल रखता है और इसलिये उसके सम्मुख किसी की शक्ति नहीं कि, उसके अनुचित कार्य्य को धर्म-विरुद्ध कहने का साहस कर सके ! प्राचीन योरोप की असभ्य जातियों में यह प्रथा प्रचलित थी कि, यदि कोई पुरुष किसी दूसरे को अत्याचारी, झूठा या बेईमान सिद्ध करना चाहता था, तो उससे

कुश्ती लड़ता था। जो हार जाता, उसी का पक्ष गिर जाता था। समस्त स्मृति और धर्म-शास्त्र की एक मात्र नींव शारीरिक शक्ति पर थी; परन्तु सब जानते हैं कि, ऐसी प्रथा असभ्यता की जड़ है और इसमें समस्त प्रकार की उन्नतियाँ रुक कर मनुष्यों के व्यक्तिगत और सामाजिक अधिकार सुरक्षित न रहने से कर्त्तव्यता में भी बाधा पड़ती है। इस प्रथा के समय में कोई पुरुष अपने माल को अपना ही नहीं पुकार सकता, क्योंकि सम्भव है कि, उससे बलवान् पुरुष आकर माल छीन ले और उसे अपना कहने लगे। इसी प्रकार जो बलवान पुरुष होता है, वह मन-माना कार्य्य करता है और उससे कम बलवान् पुरुषों को आक्षेप करने का अधिकार ही नहीं!

सभ्य जातियों की गति इस से भिन्न है। वह ऐसे नियम बनाती हैं, जिनको पालन करता हुआ कमज़ोर से कमज़ोर मनुष्य भी अपने माल को सुरक्षित रख सकता और अपने नियमानुकूल कर्म्म के धर्म और अपने से बलवान् के नियम-विरुद्ध कार्य्य को अधर्म कह सकता और उसको नीचा दिखा सकता है!

असभ्य जातियों में कमज़ोर मनुष्यों को बलवान् लोग गुलाम बनाते और उनसे मन-माना काम लेते हैं। सभ्य जातियों में किसी का किसी पर उसकी इच्छा के बिना अधिकार नहीं है। सभ्य जातियों में एक छोटा सा बच्चा पैसे हाथ में लिये चला जाता है और यदि कोई उसके पैसे छीने, तो दण्डनीय होता है; परन्तु असभ्य जातियों में कुछ ठीक नहीं! जो छीन सके वही उसका अधिपति!!

हम ऊपर कह चुके हैं कि, स्त्रियों में शारीरिक बल पुरुषों की अपेक्षा कम होता है; इसलिये असभ्य जातियों में उपर्युक्त नियम के अनुसार उनको नीच समझा जाता और अनादर की दृष्टि से देखा जाता है। बहुत सी जातियों में स्त्रियों को बलात् पकड़ कर ब्याह लेने की प्रणाली है। आस्ट्रेलिया के निवासी यदि किसी अन्य जाति की स्त्री को बलात्कार लेना चाहते हैं, तो वह उसके डेरे के चारों ओर घूमते हैं। अगर वह पाते हैं कि, वह स्त्री बिना किसी रक्षक के बैठी है, तो उस पर कूद पड़ते, भाले से उसे कष्ट देते, बाल पकड़ कर घसीटते और जङ्गल में ले जाते हैं। जब वह होश में आती है, तो कहते हैं कि तू हमारे लोगों में चल! वहाँ उन सबकी उपस्थिति में सम्भोग करते हैं; क्योंकि उन के लिये स्त्री भेड़ बकरी के समान है। कभी-कभी दो पुरुष मिल कर यह काम करते हैं कि, किसी अन्य जाति की स्त्री की छाती पर एक बर्छी का सिरा निकट ले जाता है और दूसरा बालों पर भाले का सिरा लगाता है। जब लड़की जागती है, तो डरती-काँपती हुई चीख तक नहीं मार सकती और वह उसको पकड़ कर ले जाते हैं, किसी वृक्ष से बाँध कर लटका देते हैं और कष्ट देने के पश्चात् एक उसको अपनी स्त्री बना लेता है। न्यूगिनी टापू के पापन लोग जब किसी लड़की को अकेले में पाते हैं, तो उसके साथ सहवास करके उसे अपनी स्त्री बना लेते हैं! फिजी के टापू में भी यही प्रथा है। कभी-कभी आस्ट्रेलिया वाले तबादले

की शादियाँ करते हैं अर्थात् अपनी बहिन या किसी सम्बन्धी स्त्री को देकर उसके बदले में दूसरी स्त्री को विवाह के लिये ले लेते हैं, मानो वह कोई निर्जीव वस्तु है। हाटनटाट लोग यह समझते हैं कि, स्त्रियाँ सम्पत्ति हैं। इसलिये वह चुरा कर उनसे विवाह कर लेते हैं। फिजी वाले अपनी माताओं को निर्जीव वस्तु समझ कर मारते थे और अपनी स्त्रियों को वृक्षों से बाँधकर कोड़े लगाते थे कि, उनका तमाशा देखें! आस्ट्रेलिया में स्त्रियाँ मारी और घायल की जाती थीं और जो पति चाहते थे* वह अपनी स्त्रियों को मार कर खा लेते थे। फिजी का एक मनुष्य जिसका नाम लूटी था, अपनी स्त्री को पका कर खा गया !!

विवाह के लिये स्त्रियों की इच्छा को जानने की आवश्यकता तो भारतवर्ष में भी नहीं समझी जाती। पुरुष को स्त्री पर समस्त अधिकार हैं। वह मार-पीट सकता है, छोड़ सकता है। एक स्त्री के होते हुए अन्यों से सम्बन्ध जोड़ सकता है। स्त्री को मन-माने काम करने के लिए बाधित कर सकता है। उसके सम्बन्धियों को तिरस्कृत कर सकता है; परन्तु स्त्री का यही कर्त्तव्य है कि, वह अपने पति और उसके सम्बन्धियों की अयोग्य और अधर्मी होते हुए भी सेवा-सुश्रूषा किया करे!

वैदिक सभ्यता के समय में प्राचीन-भारत का यह नियम नहीं

---

* Evolution of marriage. pp. 90, 93 and 106.

था। उस समय वह स्त्रियों को अधिक मान और आदर की दृष्टि से देखता था! मनुस्मृति में लिखा है :—

"यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।"

—मनु० अ० ३ श्लो० ५६।

अर्थात् "जहाँ स्त्रियों का आदर होता है, वह देवस्थान और जहाँ स्त्रियों का अनादर होता है, वहाँ सब काम निष्फल हो जाते हैं।"

स्त्रियों के आदर का विशेष नियम इसलिये रक्खा गया है कि, स्त्रियाँ स्वभावतः निर्बल होने के कारण वह स्वयँ तो अपना आदर करा नहीं सकतीं; अतः समाज के नियम की आवश्यकता पड़ती है, जिससे यदि कोई पुरुष उनका आदर न करे, तो समाज द्वारा दण्डनीय हो। इसलिये विवाह के सम्बन्ध में जो अधिकार स्त्रियों को दिये गये हैं, वही पुरुषों को भी! अर्थात् जिस प्रकार विवाह में पुरुष की प्रसन्नता की आवश्यकता है, उसी प्रकार स्त्री की इच्छा की भी! जिस प्रकार स्त्री का कर्त्तव्य है कि, अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी से संयोग न करे, उसी प्रकार पुरुष का भी यही कर्त्तव्य है कि, अपनी स्त्री को छोड़ कर अन्य किसी से प्रसङ्ग न करे। "मातृवत् परदारेषु" अर्थात् "पराई स्त्री को माता के समान समझना

चाहिये" यह सुनहरा नियम सभ्य-समाज का है और उस पर चलना अत्यावश्यक समझा जाता है। जिस प्रकार पर-पुरुष-गमन से स्त्री कलुषित, व्यभिचारिणी तथा दण्डनीया समझी जाती है * उसी प्रकार पर-स्त्री-गमन से पुरुष भी कलुषित, व्यभिचारी तथा दण्डनीय माना जाता है—जिस प्रकार स्त्रियों के लिये सदाचारिणी होना आवश्यक है, उसी प्रकार पुरुषों के लिये भी सदाचार की जरूरत है!

आजकल जब हम हिन्दू-समाज की व्यावहारिक दशा पर दृष्टि डालते हैं, तो बड़ा भारी भेद पाते हैं। यद्यपि शास्त्रों में जहाँ कहीं धर्म के लक्षणों का विधान है, वहाँ स्त्री-पुरुष दोनों के लिये है। उदाहरण के लिये मनुजी के कहे हुए दस लक्षण (मनु० अध्याय ६, श्लोक ९२) अर्थात् धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध पुरुषों के लिये उसी प्रकार पालनीय हैं, जैसे स्त्री के लिये! महात्मा पतञ्जलि ने योग-दर्शन में

---

* "व्यभिचारात्तु भर्त्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।
शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते॥"

—मनु० अ० ५, श्लो० १६४

"अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्त्तारमतिवर्तते।
सेह निन्दामवाप्नोति पति लोकाच्च हीयते॥"

—मनु० अ० ५, श्लो० १६१

यम, नियम, आसन, प्राणायाम के उपदेश करते हुए लिङ्ग-भेद नहीं किया। सत्य यदि स्त्री के लिये कर्त्तव्य है, तो पुरुष के लिये भी! यदि क्रोध पुरुष के लिये हानिकारक है, तो स्त्री के लिये भी! यही इन्द्रिय-निग्रह आदि की दशा है। इससे प्रकट होता है कि शास्त्र की दृष्टि में स्त्री-पुरुष के कर्त्तव्य भिन्न नहीं हैं।

यहाँ एक बात और भी विशेषतः विचारणीय है—अर्थात् स्त्री-पुरुष दोनों की आत्मा तो निराकार और लिङ्ग-रहित ही है। लिङ्ग-भेद केवल शरीर की अपेक्षा से है और इन सब का उद्देश एक ही है अर्थात् मोक्ष-प्राप्ति! शास्त्र यही कहता है और इसी के साधनों का प्रतिपादन करता है। अब यदि वास्तविक रीति से विचार किया जाय, तो मोक्ष के साधन एक ही हैं और यह भी नियम नहीं है कि, पुरुष स्त्री की अपेक्षा या स्त्री पुरुष की अपेक्षा मोक्ष पद से अधिक निकट है। मोक्ष पद दोनों से बराबर ही की दूरी पर है। महाकवि भवभूति का कथन है कि—

गुणाः पूज्यस्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः॥

—उत्तर रामचरित, अङ्क ४

गुणियों के गुण पूज्य होते हैं, उनका लिङ्ग या आयु नहीं! कोई शास्त्र या युक्ति यह नहीं बताती कि, स्त्री को मोक्ष पाने के लिए पहले मनुष्य की योनि में जाना पड़ता है, तत्पश्चात् मोक्ष होती है। अब मोक्ष प्राप्ति के साधन अर्थात् यम-नियम से लेकर

समाधि तक कोई भी ऐसा नहीं है, जो पुरुष के लिये विधि और स्त्री के लिये निषेध समझा जा सके।

अब देखना चाहिये कि, जब अन्य लौकिक तथा पारलौकिक अधिकार और कर्त्तव्य स्त्रियों और पुरुषों के एक से हैं, तो विवाह के सम्बन्ध में क्यों भेद होगा। कुछ लोग कहेंगे कि, विवाह में स्त्री और पुरुष दोनों का संयोग होता है और दो भिन्न-भिन्न लिङ्गों के व्यक्ति एक विशेष कार्य्य के अर्थ नियोजित होते हैं। दो भिन्न भिन्न प्रकार के व्यक्तियों का मिलना ही बताता है कि, अधिकार और कर्त्तव्य उनके भिन्न-भिन्न होंगे ; परन्तु यह बात नहीं है। हम को नीचे लिखे अधिकारों पर विचार करना है :—

(१) विवाह के लिये दोनों की इच्छा की आवश्यकता है अथवा एक की ?

(२) क्या एक का दूसरे पर आधिपत्य है ? यदि है, तो किस का और यदि नहीं है, तो क्यों ?

(३) क्या एक स्त्री एक समय में कई पुरुषों से विवाह कर सकती है ?

(४) क्या एक पुरुष एक समय में कई स्त्रियों से विवाह कर सकता है ?

(५) क्या एक पुरुष मृत-स्त्री के पीछे अन्य स्त्री से विवाह कर सकता है ?

(६) क्या एक स्त्री मृत-पति के पीछे अन्यों से विवाह कर सकती है ?

सब से पहिले हम इच्छा के विषय में मीमांसा करते हैं। सब पर विदित है कि, विवाह एक प्रकार का विशेष सम्बन्ध है, जो स्त्री और पुरुष के बीच में होता है। यह न केवल शारीरिक सम्बन्ध ही है ; किन्तु मानसिक और आत्मिक भी ! परन्तु कोई भी मानसिक सम्बन्ध पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक उसका आधार इच्छा पर नहीं। सम्बन्ध बलात्कार भी हो सकता है , जैसा बहुधा जङ्गली जातियों अथवा कामी पुरुषों में हुआ करता है; परन्तु इसको विवाह नहीं कह सकते और उसका प्रभाव गृहस्थ-संस्था तथा सन्तानोत्पत्ति दोनों के ऊपर बुरा पड़ता है। गृहस्थ-संस्था के लिये प्रेम की महती आवश्यकता है। यह प्रेम बिना इच्छा के हो ही नहीं सकता। रही सन्तानोत्पत्ति ! उसके विषय में यह बात है कि, जब बच्चा गर्भ में होता है, तो उसकी माता के आचार-व्यवहार तथा मानसिक भावों का बच्चे के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः बच्चे का मस्तिष्क माता के मस्तिष्क से ही बनता है। इसीलिये ब्राह्मण मन्त्र में लिखा है :—

"अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे।
वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदःशतम् ॥"

—ब्रा० मं० १ । ५ । १७

अर्थात् "माता-पिता के अङ्ग से बच्चे का शरीर बनता है।"

अब यदि माता की इच्छा के विरुद्ध सम्बन्ध हुआ है और यदि माता का मन खिन्न है, तो बच्चे का मन भी उसी प्रकार का होगा। कई डॉक्टरों का कथन है कि, यदि माता शोकमय हो और बच्चे को दूध पिलावे, तो बच्चे का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। जङ्गली मनुष्यों की सन्तान के जङ्गली क्रूर तथा क्रोधयुक्त होने का एक कारण यह भी है कि, जब वह अपनी माता के गर्भ में होते हैं, उस समय उनके पिता उनकी माता पर अनेक अत्याचार करते हैं; जिनके कारण गर्भस्थ सन्तान का मस्तिष्क भी तद्वत् हो जाता है। इसलिये सिद्ध है कि, स्त्री-पुरुष दोनों की प्रसन्नता से विवाह होना चाहिये।

अब हम दूसरे प्रश्न को लेते हैं अर्थात् क्या एक का दूसरे पर आधिपत्य है? यदि है, तो किसका और यदि नहीं है, तो क्यों? क्या गृहस्थ में स्त्री और पुरुष का पद समान है या असमान? इस विषय में भिन्न-भिन्न जातियों में मत-भेद है। असभ्य जातियों में तो स्त्री सदा ही पुरुष की पद-दलित चेरी समझी जाती है, जिसके कुछ उदाहरण हम ऊपर दे चुके हैं; परन्तु पाश्चात्य जातियों में किसी-किसी अंश में इससे विपरीत है। अङ्गरेजी भाषा में स्त्री को पुरुष का (Better-half) बैटर हॉफ़ अर्थात् उत्तमार्द्ध मानते हैं अर्थात् यदि गृहस्थ के दो भाग किये जाँय, तो स्त्री उत्कृष्टार्द्ध है और निकृष्टार्द्ध (Worse-half) बचा वह पुरुष है। इसलिये योरोपवासी स्त्री का अधिक मान करते हैं; परन्तु यूरोप के इस ऊपरी व्यवहार से प्रत्येक अंश में

यह नहीं कहा जा सकता कि, योरोप में स्त्री-पुरुष से उत्तम ही मानी जाती है। योरोप के इस व्यवहार का वास्तविक रूप देखने के लिये योरोप के इतिहास पर दृष्टि डालनी चाहिये। योरोप में पहिले स्त्रियों का आदर नहीं होता था। बहुत सी जातियाँ बलात् विवाह करती थीं। मध्यकालीन योरोप के लोग स्त्रियों में जीव नहीं मानते थे। इसके पश्चात् लोग इनको दासी-मात्र समझने लगे। अङ्गरेज़ी भाषा का लेडी (Lady) शब्द जो आजकल केवल उच्च श्रेणियों की स्त्रियों के लिये ही प्रयुक्त होता है प्रथमतः आटा गूँधने वाली का वाचक था अर्थात् पुरुष अपनी रोटी बनाने के लिये एक चेरी रख लेता था, जिसे लेडी (Lady) कहते थे और उसका घर पर कुछ अधिकार न था। जब योरोप में अर्द्ध-सभ्यता का समय आया, उस समय भी स्त्रियों की दशा तद्वत् ही रही। पुरुष पढ़ने लगे; परन्तु स्त्री विद्या से वञ्चित ही रहीं। ईसाई धर्म्म के प्रचार ने भी स्त्री को उच्च अवस्था प्राप्त कराने में कुछ सहायता न की। इसका विशेष कारण यह था कि, ईसाई धर्म की आधार शिला ही इस बात पर रक्खी गई है कि, हव्वा (पहली स्त्री) के बहक जाने के कारण आदम (पहले पुरुष) का अधःपतन हुआ*। यदि हव्वा सत्य से न डिगती, तो आदम सदा स्वर्ग में

---

*"Let the woman learn in silence with all subjection. But I suffer not a woman to teach, nor to usurp the

रहते और उनकी सन्तान को दुःख न भोगना पड़ता। इस सिद्धान्त का प्रभाव हम समस्त योरोप पर बहुत पाते हैं। न केवल स्त्रियाँ ही तिरस्कृत समझी जाती थीं; किन्तु उनके सम्बन्धी भी ! मध्य योरोप में एक सैलिक नियम (Law Selique) था कि, कोई पुरुष अपनी माता के सम्बन्धियों की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता अर्थात् पुरुष को अपने पिता के द्वारा तो आदर मिल सकता था; परन्तु अपनी माता के द्वारा नहीं ! स्त्री न केवल स्वयँ ही निरादर को प्राप्त थी; परन्तु उसकी सन्तान भी तिरस्कृत कोटि में गिनी जाती थी। हम इङ्गलैण्ड में सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक इस तिरस्कार की दुर्गन्धि पाते हैं। उस देश के महाकवि मिल्टन [Milton] का दस्तूर था कि, उसने अपनी लड़कियों को लैटिन पढ़ना इसलिए सिखाया था कि, वह लैटिन पुस्तकें उसे सुना सके, क्योंकि वह अन्धा था; परन्तु उसने लैटिन भाषा का अर्थ उनको न सिखाया था। उसका कथन था कि, स्त्रियाँ लैटिन जैसी पवित्र भाषा के सीखने की अधिकारिणी नहीं हैं !

---

authority over the man, but to be in silence. For Adam was first formed, then Eve. And Adam was not deceived, but the woman being deceived was in the transgression,"

—*The Holy Bible, I; Timothy Chapter 2, Verses 11—14.*

आजकल जो स्थान स्त्री-जाति को योरोप में मिल रहा है, उसका अधिकांश में कारण काम-चेष्टा है; न कि धार्मिक सिद्धान्त ! इसका पता भी मध्य-कालीन योरोप के इतिहास से ही भली प्रकार मिलता है। उस समय पुरुषों ने स्त्रियों को अपने मनोविनोद का खिलौना बना लिया—उनको खेलों और कुश्ती आदि का सभापति नियत किया जाने लगा और विजयी पुरुष को अधिकार होता था कि, वह अपने प्रेम अथवा श्रद्धा के पात्र स्त्री को सभापति चुने। इसको 'किन ऑव ब्यूटी' (Queen of Beauty) अर्थात् 'सौन्दर्य की महाराणी' कहते थे। स्त्रियाँ अपने रूप और लावण्य द्वारा पुरुषों को लड़ने के लिये उत्साहित करती थीं और अपने ऊपर मोहित पुरुषों को दुःसाध्य कार्य्य करने के लिये प्रेरित किया करती थीं। इस प्रकार होते-होते, वह बेटर-हाफ़ अर्थात् उत्तमार्द्ध तक बन गईं और उनके पति निकृष्टार्द्ध रह गये; परन्तु अब भी नैतिक अधिकारों के विषय में पुरुषों ने स्त्रियों को अपने से सम नहीं माना। नित्य-प्रति ऐसे झगड़े हुआ करते हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि, योरोप के लोग स्त्रियों को राज-काज का अधिकारी नहीं समझते।

यह तो रही योरोप की अवस्था ! अब भारतवर्ष की ओर दृष्टि डालिये ! मध्यकालीन भारतवर्ष का इतिहास भी योरोप के असभ्य काल के इतिहास से अच्छा नहीं है। यहाँ भी लड़कियों को पराये घर का कूड़ा और स्त्रियों को पैर की जूती समझा जाने

लगा और जो अत्याचार कहीं देखने में नहीं आते, वह भारत-वर्ष में होने लगे। पर्दे का रिवाज हो गया और पुत्रियों को उत्पन्न होते ही मारने लगे। यद्यपि प्राचीन भारत की यह दशा न थी!

मध्य-कालीन अत्याचारों में भी एक भेद है और यदि गम्भीर दृष्टि से देखा जाय, तो पता चलता है कि, जिन भावों से प्रेरित होकर भारतवासियों ने पर्दा तथा कन्याओं के मार डालने की प्रथा चलाई, उन में दो भाव उपस्थित थे; प्रथम स्त्री जाति के प्रति प्राचीन कालिक आदर, द्वितीय वर्त्तमान कालिक अपना दौर्बल्य! पूर्व काल से लोग स्त्रियों का आदर करने के प्रेमी थे; परन्तु अब इतना बल नहीं रहा था कि, विदेशियों के अत्याचारों से इनकी रक्षा कर सकते। अतः उनका धर्म बचाने के लिये उन्होंने यही उचित समझा कि, अपने बाहु-बल के अभाव में स्त्रियों को मृत्यु-देव की ही शरण में रख दें। जो भाव मूल में स्त्रियों के आदर और रक्षा के लिये थे, वह कुछ दिनों के पीछे अविद्या, अन्ध-परम्परा तथा अत्याचारों में भी परिणित हो गये; परन्तु इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं कि, भारतवर्ष में पूर्व काल में स्त्रियों के अधिकारों में किञ्चित् भी कमी न थी। पुत्रियों को लोग पुत्रों की भाँति पालते, पढ़ाते तथा अन्यान्य अधिकार देते थे। उनके जन्मते समय आनन्द मनाया जाता था, उनके संस्कार भी उसी प्रकार किये जाते थे। जब वह विद्योपार्जन के

योग्य होतीं थीं, तो नियमानुकूल उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता था और ब्रह्मचर्य्य-व्रत पालने की उनके लिये भी उसी प्रकार शिक्षा थी, जैसी पुत्रों के लिये थी! अथर्ववेद में लिखा है :—

"ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्"

—अथर्ववेद का० ११; सू० ५; मन्त्र १८

अर्थात् "ब्रह्मचर्य्य-व्रत पूर्ण करने उपरान्त कन्या युवा पति को प्राप्त हो।" यहाँ "ब्रह्मचर्य्य" शब्द केवल पुरुष प्रसङ्ग के अभाव का ही नाम नहीं है; किन्तु ब्रह्मचर्य्य व्रत में इन्द्रिय-निग्रह, वेदाध्ययन तथा ब्रह्म-प्राप्ति का प्रयत्न, सभी बातें सम्मिलित हैं। इन्द्रिय-निग्रह ब्रह्मचर्य्य का केवल एक अङ्ग है—सर्वस्व नहीं, यदि ऐसा हो, तो केवल जितेन्द्रिय को ही ब्रह्मचारी कहने लगें।

ब्रह्मचर्य्य के पश्चात् विवाह के समय भी स्त्रियों को पूर्ण स्वतन्त्रता थी। स्वयँवर की प्राचीन कालिक-प्रथा इस बात का एक बड़ा प्रमाण है। इसके अतिरिक्त विवाह की पद्धतियाँ जो इस समय भी विवाह-संस्कार के समय हिन्दू-जाति में व्यवहार में आती हैं, उस समय के भावों को भली प्रकार प्रकट करती हैं। उस समय विवाह लज्जा का स्थल न था; क्योंकि उसका उद्देश मानव-जाति की वृद्धि-मात्र था। जिस कार्य्य का ऐसा उच्च उद्देश हो—जिसके अन्तर्गत समस्त अन्य उद्देश आ जाते हैं, तो वह लज्जा का स्थान कैसे हो सकता है? इसी कारण से विवाह एक

पवित्र संस्कार गिना जाता था और स्त्री निर्भय होकर उन मन्त्रों का पाठ समस्त सभा के सम्मुख करती थी, जिनमें सन्तानोत्पत्ति तथा गृहस्थाश्रम के अन्यान्य कार्य्यों का विधान है।

प्राचीन भारत में एक विचित्र बात यह थी कि, स्त्री को अर्द्धांगिनी कहते थे। अर्थात् गृहस्थाश्रम रूपी रथ के दो बराबर पहियों का नाम स्त्री तथा पुरुष था, जिनमें से कोई पहिया छोटा या बड़ा नहीं। यहाँ न तो स्त्री को बैटर हॉफ़ कह कर पुरुष से बड़ा बताया जाता था और न उसको पैर की जूती समझ कर अनादर किया जाता था; किन्तु उसे तुल्य-पद, तुल्य-अधिकार और तुल्य-सम्मान प्राप्त था, जिसमें दासत्व की गन्धि-मात्र भी न थी। स्त्री का नाम पत्नी था अर्थात् वह यज्ञ में अपने पति के साथ सम्मान के साथ बैठती थीं और बिना उसके सम्मेलन के कोई यज्ञ पूर्ण नहीं समझा जाता था। अथर्व वेद में लिखा है :—

"प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नी भिर्वहतेह युक्ताः।"

—अथर्ववेद, का० ५; सूक्त २६, मन्त्र ४

प्राचीन भारतवासी लोग यह भी नहीं मानते थे कि, स्त्री का जन्म पुरुष के आश्रित है और हव्वा आदम की पसली से उत्पन्न* हुई थी; किन्तु उनका विश्वास था कि, मनुष्य और स्त्री

* "आदम की पसली से हव्वा का उत्पन्न होना" ईसाइयों का यह सिद्धान्त वेद-मन्त्रों के किसी उलटे अर्थ का द्योतक है। INTRODUCTION

की स्थिति एक सी है। दोनों स्वतन्त्रतः उत्पन्न हुए और भविष्य में उत्पन्न होने वाली सन्तान के लिये भी उन दोनों की एक ही प्रकार से आवश्यकता है।

TO THE SCIENCE OF RELIGION, के ४६वें पृष्ठ पर प्रोफ़ेसर मैक्समूलर (Profesor Maxmuller) लिखते हैं—"Bone, seemed a telling expression for what we should call the innermost essence. ....In the ancient hymns of the Veda, too, a poet asks—"Who has seen the first-born, when, he who had no *bones*, *i.e.*, no form, bore him that has *bones*, *i.e.*, when that which was formless assumed form, or, it may be, when that which had no essence, received an essence." अर्थात् "हड्डी या पसली से तात्पर्य्य यहाँ आन्तरिक सत्ता से है।...... वेद के प्राचीन सूक्तों में भी ऋषि कहता है—'प्रथम पैदा हुए को किसने देखा है, जब उसने, जिसके हड्डी अर्थात् आकार न था, उसको पैदा किया; जिसके हड्डी थी, जब उसने जो आकार रहित था साकार धारण किया या उसने जिसमें सत्ता न थी सत्ता पाई।" यहाँ मैक्समूलर ने वेद-मन्त्र का प्रमाण नहीं दिया; परन्तु प्रतीत होता है कि 'अस्थि' शब्द, जिसका अर्थ स्थिति या सत्ता हो सकता है, बिगड़ कर बाइबिल में हड्डी या पसली हो गया। यदि यह अर्थ लिया जाय, तो इसका तात्पर्य यह है कि, पुरुष और स्त्री की सत्ता समान है या एक ही है स्त्री-पुरुष की ही सत्ता से बनी है; न कि उसकी पसली से।

मध्य-कालीन भारत में स्त्रियों की गणना भोग्य पदार्थों में होने लगी और पुरुष समझने लगे कि हम उनके भोक्ता हैं। आर्य्य-भाषा के कवीन्द्र गोस्वामी तुलसीदास जी रामायण में लिखते हैं:—

"स्रक्, चन्दन, बनतादिक भोगा"

अर्थात् "जहाँ फल-फूल, माला, चन्दन आदि भोग्य, पदार्थ हैं वहाँ स्त्री भी इसी प्रकार का एक पदार्थ है; परन्तु यह अवस्था समाज की असभ्यता की सूचक है और अनेक अंशों में उन घटनाओं के समान है, जो जङ्गली जातियों में पाई जाती हैं और जिनका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। यह अवस्था प्राचीन काल में न थी। स्त्री को पुरुष की उसी प्रकार आवश्यकता है, जिस प्रकार पुरुष को स्त्री की ! यदि भोग हैं, तो दोनों ! यदि भोक्ता हैं, तो दोनों !! कोई कारण नहीं कि, पुरुष तो भोक्ता है और स्त्री उसका भोग !

अब सिद्ध हो गया कि, स्त्री और पुरुष में दोनों एक दूसरे के समान हैं। कोई किसी के आधिपत्य में नहीं और दोनों समाज के नियमों के आधिपत्य में हैं !

रहे विवाह सम्बन्धी शेष चार प्रश्न ! उनकी मीमांसा अगले अध्याय में की जायगी।

तीसरा अध्याय

पुरुषों का बहु विवाह तथा पुनर्विवाह

गत अध्याय में हम ने दो प्रश्नों—अर्थात् (१) विवाह के लिये स्त्री और पुरुष दोनों की इच्छा देखने की आवश्यकता है अथवा एक की ? और (२) स्त्री और पुरुष दोनों समान हैं या एक दूसरे का दास अथवा दासी ?—के उत्तर दिये हैं। इस अध्याय में तीसरे और चौथे प्रश्नों पर विचार होगा अर्थात् एक स्त्री के जीवित रहते पुरुष को अनेक विवाह करने का अधिकार है या नहीं ? या दूसरे शब्दों में—क्या एक पुरुष एक ही समय में कई स्त्रियों से सम्बन्ध कर सकता है और क्या एक स्त्री के मरने पर वह पुनर्विवाह कर सकता है ?

यह बात दो प्रकार के सिद्ध हो सकती है—एक युक्ति द्वारा; दूसरे शास्त्र द्वारा। देखा जाता है कि, भिन्न-भिन्न जातियों में इस विषय में भिन्न-भिन्न नियम हैं। योरोप की ईसाई जातियों में पुरुष को एक समय एक ही स्त्री से विवाह करने का अधिकार है; परन्तु मुसलमान देशों में उस मत के अनुसार उच्च से उच्च पुरुष को चार तक विवाह करने की आज्ञा है, इसके अतिरिक्त अन्य स्त्रियों से बिना विवाह

के सम्बन्ध करना भी पाप नहीं समझा जाता। ब्रह्मा के देश में भी प्रायः एक पुरुष कई स्त्रियों का पति होता है। पहाड़ों में तो एक पुरुष के लिये कई स्त्रियाँ करना अत्यावश्यक समझा जाता है; क्योंकि पुरुष प्रायः स्त्रियों ही की कमाई खाते हैं। भारतवर्ष में हिन्दू-समाज में यद्यपि बहु-विवाह की प्रथा नहीं है, तथापि यदि कोई पुरुष एक स्त्री के होते हुए अन्य विवाह कर लेता है, तो इस बात को न तो कोई अधर्म ही समझते हैं और न ऐसे पुरुष का तिरस्कार ही करते हैं। प्रायः राजों-महाराजों में तो अनेक विवाह करना "समरथ को नहीं दोष गुसाईं" की लोकोक्ति के अनुसार एक साधारण सी बात है। बङ्गाल देश के कुलीन ब्राह्मणों में कई विवाह करना एक अभिमान की बात समझी जाती है। उनमें एक पुरुष अपने जीवन में कई विवाह करता है और उसकी स्त्रियाँ प्रायः अपने पिता के ही घर रहती हैं। बहुत सी स्त्रियाँ अपने पति का, विवाह के पश्चात्, मुख तक नहीं देखतीं; क्योंकि वह पति अन्यों से विवाह करके रुपया प्राप्त करता फिरता है।

बहुत से लोगों का विचार है कि, एक पुरुष कई स्त्रियों से विवाह कर सकता है, क्योंकि ऐसा करने में कोई शारीरिक बाधा नहीं है। वह प्रति-दिन कई स्त्रियों को गर्भवती बना सकता है; परन्तु एक स्त्री एक बार गर्भिणी हो कर फिर अन्य पुरुषों से वीर्य लाभ नहीं कर सकती, इस प्रकार तर्क करने वाले पुरुषों ने स्त्री पुरुष को केवल गर्भ-धारण करने की मशीन समझ रक्खा है। वह

गृहस्थ के उपयुक्त व्यवहार की कुछ भी परवाह नहीं करते। यदि ऐसा हो तो पशु समाज और मनुष्य-समाज में भेद ही क्या रहे। पशु सन्तानोत्पत्ति की ही मशीन होते हैं, उनमें परस्पर गृहस्थ का सम्बन्ध नहीं होता। एक नर का अपनी सजातीय मादा से केवल प्रसङ्ग मात्र का ही सम्बन्ध रहता है। मादा गर्भिणी होकर गर्भ धारण करने की अवस्था तक किसी नर से सम्बन्ध नहीं रखती; परन्तु नर अन्य मादाओं के साथ यथाशक्ति तथा यथा अवसर संयोग किया करता है। यदि यही चरितार्थ करना है, तो एक पुरुष के ३६० तक स्त्रियाँ होनी चाहिये, जिनको वह प्रति-दिन वीर्य-दान देता रहे। वस्तुतः मनुष्य इसलिये नहीं बनाया गया कि, नित्य वीर्य्यदान किया करें और न वह ऐसा कर ही सकता है।

वीर्य्य के दो उपयोग हैं—एक तो सन्तानोत्पत्ति और दूसरा मस्तिष्क वृद्धि! जिस समय वीर्य्य सन्तानोत्पत्ति में व्यय होता है, उस समय उतना ही भाग मस्तिष्क का क्षीण हो जाता है। अतः ऋषि-मुनियों ने सीमा बाँध दी है कि, इससे अधिक पुरुष को स्त्री-प्रसङ्ग तथा सन्तानोत्पत्ति नहीं करनी चाहिये। दूसरी बात यह है कि, नियत सीमा उल्लङ्घन करने वाले पुरुष मस्तिष्क क्षीण होने और बुद्धि नष्ट होने के अतिरिक्त सन्तानोत्पत्ति भी नहीं कर सकते। सन्तानोत्पत्ति तथा स्त्री-प्रसङ्ग के लिये भी इन्द्रिय-निग्रह की आवश्यकता है। जो पुरुष नितान्त विषयी हैं, वह विषय करने

में भी असमर्थ होते हैं; क्योंकि विषय-भोग के लिये भी शारीरिक बल की आवश्यकता है।

प्रथम अध्याय में विवाह के प्रयोजन की मीमांसा करते हुए बताया भी जा चुका है कि, काम-चेष्टा की सीमा निश्चित करना विवाह के मुख्य उद्देशों में से है अर्थात् मनुष्य को मछलियां की तरह लाखों और सहस्रों सन्तानें उत्पन्न नहीं करनी हैं और न न सृष्टि-क्रम ही उसे ऐसा करने की आज्ञा देता है। जिन देशों में एक पुरुष कई-कई विवाह करते हैं उन देशों की जन-संख्या इसी हिसाब से बढ़ नहीं जाती। इसके अतिरिक्त पुरुषों और स्त्रियों की किसी देश अथवा किसी जाति की संख्या के देखने से पता चलता है कि, स्त्रियाँ इतनी अधिक नहीं होतीं कि, एक मनुष्य कई स्त्रियाँ रख सके।

हम ऊपर कह चुके हैं कि, गृहस्थाश्रम का आधार प्रेम है। जिस प्रकार काग़ज़ के सफों को जोड़ने के लिये लेई या गोंद सदृश स्निग्ध पदार्थ की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार बिना परस्पर स्नेह के स्त्री-पुरुष में संयोग भी नहीं हो सकता। यह दाम्पत्य-प्रेम केवल एक पुरुष और एक स्त्री में ही हो सकता है। यदि एक पुरुष की कई स्त्रियाँ होती हैं, तो वह सब से तुल्य प्रेम नहीं कर सकता। अवश्य पक्षपात होगा और पक्षपात से अन्याय, अन्याय से कलह, कलह से गृह-नाश यह साधारण दर्जे हैं। न केवल पति के लिये ही असम्भव है कि, वह अपनी अनेक स्त्रियों

से समान प्रेम करे और न एक पति की कई स्त्रियां के लिये ही सम्भव है कि, वह अपने पति से एक सा प्रेम कर सकें। जिस समय स्त्री को पता लग जाता है कि, उसका पति अन्यन्य प्रेमी नहीं है, उसी समय उसके हृदय में एक प्रकार की घृणा तथा क्रोध उत्पन्न होने लगता है। इसीलिये धर्म-शास्त्रों की आज्ञा है कि, एक पुरुष एक ही स्त्री से विवाह करे। अथर्ववेद में कहा है :—

"अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन॥"

—अथर्ववेद का० ७, सूक्त ३७; मन्त्र १

बहुत से लोगों की यह कल्पना है, कि हिन्दू (आर्य्य) धार्मिक ग्रन्थों में पुरुषों के लिये बहुत से विवाहों की विधि है और प्राचीन काल में एक पुरुष की कई स्त्रियाँ होती थीं; परन्तु वेद भगवान् इस बात का सर्वथा निषेध करते हैं, जैसा कि हम ने ऊपर के मन्त्र से दरसाया है। इस मन्त्र में स्त्री अपने पति से विवाह के समय कहती है कि, मैं तुझ को वस्त्र द्वारा (गाँठ-बन्धन करके) धारण करती हूँ कि, तू केवल मेरा ही पति हो—अन्य किसी का नहीं। इससे स्पष्टतया सिद्ध है कि, जो पुरुष प्राचीन, मध्य अथवा वर्त्तमान-काल में एक से अधिक स्त्रियाँ रखते हैं, वे इस अंश में वेद मार्ग के अनुगामी नहीं हैं। प्रचीनकाल के बहुविवाह के जितने दृष्टान्त मिलते हैं, उन में से कोई भी कलह, सपत्नी डाह

तथा बुरे परिणामों से बचा हुआ नहीं है। वस्तुतः श्रीराम-चन्द्र जी की जो विशेष प्रशंसा की जाती है, उसके अन्य कई कारणों में से एक कारण यह भी है कि, उन्होंने सीता महारानी को छोड़ कर अन्य किसी से अपना प्रेम नहीं जोड़ा। जिन देश या जातियों में बहुविवाह की प्रथा है, उनके आन्तरिक जीवन पर दृष्टि डालने से बोध होता है कि, वह घोर दुःख और अशान्ति से अपना समय व्यतीत कर रहे हैं और उनकी स्त्रियों में लेशमात्र भी शान्ति नहीं है। वस्तुतः शान्ति और बहुविवाह में परस्पर विरोध है। शान्ति वहाँ हो नहीं सकती, जहाँ सौतेली-डाह मौजूद है, बहु-विवाह ब्रह्मचर्य्य का भी नाशक है, गौतम जी महाराज ने अपने न्याय-दर्शन में बताया है कि:—

"अनैकान्तिकः स व्यभिचारः"

—न्याय दर्शन, अ० १; आ० २; सूत्र ५

"अर्थात् अनेक स्थान में गमन करने का नाम ही व्यभिचार है।"

जिस पुरुष के एक से अधिक स्त्रियाँ होती हैं, उसकी सन्तान भी प्रायः धार्मिक, सुशील और परस्पर प्रेम रखने वाली नहीं होती। उसकी भिन्न-भिन्न विमाताओं में लड़ाई-झगड़े नित्य-प्रति ही हुआ करते हैं और उसका प्रभाव सन्तान पर न केवल गर्भावस्था में ही पड़ता है; किन्तु बाल्यावस्था में भी कुत्सित-गुण, दुष्ट-कर्म और घृणित स्वभाव सन्तान में घर करने लगते हैं। जिन बच्चों ने

लड़ाई-झगड़ों को अपनी घुट्टी के साथ पिया है, जिन बालकों को सौतेला वैमनस्य अपनी माताओं द्वारा सम्पत्ति और दाय भाग में मिला है, उनसे यह आशा रखना कि, वह युवावस्था को प्राप्त होकर जगत् का सुधार या देश का उपकार करेंगे, नीम के वृक्ष से आम की आशा रखने के तुल्य है !

अब रहा पुरुषों का पुनर्विवाह ! वर्त्तमान काल की समस्त जातियाँ यही मानती हैं कि, यदि एक पुरुष की पहली स्त्री मर जाय, तो उसका दूसरा विवाह हो जाना चाहिये । यदि दूसरी मरे, तो तीसरी, तीसरी मरे तो चौथी इत्यादि । यह बात केवल सिद्धान्त रूप में ही नहीं मानी जाती; किन्तु व्यवहार भी इसी का है । पुरुषों का पुनर्विवाह होना न केवल आपद्धर्म ही माना जाता है; परन्तु यह एक साधारण सी बात हो गई है, जिसका अपवाद विरले ही करते हैं । हिन्दू-जाति में हम बहुधा देखते हैं कि, एक स्त्री का प्राणान्त हो रहा है और पति के पास दूसरी लड़की से विवाह पक्का करने के लिये प्रेरणा हो रही है । पहली स्त्री की चिता भी ठण्डी नहीं होने पाती और दूसरे विवाह की तैयारियाँ होने लगती हैं । वर्षी से पहले दूसरी वधू का आ जाना, तो एक साधारण नियम है ।

पुनर्विवाह का प्रत्येक दशा में हितकर होना, तो हमको प्रतीत नहीं होता और विशेष कर उस समय जब पहली स्त्री से सन्तान भी हो, क्योंकि प्रायः देखा गया है कि, विमाता के आते ही तो

पिता भी विपिता हो जाता है और अपने पहली स्त्री से उत्पन्न हुए बच्चों का यथोचित पालन नहीं कर सकता। वस्तुतः देखा जाय, तो पुत्रों के होते हुए पितृ-ऋण से उऋण होने के लिये पुनर्विवाह की आवश्यकता ही नहीं रहती; परन्तु यदि सन्तान न हो और आयु भी युवा हो, तो आजकल की अवस्था को दृष्टि में रखते हुए एक स्त्री के मर जाने पर दूसरी से विवाह करने में दोष नहीं।

यहाँ एक प्रश्न मीमांसनीय है—वह यह कि, रण्डुओं का विवाह किस प्रकार की स्त्री से किया जाय? शास्त्रों और डॉक्टरों दोनों ने विवाह के लिये स्त्री-पुरुषों की अवस्था निश्चित कर दी है। यदि इस अवस्था का उल्लङ्घन होता है, तो किसी न किसी प्रकार व्यभिचार की वृद्धि और सदाचार की क्षति होती है। व्यभिचार खुल्लम-खुल्ला न हुआ, तो गुप्त रीति से हुआ। एक रूप में हुआ अथवा अनेक रूपों में, पुरुष की ओर से हुआ या स्त्री की ओर से, होगा अवश्य—रुक नहीं सकता। कल्पना कीजिये कि, एक पुरुष ३५ वर्ष का है और उसकी २५ वर्ष की स्त्री का देहान्त हो गया। उसने १५ या १६ वर्ष की नव-वयस्का से विवाह किया (इससे अधिक अर्थात् २५ या २६ वर्ष की कुमारियाँ मिलना, तो असम्भव ही है), तो इससे पहली हानि तो यह होगी कि, स्त्री और पुरुष दोनों की शारीरिक दशा स्वस्थ न रहेगी और अनेक प्रकार के रोग हो जाने की भी सम्भावना है। दूसरे इससे भी बुरी बात वह होगी कि, वह पुरुष अपनी युवती स्त्री को कभी सन्तुष्ट न कर

सकेगा। यदि कहा जाय कि, उसे २६ या २७ वर्ष की कुमारिका भी मिल सकती हैं, जिनके साथ उसको विवाह कर लेना चाहिये, तो भी ठीक नहीं; क्योंकि २६ या २७ वर्ष की बाल-ब्रह्मचारिणी युवती, पूर्ण कलासम्पन्न पूर्ण-वयस्का स्त्री का क्षत-वीर्य्य, क्षत-पराक्रम तथा क्षत-आयु पुरुष से क्या सम्बन्ध! जो बुड्ढे पुरुष आजकल भारतवर्ष में आठ-आठ, दश-दश वर्ष की कन्या से विवाह कर लेते हैं और दादियाँ पोतियों के साथ आकर खेलती हैं। उसमें कन्याओं की इच्छा की परवाह नहीं की जाती; किन्तु इसका अधिकतर कारण माता पिता की मूर्खता और लोभ ही होता है। वही पुरुष अपनी लड़की का विवाह वृद्ध पुरुष से करने के लिये तत्पर होते हैं, जिनको अपने दामाद से पुष्कल धन मिलने की आशा होती है। प्राय: देखा गया है कि, कन्या यदि १५ या १६ वर्ष की समझदार होती है, तो वह लज्जा को छोड़ कर मा-बाप का प्रतिरोध करने तक को तैय्यार हो जाती है; क्योंकि वह जानती है कि, उसका और बुड्ढे का बिल्ली-ऊँट का सा सम्बन्ध है और उसे समस्त आयु भर कष्ट भोगना पड़ेगा!

योरोप में प्राय: युवती कन्याएँ स्वयँ ही बुड्ढे से विवाह करने के लिये राजी हो जाती हैं; परन्तु इसका मूलाधार भी दुष्टभाव ही होते हैं। वह केवल बुड्ढे के धन पर मोहित हो जाती हैं, न कि स्वयँ उस पर! वे पहिले से समझ लेती हैं कि, पति के मरने पर

वह समस्त धन की स्वामिनी हो जायगी और अन्य पुरुष से पुनर्विवाह कर सकेंगी।

भारतवर्ष में पुरुष साठ साठ वर्ष की आयु तक विवाह करते जाते हैं और उनको यदि बहुत बड़ी कन्या मिली, तो २० वर्ष की ! २० वर्ष तक भी किसी कन्या का हमारे देश में कुमारी रहना दुस्तर ही है; क्योंकि यहाँ लड़की से पाँच या छः वर्ष पूरा करने पर ही मा बाप को उसके पीले हाथ करने की चिन्ता हो जाती है और १२ या १३ वर्ष में तो प्रायः सभी का विवाह हो जाता है। ऐसी अवस्था में वृद्ध पति तो सृष्टि-क्रमानुसार दो-चार वर्ष में ही स्वर्गारोहण में तत्पर हो जाते हैं और स्त्री बेचारी ठीक तरुणावस्था के वैधव्य के अपार दुःखसागर में डूबती रहती है। उस समय उसकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय होती है। धर्म-अधर्म, उचित-अनुचित सब बातों को भूल जाती है और केवल यही चिन्ता रहती है कि, किस प्रकार शरीर और जीव को बिना अपमानित हुए संयुक्त रक्खा जाय। यह भी प्रत्येक अंश में सम्भव नहीं होता; क्योंकि विधवा का सम्मानित रहना ही परस्पर विरुद्ध है। विधवा होना ही अपमान है; फिर अन्य दुःख तो अलग ही रहे। बहुधा ऐसा होता है कि, युवती स्त्रियाँ अपने वृद्ध पति के देहान्त होते ही निर्लज्ज होकर अपने माता-पिता तथा पति के कुल को दूषित कर देती हैं। किसी-किसी अंश में, जबकि पति अति वृद्धावस्था में विवाह करता है, वह अपनी युवती पत्नी को

अपने जीवन में ही सदाचार की सीमा उल्लङ्घन करने का साहस दे देता है। इस प्रकार के विवाह जाति के लिये एक कलङ्क का टीका हैं और आवश्यकता है कि, जाति की ओर से ऐसे नियम बनाये जाँय, जिनसे वृद्धावस्था में विवाह करने वाले तथा वह लोग जो अपनी पुत्रियों को वृद्धों से विवाह देते हैं, दण्डनीय हुआ करें!

अब यदि वह बात सिद्ध हो गई कि, रण्डुओं का विशेष अवस्थाओं में पुनर्विवाह तो हितकर है; परन्तु कुमारिकाओं के साथ विवाह करना उचित नहीं, तो फिर यह प्रश्न स्वभावतः ही उत्पन्न हो जाता है कि, क्या इनका विवाह विधवाओं के साथ होना चाहिए। यदि यह ठीक है, तो क्या स्त्रियों का पुनर्विवाह धर्मयुक्त है? इसकी मीमांसा अगले अध्याय में की जायगी।

चौथा अध्याय

स्त्रियों का बहुविवाह तथा पुनर्विवाह

हम तीसरे अध्याय में लिख चुके हैं कि, पुरुषों के बहुविवाह और पुनर्विवाह दोनों ही होते हैं। उन में कुछ तो उचित हैं, कुछ अनुचित; परन्तु समाज की ओर से उनके अनुचित-कार्य्य पर भी शङ्का, आक्षेप तथा प्रतिरोध का प्रकाश नहीं होता। अब प्रश्न यह है कि, स्त्रियों के लिये इस विषय में क्या नियम होना चाहिये ?

यद्यपि सभ्य देशों में एक स्त्री एक ही समय में कई पुरुषों की पत्नी नहीं हो सकती; परन्तु ऐसी जातियों तथा देशों का नितान्त अभाव नहीं है, जहाँ स्त्रियों के बहुविवाह की प्रथा है। यह दो प्रकार से होता है—कहीं-कहीं तो स्त्री अपनी माता के ही घर रहती है और उसके पति उसी के घर आया-जाया करते हैं। ऐसी दशा में यह भी आवश्यक नहीं है कि, सन्तान पति की हो; किन्तु उसी स्त्री की सन्तान मानी जाती है। दूसरा प्रकार यह है कि, स्त्री मोल ली हुई या पकड़ी हुई आती है और कई पतियों के घर रहती है। यह पति या तो भाई-भाई होते हैं या निकटस्थ सम्बन्धी !

दोनों प्रकार के बहुविवाह में विचारी स्त्री पर बड़ा अत्याचार होता है। विक्रय की दशा में तो माता-पिता अपनी पुत्री की कमाई खाते हैं और उस पर बड़ा अन्यान्य होता है। दूसरी दशा में एक स्त्री कई पतियों के वश में रहती है। जो अपनी बारी से बेचारी स्त्री को बड़ा कष्ट देते हैं और उसको यह भी अधिकार नहीं होता कि, उनको छोड़ दे!

बङ्गाल में कई जातियाँ हैं, जिनमें एक स्त्री के कई पति होते हैं। नीलगिरि के टोडा लोगों का नियम है कि, जब स्त्री ब्याही जाती है, तो वह पति के सब भाइयों की स्त्री होती है। लङ्का में भी यही रिवाज़ था और अभी तक बिलकुल दूर नहीं हुआ। तिब्बत देश में भी एक स्त्री अपने पति के सब भाइयों की स्त्री होकर रहती है। मालाबार देश की नैय्यर जाति में भी यही प्रथा प्रचलित है *

हम तीसरे अध्याय में पुरुषों के बहुविवाह के विरुद्ध कई युक्तियाँ तथा प्रमाण दे चुके हैं और वह सब कारण स्त्रियों के बहु-विवाह से भी उतनी ही प्रबलता के साथ सम्बन्ध रखते हैं। स्त्रियों का बहुविवाह उन सब हेतुओं से अनुपयुक्त, अधर्मयुक्त तथा सामाजिक उन्नति के लिये हानिप्रद है और स्त्रियों की शारीरिक निर्बलता इस हानि को और भी भयङ्कर बना देती है। अतः हम स्त्रियों के बहुविवाह को यहीं छोड़ते हैं।

परन्तु जिस प्रकार पुरुषों का पुनर्विवाह अर्थात् एक स्त्री के

* Evolution of Marriage, pp. 77—80.

मर जाने पर दूसरी से विवाह करना अनेक दशाओं में अति आवश्यक है, इसी प्रकार स्त्रियों का पुनर्विवाह अर्थात् एक पति के मर जाने पर दूसरे पति से विवाह करना, इन्हीं हेतुओं से, कई दशाओं में न्याययुक्त, शास्त्रानुसार तथा आवश्यक ठहरता है।

हमने दूसरे अध्याय में यह सिद्ध करने का यत्न किया था कि सामाजिक संस्था में पुरुष और स्त्री के कर्त्तव्य और अधिकार समान हैं। जब इनके अधिकार तुल्य हैं, तो जो अधिकार पुरुष को दिये गये हैं, उनसे स्त्री को वञ्चित रखना सर्वथा अन्याय है। स्त्रियों के पुनर्विवाह के विषय में छः मत है:—

(१) यदि किसी कन्या की मँगनी किसी वर के साथ हो चुकी, तो चाहे संस्कार न भी हुआ हो, तो भी वह उस पति की स्त्री हो चुकी। यदि पति मर जाय, तो स्त्री को स्मृतिरूपी मूर्त्ति की सेवा करने में तत्पर रहना चाहिये और दूसरे पति का नाम तक न लेना चाहिये। मनुष्य की बात एक होती है, जो वचन दे दिया उस से हटना कैसा!

(२) यदि संस्कार होने से पूर्व ही पति मर जाय, तो लड़की को दूसरा विवाह कर लेना चाहिये। वस्तुतः यह दूसरा विवाह नहीं; किन्तु पहला ही विवाह है, क्योंकि जब तक फेरे नहीं फिरे, अग्नि को साक्षी नहीं दी, उस समय तक केवल कथनमात्र से विवाह पूरा नहीं कहा जा सकता; परन्तु यदि विवाह-संस्कार होकर पति

मरता है, तो स्त्री चाहे अक्षत-योनि ही न क्यों हो, उसका विवाह कदापि नहीं करना चाहिये।

यह मत हमारे अधिकांश हिन्दू भाइयों का है, जो अपने आप को सनातनधर्मी कह कर पुकारते हैं।

(३) जब तक स्त्री अक्षतयोनि रहे, चाहे उसकी मँगनी हो गई हो अथवा विवाह-संस्कार भी, उस समय उसका पुनर्विवाह कर देना चाहिये। यह विचार आजकल के आर्य्य समाजियों का है अथवा थोड़े से उन लोगों का, जो अन्य विषयों में तो आर्य्य समाज के सिद्धान्तों से सहानुभूति नहीं रखते; किन्तु बाल-विधवाओं के दुख से अवश्य पीड़ित होते हैं।

(४) शूद्रों में तो क्षतयोनि विधवाओं का भी विवाह हो जाना चाहिये, जैसा कि आजकल भी हिन्दू-समाज में प्रचलित है; परन्तु द्विजों में आज केवल अक्षत योनि विधवा का ही विवाह होना उचित है। यदि क्षत-योनि विधवा हो और उसे सन्तान की आवश्यकता तथा अन्य आपत्तियाँ हो, तो वह आपद्धर्म के लिये नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न कर सकती है।

यह मत स्वामी दयानन्द जी (आर्य्य-समाज के संस्थापक) का है। इसे सिद्धान्त रूप में तो सभी आर्य्य-समाजी मानते हैं; परन्तु वह वर्त्तमान काल की मर्य्यादा से प्रतिकूल होने के कारण इसको व्यवहार रूप में परिणित करने के लिये उपस्थित नहीं है।

स्वामी दयानन्द के इस सिद्धान्त में पहले तीन सिद्धान्तों से एक बात विलक्षण है अर्थात् वह जो अधिकार स्त्री को देते हैं, वही पुरुष को! उनके मत में केवल अक्षत वीर्य्य पुरुष ही मृतभार्य्य होने की अवस्था में पुनर्विवाह कर सकता है। क्षतवीर्य्य पुरुष सन्तानादि के लिये केवल आपद्धर्म के रूप में नियोग ही कर सकता है।

(५) विधवा चाहे क्षतयोनि हो अथवा अक्षत-योनि, यदि उसे इच्छा हो, तो उसका पुनर्विवाह अवश्य कर देना चाहिये; जिस प्रकार पुरुषों का हो जाया करता है।

यह मत उस उदार दल का है, जो भारतवर्ष के सामाजिक सुधार को बड़े वेग से करना चाहता है।

(६) छठे मत के लोगों का मूल सिद्धान्त तो वही है, जो स्वामी दयानन्द का है अर्थात् चौथा; परन्तु यह देखकर कि वर्त्तमान सामाजिक अवस्था पर विचार करने से नियोग की प्रथा इस समय प्रचलित करना असम्भव मालूम होता है, उन क्षत-योनि कन्याओं का भी विवाह कर दिया जाय, जो अभी नववयस्का ही हैं और जिनके कोई सन्तान नहीं हुई।

यह मत इस पुस्तक के लेखक का भी है। इसमें सन्देह नहीं कि, क्षत-योनि विधवाओं का पुनर्विवाह करना शास्त्रोक्त सीमा से किञ्चत् बाहर जाना है; परन्तु जब समाज पुरुषों के बहुविवाह, स्त्रियों के बाल-विवाह तथा उनके इच्छा के प्रतिकूल विवाहों को

सहन करता है और उनका प्रतिरोध नहीं करता, तो उसे अपने इन अत्याचारों के प्रायश्चित्त के रूप में बाल्यावस्था की क्षत-योनि विधवाओं का पुनर्विवाह भी सहन करना चाहिये। जो पुरुष कुपथ्य को प्रिय समझता है, उसे औषध भी प्रिय समझनी ही पड़ेगी। चाहे वह उसको कितना ही अप्रिय, अनावश्यक और कड़वी क्यों न समझता हो!

यदि हम साधारण विधवाओं का प्रश्न छोड़ दें और केवल अक्षत-योनि विधवाओं के ही विषय में विचार करें, तो बलपूर्वक कहा जा सकता है कि, शास्त्र तथा युक्ति—किसी प्रकार भी अक्षत-योनि विधवाओं का विवाह निषिद्ध नहीं है।

अक्षत-योनि विधवाएँ प्रायः अविवाहिता के ही तुल्य हैं; क्योंकि विवाह का मुख्य अङ्ग पुरुष-प्रसङ्ग है। यदि पुरुष-प्रसङ्ग नहीं हुआ और केवल संस्कार मात्र हुआ है, तो यह बात उसी प्रकार की है, जैसे मकान बनाने के लिये ईंट आदि इकट्ठी कर ली गई; परन्तु मकान बनाने नहीं पाया। सामग्री एकत्रित करने या विश्वकर्मा को ठेका देने मात्र से कोई बुद्धिमान पुरुष यह न कहेगा कि, मकान निर्माण हो गया। इसी प्रकार संस्कार-मात्र से विवाह की पूर्त्ति नहीं होती। अब यदि संस्कार के पश्चात् ही पति मर गया, तो मुख्योद्देश्य पूरा न होने के कारण आयुपर्य्यन्त के लिये स्त्री को विवाह से वर्जित कर देना घोर अन्याय है! प्रत्येक कार्य्य के दो अङ्ग हुआ करते हैं; एक मुख्य और दूसरा गौण! विवाह में समा-

गम मुख्य अङ्ग है और संस्कार केवल सीमा निश्चित करने के लिये है। अतः पति-प्रसङ्ग के अभाव में अक्षत-योनि विधवा को द्वितीय पति से विवाह करने की अवश्य आज्ञा होनी चाहिये!

पाँचवाँ अध्याय

वेदों से विधवा-विवाह की सिद्धि

मनुस्मृति में धर्म्म का लक्षण बतलाते हुए मनुजी महाराज कहते हैं :—

> "वेदःस्मृतिःसदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
> एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥"
>
> —मनुस्मृति, अ० २; श्लोक १२

अर्थात् धर्म का लक्षण जानने के लिये सब से पूर्व वेद को देखना चाहिये। वेदों की महिमा संसार में सब से ऊपर है। स्मृति, शास्त्र आदि केवल इसीलिये माननीय हैं कि, इनका आश्रय वेद पर है। जो बात वेद-विरुद्ध है व कदापि माननीय नहीं। अतः विधवा विषय में भी हम सब से पूर्व वेदों के ही प्रमाण देते हैं:—

> "कुहस्विद्दोषा कुहवस्तोरश्विना
> कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः ।

को वां शयुत्रा विधवेव देवरं
मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥"

—ऋग्वेद, मण्डल १०; सूक्त ४०; मन्त्र ५

मन्त्रार्थः—(कुहस्विद्) कहाँ (दोषा) रात्रि में (कुह) कहाँ (वस्तोः) दिन में (अश्विना) हे स्त्री-पुरुषो (कुह) कहाँ (अभिपित्वं) जीविका को (करतः) करते हो! (कुह) कहाँ (उषतुः) वसते हो (कः) कौन (वां) तुम दोनों को (शयुत्रा) सोने की सामग्री से युक्त करता है (विधवा) विधवा स्त्री (देवरं) दूसरे पति को और (योषा) स्त्री (मर्यं) पति को (इव) जैसे।

इस मन्त्र में स्पष्ट दिया हुआ है कि, विधवा का दूसरा वर होना चाहिये अर्थात् विधवा के लिये अन्य पति की विधि है। यह अर्थ केवल हमारा किया ही नहीं है श्री० सायणाचार्य्य भी इससे भिन्न अर्थ नहीं करते। देखोः—

सायण भाष्य—"हे (अश्विना) अश्विनौ (कुहस्वित्) क्वस्वित् (दोषा) रात्रौ भवथः इति शेषः (कुहः) वस्तोः क वा दिवा भवथः (कुह) क वा (अभिपित्वं) अभिप्राप्तिं (करतः) कुरुथः (कुह) क वा उषतु ऊषथुः वसथः किं च (वाम्) युवाम् (क) यजमानः (सधस्थे) सहस्थाने वेद्याख्ये (आकृणुते) अकुरुते परिचरणार्थं आत्मानमभि मुखी करोति। तत्र दृष्टान्तौ दर्शयति शयुत्राशयने (विधवेव) यथा मृतभर्त्तृका नारी (देवरं) भर्त्तृभ्रातरं अभिमुखी

करोति (मर्यं न) यथा च सर्वं मनुष्यं (योषा) सर्वा नारी सम्भोग काले अभिमुखी करोति तद्वदित्यर्थः।

भाषार्थ—हे अश्विनो। तुम दोनों रात्रि में कहाँ होते हो? और दिन में कहाँ होते हो और कहाँ प्राप्ति करते हो? तुम दोनों को कौन यजमान वेदी में सेवा करने के लिये सम्मुख होता है? यहाँ दो दृष्टान्त दिखाता है। जैसे सोने के स्थान में विधवा स्त्री पति के भाई को अभिमुख करती है और जैसे सब मनुष्यों को स्त्रियाँ सम्मुख करती हैं। उसी प्रकार से, इत्यादि।

(प्रश्न) देखो सायण तो देवर का अर्थ 'पति के भाई' करता है और तुम इसका अर्थ दूसरा पति बताते हो। फिर सायणाचार्य के अर्थों से विधवा-विवाह की सिद्धि नहीं होती।

(उत्तर) यदि देवर का अर्थ यहाँ 'पति का भाई' भी किया जाय, तो भी मानना पड़ेगा कि, विधवा का पति के भाई से विवाह सायणाचार्य जी मानते हैं। विधवा अपने पति के भाई को सोने के स्थान में बुलाती है, जैसे साधारण स्त्रियाँ सम्भोग के लिये अपने पति जो बुलाती हैं। सायणाचार्य्य के इस अर्थ से इतनी बातें तो स्पष्ट ही हैं कि—

(१) विधवा का देवर को बुलाना।

(२) सोने के स्थान में बुलाना।

(३) इस प्रकार से बुलाना जैसे सम्भोग के लिये स्त्रियाँ पति को बुलाती हैं।

यह सब उसी समय हो सकता है. जब विधवा का पुनर्विवाह हो। अब केवल 'देवर' शब्द विवादास्पद है। इस का निश्चय श्रीयास्काचार्य्य जी के लिखे हुए निरुक्त के इस मन्त्र के अर्थ से हो सकता है। श्रीसायणाचार्य्य जी ने निरुक्त का यह प्रमाण अपने भाष्य में उद्धृत किया है। देखो सायणभाष्यः—

"तथा च यास्कः, कस्विद्दोषा भवथः कदिवा काभिप्राप्तिं कुरुथः क वसथः। कोवा शयने विधवेव देवरम्।

देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते।

विधवा विधातृका भवति। विधवनाद्वा, विधावनाद्वेति। चर्म शिरा अपि वा धव इति मनुष्यस्तद्वियोगाद्विधवा। देवरो दीव्यति कर्म्मा। मर्य्यो मनुष्यो मरण धर्मा। योपायौतेरा कुरुते सहस्थाने इति निरुक्तः।"

सायणाचार्य्य ने निरुक्त का जो भाग उद्धृत किया है वह उसी प्रकार है, जैसा मूल निरुक्त में दिया हुआ है। इसलिये हम ने अलग नहीं दिया। इसमें जो वाक्य हम ने बड़े अक्षर में लिखा है अर्थात् "देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते" इस से स्पष्ट है कि, न केवल निरुक्ताचार्य्य श्रीयास्काचार्य मुनि ही 'देवर' का अर्थ द्वितीय वर का लेते थे; किन्तु सायणाचार्य्य ने भी उनके कथन को उद्धृत करके उनके सहमत होना प्रकाशित किया है।

इस पर पं० राजाराम की टिप्पणी भी विचारणीय है—

"जैसे विधवा देवर को और जैसे स्त्री पति को" इन दो अलग उपमाओं से, विधवा का देवर से सम्बन्ध स्पष्ट है और वही बात 'देवरः कस्मात् द्वितीयो वर उच्यते' से स्पष्ट की है; किन्तु विधवा का ब्रह्मचर्य्य से रहना अधिक उच्च धर्म है। देवर वा दूसरे वर से सम्बन्ध भी शास्त्रविहित ही है। दुर्गाचार्य्य के अर्थ से भी यही बात सिद्ध है।

महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त शर्म्मा ने इस पर अपनी सविस्तार टिप्पणी देकर चार पक्ष दिखलाये हैं, विधवा का ब्रह्मचर्य्य में रहना उत्तम है, सती हो जाना मध्यम है और फिर विवाह कर लेना अधम है। इन तीनों पक्षों को वेद सम्मत कह कर चौथे पक्ष अर्थात् बिना विवाह व्यभिचार को वेद विरुद्ध और गर्भ इत्यादि पातकों का मूल ठहराया है *

इतने महानुभावों की सम्मति होते हुए भी यह कैसे कहा जा सकता है कि, इस मन्त्र से विधवा को द्वितीय पति से विवाह करने की आज्ञा नहीं है।

(प्रश्न) "देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते" यह वाक्य यास्काचार्य्य का नहीं; किन्तु किसी विधवा-विवाह के पक्षपाती ने मिला दिया है। देखो दुर्गाचार्य्य ने समस्त निरुक्त पर भाष्य किया है; परन्तु इस वाक्य पर भाष्य ही नहीं किया। इसके अतिरिक्त

---

* पण्डित राजाराम कृत निरुक्त, पृष्ठ—१७१

विधवा विवाह-मीमांसा

यह प्राचीन तीन पुस्तकों में नहीं है, इसीलिये निरुक्त के छापने-वालों ने इसे कोष्ट में रख दिया है।

(उत्तर) शाबाश ! मानते हैं ! खूब कहा !! अब तक तो स्वामी दयानन्द के मनु आदि में प्रक्षिप्त बतलाने से आकाश पाताल एक किया जाता था और आक्षेप करते थे कि, यह आर्य्य-समाजिक लोग अपने अनुकूल प्रमाणों को तो मूल मानते हैं और जब कोई प्रमाण इनके मत के विरुद्ध ठहरता है। तो उसे झट क्षेपक कह कर टाल देते हैं, आज आप स्वयँ इसको क्षेपक मानने लगे। यद्यपि स्वामी जी क्षेपक मानने के लिये युक्तियाँ रखते हैं; परन्तु तुम तो बिना युक्ति के ही क्षेपक मानने लगे। भला निरुक्त के उपर्युक्त वचन को क्षेपक मानने से कैसे बच सकोगे। यदि एक पग चले हो, तो दो और भी सही! यह क्यों नहीं कह देते कि, ऋग्वेद का 'विधवेव देवरं' वाक्य ही क्षेपक है, या यह समस्त मन्त्र क्षेपक हैं? नीचे लिखी युक्तियों से यह वाक्य क्षेपक नहीं हो सकता:—

(१) बाबा सायण ने इसको क्षेपक नहीं माना। इसका कहना तो तुम टाल ही नहीं सकते। देखो ऋग्वेद का सायण भाष्य जिस में निरुक्त के इस वाक्य को ज्यों का त्यों उद्धृत किया है।

(२) दुर्गाचार्य्य ने भी इसको क्षेपक नहीं बताया। यह केवल तुम्हारी ही मन-गढ़न्त युक्ति है। यदि दुर्गाचार्य्य ने इस पर भाष्य नहीं किया, तो इसका कारण वाक्य की सरलता है, न कि कोई और बात!

(३) जिन प्राचीन तीन पुस्तकों में तुम इसको लिखा नहीं बताते उनके सायण से भी प्राचीन होने का तुम्हारे पास क्या प्रमाण है ? सम्भव है कि, किसी-किसी पुस्तक में से विधवा-विवाह के किसी विरोधी ने इसे निकाल कर अपने पक्षपात का परिचय दिया हो। जैसा आज-कल कुछ स्मृतियों का हाल है !

(४) यास्काचार्य्य ने यहाँ दो शब्दों अर्थात् 'विधवा' और 'देवर' की निरुक्त की है, यदि तुम इस वाक्य को क्षेपक मानोगे, तो 'देवर' की निरुक्त किस प्रकार करोगे ! 'द्विवर' या 'द्वितीय वर' से तो 'देवर' बन सकता है, परन्तु 'वरानुज, या 'वरभ्राता' से देवर किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता।

(५) इस वाक्य को कोष्ट में किसी तुम सरीखे ने ही रख दिया होगा, न तो सायणाचार्य्य ने ही इसे कोष्ठ में रक्खा है और न पक्षपात रहित छापे वाले आज कल ऐसा करते हैं। देखो 'निर्णय सागर' प्रेस बम्बई की छपी हुई शाके १८३७ सन् १८६५ की निरुक्त में इस वाक्य को कोष्ठ में बन्द नहीं किया गया।

(६) महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त शर्म्मा भी ऐसा नहीं मानते।

(७) इस वाक्य के मिलाने का विधवा-विवाह प्रचारकों को कारण भी क्या था ? क्योंकि बिना इसे मिलाये भी 'विधवेव देवरं' वेद वाक्य से इतना तो सिद्ध ही है कि, विधवा अपने देवर के साथ शयन कर सकती है।

(प्रश्न) संसार जानता है कि 'देवर' पति के छोटे भाई को कहते हैं। द्वितीय वर की तो तुम्हारी ही कल्पना है।

(उत्तर) नहीं, देखो 'देवर' नाम तो दूसरे ही वर का है। चाहे वह पति का छोटा भाई हो या बड़ा भाई वा कोई अन्य; परन्तु चूँकि निकटतम होने के कारण प्रायः पति के छोटे भाई के साथ ही अधिकांश में नियोग होता था; इस लिये पति के छोटे भाई को ही 'देवर' कहने लगे। 'यौगिक' से 'योगरूढ़ि' हो गया। देखो सत्यवती अपनी पुत्र-वधू से कहती है :—

कौसल्ये देवरस्तेऽस्तिसोऽद्यत्वाऽनुप्रवेक्ष्यति ।
अप्रमत्ता प्रतीक्ष्यैनं निशीथे ह्यागमिष्यति ॥

—महाभारत, आदि पर्व; अ० १०६; श्लोक २

"कौसल्ये ! तेरा दूसरा वर है, सो आज तेरे पास आयेगा, तू अप्रमत्त होकर उसकी प्रतीक्षा (इन्तज़ार) करना। वह आधी रात को तेरे पास आयेगा।" यहाँ देवर से तात्पर्य्य व्यास ऋषि से है; जो कौसल्या के पति के बड़े भाई थे, न कि छोटे और जिन्होंने सत्यवती से प्रतिज्ञा कर ली थी कि, मैं कौसल्या से नियोग द्वारा सन्तानोत्पन्न करूँगा। यहाँ 'देवर' शब्द का इसी लिये प्रयोग हुआ है कि. वह दूसरे वर थे, नहीं; तो ज्येष्ठ शब्द का प्रयोग होना चाहिये था:—

(प्रश्न) इस मन्त्र में तुम ने 'अश्विना' या 'अश्विनौ' का अर्थ

'स्त्री-पुरुष' किया है, यह ठीक नहीं। स्वामी दयानन्द की यह नवीन कल्पना है, जिसका वेद में एक भी प्रमाण नहीं और सायणाचार्य्य भी ऐसा नहीं मानते। 'अश्विनौ' का अर्थ यहाँ अश्विनी कुमार देवता से है।

(उत्तर) तुम्हारे देववाद की बलिहारी है! यदि सब को अदृष्ट देव ही मान लोगे, तो भौतिक पदार्थ कहाँ रहेंगे और इनका क्या नाम धरोगे? देखो, स्त्री-पुरुष भी तो दिव्य गुणों के कारण देवत ही हुए। स्त्री को 'देवी' और पुरुष को 'देव' कहने की तो आज कल भी प्रथा है!

'अश्विनौ' का अर्थ 'स्त्री-पुरुष' करना, स्वामी दयानन्द की निर्जा कल्पना नहीं; किन्तु वेद स्वयँ 'अश्विनौ' का अर्थ 'स्त्री-पुरुष' करत है। स्वतः प्रमाण वेद के होते हुए इधर-उधर भटकना भूल है। देखो:—

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादद्दात्॥

—ऋग्वेद, मण्डल १०; सूक्त ८५, मन्त्र ९

सायणाचार्य्य इसका भाष्य इस प्रकार करते हैं:—

"सोमो वधूयुर्वधूकामो वरोऽभवत्। तस्मिन्समयेऽश्विना उभोभौ वरावरावास्तां। अभूतां। यथादा सूर्य्यां पत्ये शांसंतीं पति

कामायमानां। पर्याप्तयौवनामित्यर्थः। सूर्यां मनसा सहिताय सोमाय वराय सविता तत्पिता ददात्। प्रादात् दित्सां चकार"।

भाषार्थः—सोम वधू की कामना करने वाला अर्थात् वर हुआ। उस समय 'अश्विनौ' इन दोनों वधू तथा वर की संज्ञा हुई, जब पुत्री पति की प्रशंसा करने वाली, पति को चाहने वाली अर्थात् पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हुई। सविता अर्थात् पिता ने उसे मन से सोम अर्थात् वर को दिया।

यहाँ इतनी बातें स्मरणीय हैं :—

(१) 'अश्विना' वेद-मन्त्र में 'वरा' के लिये आया है, जो 'अश्विनौ' और 'वरौ' का आर्ष प्रयोग है। 'वरौ' यहाँ द्वन्द्वैकशेष समास है, जैसे 'माता च पिता च पितरौ' या 'सखा च भ्राता च भ्रातरौ' 'हंसी च हंसश्च हंसौ'; इसी प्रकार 'वधू च वरश्च वरौ'। सायणाचार्य्य भी इसका अर्थ "अश्विनावुभोभौ वरावरावास्तां" अर्थात् 'वरावरौ' करते हैं। 'वरावरौ' का अर्थ है "वरा चा वरश्च वरावरौ"। 'वरा' नाम* है वधू का। जैसे 'कृष्ण से स्त्रीलिङ्ग 'कृष्णा' और 'शिव' से 'शिवा' बनता है, इसी प्रकार 'वर' से स्त्रीलिङ्ग 'वरा' बनता है। यहाँ वेद और सायण दोनों के अनुसार 'अश्विनौ' का अर्थ स्त्री-पुरुष ही है और स्वामी दयानन्द का अर्थ ठीक है।

---

* स्वरुः पति वरा कन्या (सिद्धान्ते भट्टोजिदीक्षितः)

(२) 'सोम' यहाँ 'वर' का पर्य्याय है। सायण ने भी सोम का अर्थ वर ही किया है। देखो 'सोमाय वराय'। वेद में 'सोम' के लिये वधूयुः शब्द आया है, जिसका अर्थ सायण ने "वधू कामः" या वधू की इच्छा करनेवाला किया है।

(३) यहाँ 'सविता' का अर्थ "पिता" है, जो सायण के भी अनुकूल है। 'सविता' और "प्रसविता" समानार्थक हैं।

(४) इसलिये 'सूर्य्या' का अर्थ पुत्री हुआ। इसका विधान ऋग्वेद के १० वें मण्डल के समस्त ८५ वें सूक्त के देखने से पाया जाता है।

(५) इस मन्त्र में यह भी बताया है कि, स्त्री-पुरुष की युवावस्था में ही विवाह होना चाहिये। जब पुरुष 'वधूयुः' और स्त्री 'पत्येशंसन्ती' हो जाय।

दूसरा प्रमाण—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस् तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥

—ऋग्वेद, मण्डल १०; सूक्त ८५; मन्त्र ४०

सायण भाष्य :—जाता कन्यां सोमः प्रथम भावी सन् विविदे। लब्धवान्। गन्धर्व उत्तरः सन् विविदे लब्धवान्। अग्निस्तृतीयः पतिस्ते तव। पश्चात् मनुष्यजाः पतिस्तुरीयश्चतुर्थः।

हमारा अर्थ :—(सोमः) सोम (प्रथमः) पहले (विविदे)

प्राप्त करता है (उत्तरः) फिर (गन्धर्वः) गन्धर्व (विविद) प्राप्त करता है । (तृतीयः) तीसरा (पति) पति (ते) तेरा (अग्निः) अग्नि है (ते) तेरा (तुरीयः) चौथा (मनुष्यजाः) मनुष्यज है ।

इस मन्त्र में पतियों के चार नाम बताये हैं। पहले पति को 'सोम', दूसरे को 'गन्धर्व', तीसरे को [अग्निः] और चौथे को 'मनुष्यज' कहते हैं। इससे सिद्ध है कि, स्त्री के आवश्यकतानुसार एक से अधिक पति हो सकते हैं। सायण-भाष्य भी इसका विरोध नहीं करता।

यही मन्त्र कुछ परिवर्तित रूप में अथर्ववेद में भी आया है, जिससे यही बात और भी स्पष्ट हो जाती है:—

सोमस्य जाया प्रथमं गंधर्वस्तेपरः पतिः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस् तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

—अथर्ववेद, काण्ड १४; सूक्त २; मन्त्र ३ ।

अर्थात् पहले तू सोम की पत्नी है। दूसरा पति तेरा गन्धर्व है, तीसरा पति अग्नि है और चौथा मनुष्यज !

इसी के आगे एक और मन्त्र है, जो इस मन्त्र के अर्थ पर भली भाँति प्रकाश डालता है :—

सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो दद्दग्नये ।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निमह्य मथो इमाम् ॥

—ऋग्वेद; मण्डल १०; सूक्त ८५ मंत्र ४१;
अथर्ववेद; काण्ड १४; सूक्त २; मंत्र ४

सायण भाष्य:—सोमो गन्धर्वाय प्रथमं ददत् । प्रादात् । गन्धर्वोऽग्नये प्रादात् । अथो अपि चाग्निरिमां कन्यां रयिं धनं पुत्रांश्च मह्यमदात् । (सायणकृत ऋग्वेद भाष्य)

भाषार्थ :—सोम ने पहले गन्धर्व के लिये दिया । गन्धर्व ने अग्नि के लिये और अग्नि ने भी इस कन्या को, धन को, पुत्रों को, मुझे दिया ।

इन दोनों मन्त्रों के एक साथ पढ़ने से (और यह दोनों वेदों में पास ही दिये हुए हैं तथा एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं) यही विदित होता है, कि स्त्री के लिये भी विशेष अवस्था में एक से अधिक पति करने की आज्ञा है ।

(प्रश्न) यह तो तुम्हारा महा अन्धेर है कि सोम, गन्धर्व और अग्नि जो देवताओं के नाम हैं, उनको साधारण मनुष्य बना दिया । वस्तुतः बात यह है कि, कन्या को सब से पहले सोम देवता भोग लेता है, उसके पश्चात् गन्धर्व, गन्धर्व-देवता के पश्चात् अग्नि का नम्बर आता है । अग्नि के भोग चुकने के पश्चात् स्त्री पुरुष के भोगने के योग्य होती है । देखो अत्रि-स्मृति में भी लिखा है :—

पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोम गन्धर्व वह्निभिः ।
भुञ्जते मानवाः पश्चात् न वादुष्यन्ति कर्हिचित्* ॥

अर्थात् स्त्रियाँ पहिले सोम, गन्धर्व, वह्नि (अग्नि) नामक देवताओं द्वारा भोग ली जाती हैं। इसके पश्चात् उनको मनुष्य भोगते हैं और उनको कुछ भी दोष नहीं लगता।

(उत्तर) क्या यह तुम्हारा अन्धेर नहीं है कि, स्त्रियों तथा विचारी छोटी-छोटी कन्याओं को देवताओं के साथ सङ्गम करने का दोष लगाते हो और जिन सोम, गन्धर्व और अग्नि को तुम पवित्र पूजनीय और उपास्य देव मानते हो उन्हीं पर कन्याओं के साथ व्यभिचार का दोष देते हो। मैं पूछता हूँ कि, क्या इन देवताओं के देवजाति की ही स्त्रियाँ (देवियाँ) नहीं हैं, जो वह इनको छोड़कर बेचारे मनुष्यों की लड़कियों का धर्म भ्रष्ट करते फिरते हैं। तुम्हारी देवमाला में तो पुल्लिङ्ग और स्त्री-लिङ्ग सभी प्रकार से देव और देवियाँ हैं। देखो इन्द्र के लिये इन्द्राणी, शिव के लिये पार्वती, विष्णु के लिये लक्ष्मी, अग्नि के लिये आग्नेयी उपस्थित हैं। फिर क्या सोम और गन्धर्व पत्नी रहित और विन ब्या हे ही हैं अथवा उनको स्त्रियों का शरीरान्त हो गया है ? फिर

---

* "श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस" मुद्रित अत्रि-स्मृति श्लोक १९१

यह भी तो बताओ कि, गन्धर्व कौन सा देवता विशेष है—उस का निवास कहाँ रहता है ? साधारण देवमाला पर विश्वास करने वाले लोग तो गन्धर्व, किन्नर आदि योनि विशेष मानते हैं। यदि यह योनियाँ हैं, तो इनकी स्त्रियाँ भी अवश्य होंगी। फिर मनुष्य की बालिकाओं और गन्धर्वों की दैवी स्त्रियों में खूब सौतिया डाह रहता होगा। तीसरी बात यह भी तो बतानी चाहिये, कि देवता कारी कन्याओं को ही क्यों भोगते हैं और किस अवस्था तक की कन्या को भोगते हैं ? क्या यदि कोई स्त्री आयु-पर्य्यन्त बाल ब्रह्म-चारिणी रहना चाहे, तो भी ये उसे भोग लेंगे ? यदि ऐसा है, तो स्त्रियों के लिये बड़ी आपत्ति होगी !

रहा अत्रि-स्मृति का प्रमाण ! यह तो ऐसी गल्प है कि, शायद तुम भी इसे मानने के लिये तैयार न होगे; क्योंकि इस स्मृति के १६० वें श्लोक में लिखा है :—

न स्त्री दुष्यति जारेण ब्राह्मणो वेद कर्म्मणा ।
नापो मूत्र पुरीषाभ्यां नाग्निर्दहति कर्म्मणा ॥

—अत्रि-स्मृति, श्लोक १९०

अर्थ—स्त्री को व्यभिचार का दोष नहीं लगता, न ब्राह्मण को वेद कर्म से, न जल को मल और मूत्र से दोष लगता है और न अग्नि कर्म द्वारा जलती है।

इसी श्लोक के आगे 'पूर्व स्त्रिय इति' तुम्हारा श्लोक दिया हुआ है, इस से समस्त झगड़ा विवाह और पुनर्विवाह का मिट जाता है। तुम्हारे अत्रि मुनि ने तो स्त्रियों के व्यभिचार को ब्राह्मणों के किये हुए वेद विहित कर्म्मों से उपमा दे दी और उनको व्यभिचार के दोष से सदा के लिये मुक्त कर दिया। इस सिद्धान्त से तो वेश्यायें भी कुलीन ब्रह्मचारिणी स्त्रियों के समान हो गईं! छीः! छीः! छीः! अब तुम्हारे लिये नीचे लिखे दो ही मार्ग हैं एक को त्यागो और दूसरे को ग्रहण करो :—

(१) अत्रि मुनि के दोनों श्लोकों को प्रमाण मानो और न केवल पुनर्विवाहित विधवाओं को ही; किन्तु वेश्याओं तक को दोष रहित कहो। यदि ऐसा कहोगे, तो विधवा-विवाह के प्रचारकों को किस मुख से बुरा कहने का साहस कर सकोगे?

(२) इन दोनों प्रमाणों को त्याज्य मान कर सोम, गन्धर्व आदि साधारण पतियों के नाम समझो और इस प्रकार विशेष दशाओं में विधवाओं को अन्य पति करने का अधिकार दो।

(प्रश्न) नहीं, नहीं! देवताओं के भोग से यह तात्पर्य्य नहीं, जैसा तुम लेते हो। "गर्भोत्पत्ति के समय से ही सोम देवता

के प्रधान आदि कारण होने से सोम-देव कुमारी कन्या को पहले प्राप्त होता है अर्थात् सब अङ्गों में विशेषता से प्रविष्ट होता है।" जब अवयवों के विकास से कन्या में यौवन का सञ्चार हुआ, तो गन्धर्व पति हुआ; क्योंकि गन्धर्व को यौवन की रक्षा करने वाला माना गया है। फिर विवाह से होमाग्नि के पास लाई गई, तो वही पति कहलाया।

(उत्तर) धन्य हो ! प्रथम तो देवताओं का कन्याओं को भोग करना स्पष्ट लिखा है, जैसा हम अत्रि-स्मृति से बता चुके हैं और जो एक असम्भव बात है। दूसरे यदि कहो कि देवता भोगते नहीं; किन्तु रक्षा करते हैं और बाल्यावस्था से तरुणाई तक भिन्न-भिन्न देवों का आधिपत्य रहता है, तो क्या कारण है कि पुरुषों की बाल्यावस्था से लेकर युवावस्था तक यही देव अपना आधिपत्य नहीं रखते ? जिन विद्वानों ने मनुष्य-शरीर के संगठन पर पूरा विचार किया है, वह भली प्रकार जानते हैं कि, स्त्री और पुरुष दोनों के शरीरों की कई अवस्थाएँ होती हैं और जिस प्रकार पुरुषों का शरीर वृद्धि, स्थिति तथा क्षय को प्राप्त होता है। उसी प्रकार स्त्री का भी ! यदि कन्याओं की गर्भोत्पत्ति के समय से ही सोम देवता प्रधान होता है, तो लड़कों की गर्भोत्पत्ति से ही सोम देवता लड़कों का भी पति क्यों नहीं होता ? जिस प्रकार अवयवों का विकास स्त्रियों के शरीर में होता है; उसी प्रकार पुरुषों में भी ! फिर गन्धर्व दोनों का पति क्यों नहीं ? विवाह से पूर्व केवल कन्या

ही तो होमाग्नि के पास नहीं लाई जाती। वर भी उसी प्रकार यज्ञ में सम्मिलित होता है और अग्निकुण्ड की प्रदक्षिणा करता है, फिर क्या अग्नि, वर और वधू दोनों का ही पति है अथवा केवल एक का? यदि केवल कन्या का, तो वर का भी क्यों नहीं? यदि तुम्हारी युक्ति ठीक है, तो स्त्री-पुरुष दोनों पर समानतया घटती है और यदि वर के पक्ष में तुम इसको न्याय सङ्गत नहीं कहते, तो कन्या के पक्ष में भी ऐसा ही कहने के लिए बाधित होना पड़ेगा। क्या सोम, गन्धर्व और अग्नि आदि देवों के समान कन्याओं के भोगने के समान सोम्या, गन्धर्व्या, आग्नेयी आदि देवियाँ भी तो कुमार बालकों को नहीं भोग जातीं? यदि ऐसा है तो ब्रह्मचर्य्य का उपदेश ही सर्वथा मिथ्या और व्यर्थ हो जाता है; क्योंकि स्त्री-पुरुष ब्रह्मचारी तब रहें जब देवी-देवता रहने दें। क्या अद्-भुत सिद्धान्त है जिसको सुन कर ही हँसी आती है।

देखो यहाँ सोम, गन्धर्व आदि पतियों की ही संज्ञा की गई है। इस का प्रमाण ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त ८५ के ६ वें मन्त्र से भी मिलता है, जिसे हम ने 'अश्विनौ' शब्द का अर्थ दिखलाने के लिये ऊपर उद्धृत किया है। उसमें स्पष्ट दिया है कि :—

"सोमो वधूयुरभवत्"

अर्थात् 'सोम' वधू की कामना करने वाला हुआ। यदि यहाँ 'सोम' का अर्थ अपना अभिप्रात 'सोम देव' करोगे, तो उसको

'वधू' की इच्छा करने वाला भी मानना पड़ेगा। फिर किस मुख से कह सकोगे कि, गर्भोत्पत्ति के समय से ही सोम को अधिकार होता है। क्या नवजाता कन्या को भी वधू कह सकोगे? फिर इस मन्त्र में यह भी है :—

"सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात्"

अर्थात् "पति कामयमानां। पर्य्याप्तयौवनामित्यर्थः" (इति सायणः) युवती और पति की कामना करने वाली कन्या को सवित्त ने सोम के लिये दिया। पर्य्याप्तयौवना पर तो तुम्हारे मत के अनुसार गन्धर्व का आधिपत्य होता है और इस मन्त्र में सोम को इसका पति कहा जाता है। फिर सायणाचार्य्य ने 'सोम' का अर्थ स्पष्टतया 'वर' किया है (देखो "सोमाय वराय" इति सायणः) इस से भी हमारे ही मत की पुष्टि होती है अर्थात् 'सोम' स्त्री के पहले पति को कहते हैं। यदि 'सोम' स्त्री का पहला पति हुआ, तो गन्धर्व और अग्नि के द्वितीय और तृतीय पति होने में सन्देह ही क्या?

तीसरा प्रमाण—

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
वीरसूर्देवृकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥

—ऋग्वेद, मण्डल १०; सूक्त ८५; मंत्र ४४

(अघोरचक्षुः) अच्छी चक्षु वाली (अपतिघ्नी) पति का विरोध न करनेवाली, (शिवा) मङ्गलकारिणी (पशुभ्यः) पशुओं के लिये (सुमनाः) प्रसन्न-चित्त, (सुवर्चाः) शुभगुणयुक्त (वीरसूः) वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली (देवृकामा) दूसरे पति को चाहनेवाली (स्योना) सुख युक्त (नः (हमारे (द्विपदे) मनुष्यादि के लिये (शं) कल्याण-कारणी और (चतुष्पदे) गाय भैंस आदि के लिये (शं) कल्याण करने वाली (भव) हो।

यह 'देवृकामा' शब्द इस बात का सूचक है कि स्त्रियों को आवश्यकता पड़ने पर पुनर्विवाह का अधिकार है।

यही वेद-मन्त्र कुछ रूपान्तर के साथ अथर्ववेद में भी आया है। देखोः—

अदेवृघ्न्यपतिघ्नी हैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चा।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य॥

—अथर्ववेद, का० १४; सूक्त २; मन्त्र १८

अर्थ—हे (अदेवृघ्न्यपघ्नी) देवर और पति को दुःख न देने वाली स्त्री! तू (इह) इस गृहाश्रम में (पशुभ्यः) पशुओं के लिये (शिवा) कल्याण करनेवाली (सुयमा) अच्छे प्रकार नियम में चलने वाली (सुवर्चा) शुभ गुण युक्त (प्रजावती) उत्तम सन्तान वाली (वीरसूः) शूरवीर पुत्रों को उत्पन्न करनेवाली

(देवृकामा) देवर की कामना करने वाली (स्योना) सुख वाली (एधि) प्राप्त हो। (इमम्) इस (गार्हपत्यं) गृह पति अर्थात् गृहस्थाश्रम सम्बन्धी (अग्निं) अग्नि अर्थात् हवन करने के योग्य अग्नि को (सपर्य) सेवन किया करे।

इस मन्त्र में ऋग्वेद के उपर्युक्त मन्त्र में बहुत कम भेद है; परन्तु 'देवृकामा' शब्द दोनों में पड़ा हुआ है। हमने इस अध्याय में वेद का जो पहला प्रमाण दिया है, उससे सिद्ध हो चुका है कि, 'देवर' शब्द का अर्थ प्राचीन भाष्य-प्रणाली के अनुसार 'दूसरा वर' है। अतः इन दोनों मंत्रों से सिद्ध होता है कि, स्त्री को दूसरे पति की विशेष अवस्थाओं में आज्ञा है।

(प्रश्न) यह मन्त्र विवाह सम्बन्धी है और इसलिये इस में पुनर्विवाह का वर्णन अशुभ है। इस मन्त्र का अर्थ है 'पति के भाइयों को चाहने वाली अर्थात् उन से प्रेम करने वाली !'

(उत्तर) यहाँ दो शब्द हैं 'देवृ' और 'कामा' जिनसे मिल कर 'देवृकामा' समास बना। 'कामा' शब्द ही बताता है कि 'देवर' के साथ संगमन की इच्छा, अभीष्ट है। इसके अर्थ यह हो सकते हैं:—

(१) पति के जीवन में उसके भाइयों से संगमन की इच्छा करने वाली।

(२) पति की मृत्यु पर उसके भाई के साथ सहवास की इच्छा करने वाली।

(३) अन्य पति की इच्छा करने वाली।

पहला अर्थ तो हम-तुम दोनों को ही त्याज्य है; क्योंकि अन्य वेद-मन्त्रों के विरुद्ध और इसलिये अधर्म है। दूसरे और तीसरे अर्थों से विधवा-विवाह या नियोग के सिवाय अन्य बात सिद्ध ही नहीं होती।

(प्रश्न) 'देवृकामा' से 'देवर के साथ सहवास करने की इच्छा करने वाली' कैसे अर्थ हुआ ? क्या 'पुत्र कामा' से भी 'पुत्र के साथ सहवास करने वाली' अर्थ होता है ?

(उत्तर) नहीं-नहीं ! 'पतिकामा' या 'देवृकामा' में 'कामा' शब्द इसी अर्थ का वाचक है। यह तो प्रत्येक प्रकरणवित् पुरुष मान लेगा। सायण ने भी 'पतिं कामयमाना' का अर्थ 'प्राप्तयौवना' किया है। यदि कहें कि 'अमुक स्त्री अमुक पुरुष की कामना करती है' तो क्या इसका वही अर्थ होगा जो 'पुत्रकामा' का होता है ? भला बताओ तो सही कि, 'देवर की कामना' का और अर्थ ही क्या हो सकता है। 'पुत्रकामा' उस स्त्री को कहेंगे जिसे यह इच्छा हो कि, मेरे पुत्र उत्पन्न हो। इसी प्रकार 'देवृकामा' का क्या यह अर्थ करोगे कि, 'वह स्त्री जिसकी इच्छा हो कि, मेरी सास के पुत्र उत्पन्न हो'; क्या खूब !

(प्रश्न) क्या विवाह के समय आगे के लिये पति का मरण और दूसरे पति की इच्छा का प्रकाश अशुभ नहीं ?

(उत्तर) शुभाशुभ का विचार धर्माधर्म के अन्तर्गत है। जो

धर्म है; वही शुभ है; जो अधर्म है, वही अशुभ ! जिस समय पति विवाह के समय इस मन्त्र को पढ़ता है, उस समय वह केवल स्त्री के अधिकार का वर्णन करता है अर्थात् यदि मेरी मृत्यु हो जाय, तो तुझे अधिकार होगा कि, पुनर्विवाह कर सकती है। इससे यह तात्पर्य्य कदापि नहीं कि, पति अपना मरण चाहता है। यदि कोई पुरुष विवाह के समय या इससे पहले कहता है कि, मैंने अपने जीवन का बीमा कर दिया है, तो कोई इसको अशुभ नहीं कहता। यद्यपि तात्पर्य्य यही होता है कि, यदि मैं अकस्मात् मर जाऊँ, तो मैं ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया है कि, मेरी स्त्री के भोजन-छादन में विघ्न न पड़ेगा। सभी जानते हैं कि, मरना-जीना स्वाभाविक है और ऐसी घटनायें हुआ ही करती हैं। जब इङ्गलैण्ड की पार्लीमेण्ट एक सम्राट् के जीवन में ही यह पास करती है कि, इस राजा का उत्तराधिकारी अमुक पुरुष होगा, तो इसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि, पार्लीमेण्ट सम्राट् को मारना चाहती है या उसके साथ भक्ति नहीं करती। सम्भव है कि, पार्लीमेण्ट यही चाहती हो कि, यही सम्राट् सर्वदा राज किया करे ; परन्तु उसके चाहने मात्र से तो काम नहीं चलता। मृत्यु देव तो अपना कर राजा और रङ्क सभी से लेते हैं। इसलिये प्रबन्धार्थ ऐसा करना ही पड़ता है कि, जीवन समय में ही अवश्यम्भावी मृत्यु के लिये यथोचित् अथवा आवश्यकतानुसार प्रबन्ध कर दिया जाय। यह मन्त्र इस बात का भी सूचक है कि, पति को स्त्री के स्वाभाविक अधिकार छीनने का अधिकार नहीं।

उसने भरी सभा में प्रतिज्ञा कर ली है कि, यदि स्त्री को धर्म की मर्य्यादा के भीतर नियोग करने की आवश्यकता तथा इच्छा हुई, तो उसका पति उसका प्रतिरोध नहीं करने का; किन्तु प्रसन्नता से आज्ञा दे देगा।

इस मन्त्र में स्त्री के अधिकार और कर्त्तव्य दोनों का वर्णन है; जिनका विवाह के समय पढ़ा जाना किसी प्रकार भी अशुभ नहीं ठहरता। विवाह केवल उत्सव ही नहीं है; किन्तु इसके साथ ही एक क़ानूनी मामला भी है। क़ानून में शुभ और अशुभ का विचार नहीं हुआ करता।

चौथा प्रमाण—

"इयं नारी पतिलोकं वृणाना
निपद्यत उपत्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती
तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि॥"

—अथर्ववेद; काण्ड १८, सूक्त ३, मन्त्र १

यह मन्त्र कुछ रूपान्तर के साथ तैत्तिरीय आरण्यक में भी आया है। पहले हम इसका अपना अर्थ देते हैं:—

(इयं) यह (नारी) स्त्री (पतिलोकं) पति के लोक को (वृणाना) चाहती हुई (प्रेतम्) मरे हुए पति के (अनु) पीछे (मर्त्य) हे मनुष्य (उपत्वा) तेरे पास (निपद्यते) आती है

(पुराणं) पुराने या सनातन (धर्म) धर्म को (पालयन्ती) पालती हुई (तस्य) उसके लिये (इह) इस लोक या स्थान में (प्रजां) सन्तान को (द्रविणं च) और धन को (धेहि) धारण करा।

भावार्थ—यहाँ मर्त्य अर्थात् मनुष्य सम्बोधन में है और शब्द 'इह' यहाँ भी पड़ा हुआ है। इससे इतनी बातें स्पष्ट हो जाती हैं :—

(१) वेद आज्ञा देता है कि, पति के मरने के पश्चात (प्रतं अनु) स्त्री दूसरे पति के पास जावे, जो उसे (प्रजां द्रविणं च) सन्तान और धन अर्थात् भोजन-छादन देने वाला हो।

(२) ऐसा करना सनातन धर्म है ; कोई नवीन धर्म नहीं। न केवल प्राचीन काल में ही, किन्तु प्राचीन कल्प में भी ऐसा हुआ करता था।

तैत्तिरीय आरण्यक में पाठन्तर इस प्रकार है :—

"इयं नारी पतिलोकं वृणाना
निपद्यत उपत्वा मर्त्य प्रेतम्।
विश्वं पुराणमनुपालयन्ती
तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥"

—तैत्तिरीय; अ० ६, १, १२

सायण भाष्य—हे (मर्त्य) मनुष्य ! या (नारी) मृतस्य तव

भार्य्या, सा (पतिलोकम्) (वृणाना) कामायमाना (प्रेत, मृतं, त्वां, उपनियद्यते) समीपे नितरां प्राप्नोति। कीदृशी (पुराणं, विश्वम्) अनादि काल प्रवृत्तं कृत्स्नं स्त्री धर्मं (अनुपालयन्ती) अनुक्रमेण पालयन्ती (तस्यै) धर्म पत्न्यै त्वं इह लोके निवासार्थं अनुज्ञां दत्त्वा (प्रजाम्) पुत्रादिकं (द्रविणम्) धनञ्च (धेहि) सम्पादय।

भावार्थ :—हे मनुष्य यह जो मरे पति की स्त्री तेरी भार्य्या है, वह पतिलोक या पतिगृह की कामना करती हुई मरे पति के उपरान्त तुझ को प्राप्त होती है। कैसी है वह ? अनादिकाल से पूरे स्त्री-धर्म को क्रम से पालती हुई। उस धर्मपत्नी के लिये तू इस लोक में निवास की आज्ञा देकर पुत्रादि सन्तान और धन की प्राप्ति करा।

यहाँ सायण का ऐसी स्त्री के लिये धर्मपत्नी, शब्द प्रयुक्त करना, जिसने अपने पहले पति के मरने पर दूसरा विवाह किया है उनके विधवा-विवाह के पक्ष को सिद्ध करता है।

(प्रश्न) पतिलोक से यहाँ इस लोक का नहीं; किन्तु मृत्यु के पश्चात् दूसरे लोक का तात्पर्य्य है ?

(उत्तर) नहीं-नहीं ! 'इह' शब्द पर भी तो ध्यान दो, जिसका अर्थ 'इस लोक' के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। इसी का अर्थ सायणजी 'इह लोक' करते हैं।

पाँचवाँ प्रमाण—

"उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं
गता सुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं
पत्युर्जनित्वमभिसंबभूव ॥"

—अथर्व वेद ; का० १८, सूक्त ३, मन्त्र २; तथा
—ऋग्वेद ; मण्डल १०, सूक्त १८, मन्त्र ८

सायण-भाष्य—हे (नारि) मृतस्य पत्नी (जीवलोकं) जीवानां पुत्रपौत्राणां स्थानं लोकं गृहमभिलक्ष्य (उदीर्ष्व) अस्मात् स्थानात् उत्तिष्ठ (गतासुम्) अपक्रान्त प्राणं (एतं) पतिं (उपशेषे) तस्य समीपे स्वपिषि तस्मात् त्वं (एहि) आगच्छ। यस्मात् त्वं (हस्तग्राभस्य) पाणिग्राहं कुर्वतः (दधिषोः) गर्भस्य निधातुः (तव) अस्य (पत्युः) सम्बन्धादागतं (इदं) (जनित्वम्) जायात्वं अभिलक्ष्य (सम्बभूव) सम्भूतासि अनुसरणं निश्चयं अकार्षीः अस्मादागच्छः।

भावार्थ—हे मरे हुए पति की पत्नी! जीवित लड़कों पोतों का लोक अर्थात् जो गृह है, उस को विचार करके इस जगह से उठ। प्राणान्त हुए पति के समीप तू सोती है वहाँ से आ। जिससे तू पाणि-ग्रहण करने वाला गर्भ के धारण कराने वाला इस पति के

सम्बन्ध से आया हुआ जो है इसको स्त्री होने के विचार से निश्चय करके तू अनुसरण कर—इस लिये आ।

यही मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यक* में भी आया है, जिसका भाष्य सायणाचार्य्य इस प्रकार करते हैं:—

हे (नारि) त्वं (इतासुम्) गत प्राणं (एतम्) पतिं (उपशेषे) उपेत्य शयनं करोषि (उदीर्ष्व) अस्मात्पति समीपादुत्तिष्ठ (जीवलोकमभि) जीवन्तं प्राणसमूहमभिलक्ष्य (एहि) आगच्छ। (त्वम्) (हस्तग्राभस्य) पाणिग्राहवतः (दधिषोः) पुनर्विवाहेच्छोः (पत्युः) एतन् (जानित्वम्) जायात्वं (अभिसम्बभूव) आभिमुख्येन सम्यक् प्राप्नुहि

भाषार्थः—हे नारी! तू इस मृत-पति के पास लेटी है। इस पति के समीप से उठ! जीवित पुरुषों को विचार कर आ और तू हाथ पकड़ने वाले पुनर्विवाह की इच्छा करने वाले इस पति को जाया-भाव (स्त्री-भाव) से अच्छी तरह प्राप्त हो।

यहाँ हमने सायणाचार्य्य का अर्थ इसलिये दिया है कि, कट्टर से कट्टर विधवा-विवाह के विरोधी भी सायण से विमुख नहीं हो सकते। सायण ने इस मन्त्र के अर्थ में 'पुनर्विवाहेच्छु' शब्द का प्रयोग कर के समस्त झगड़े को दूर कर दिया; परन्तु हम वह

* तैत्तिरीय; अ० ६, १, १४

इटावा निवासी पं० भीमसेनजी शर्म्मा का अर्थ* भी उद्धृत किये देते हैं, जिससे इसकी और अधिक सम्पुष्टि हो सकेः—

"उदीर्ष्व नार्यभि०" अत्र पत्यन्तर विधायके मंत्रेऽर्थस्यापि विवादो नास्ति। हे नारि! त्वं गतासु मृतमेतं पति मुपशेषे तस्य समीपे शोकेन पतितासि त विहायाभिजीवलोकं जीवन्त प्राणि-समूहमभिमुखीकृत्योदीर्ष्वोत्तिष्ठ। उत्थाय च तव हस्तग्राभस्य पाणिग्रहणकर्त्तुर्दिधिषोर्द्वितीयस्य पत्युरिदं जनित्वं जायत्वं स्त्री भावमभिसंबभूव।

अस्य मंत्रस्यायमेवार्थः 'सायणादिवेद भाष्यकारैरप्य-भ्युपागतः। तथा 'मेधातिथिना भाष्यकारेणापि लिखतम्—(को वा सुपुत्रो विधवेव देवरमित्यादि) एवं प्रकारका मन्त्रा 'नियोगविधायका वेदेष्वपि दृश्यन्त इति मेधातिथेरतात्पर्यम्। वेदषु यदा नियोगस्य कर्त्तव्यत्वमुक्तं पुनस् "तस्य निन्दिका वेदविरोधिन इति स्पष्टमेव सिद्धम्"

इन सब का भावार्थ देना व्यर्थ होगा। यहाँ पं० भीमसेन जी इतनी बातें कहते हैं:—

(१) यह नियोग विधायक मन्त्र है।

(२) सायणादि भाष्यकार भी इसका ऐसा ही अर्थ करते हैं।

---

* पण्डित भीमसेनकृत "मानव धर्मशास्त्रस्योपोद्घातः" पृ० १००

(३) मनुस्मृति के मेधातिथि भाष्यकार ने भी यही तात्पर्य लिया है।

(४) नियोग के विरोधी वेद के निन्दक हैं।

यह इतने प्रबल वाक्य हैं कि, इनका खण्डन पं० भीमसेन जी की इसके पश्चात् लिखी हुई किसी पुस्तक से नहीं हो सकता ; क्योंकि इनमें न केवल उन्होंने अपनी निज सम्मति ही दी है ; किन्तु सायण और मेधातिथि को भी सम्मिलित किया है, जिनके वचनों को अब कौन बदल सकता है।

(प्रश्न) इससे तो बड़ी निर्दयता और असभ्यता टपकती है। एक ओर बेचारा पति मरा हुआ पड़ा है और उसकी स्त्री उसके पास पड़ी रो रही है। दूसरी ओर लोग कहते हैं कि, हे स्त्री तू इस मरे हुए पति के पास क्यों पड़ी है ? चल उठ और दूसरा विवाह कर ! क्या इसी का नाम पात्यव्रत धर्म है, जिसके लिये प्राचीन भारत इतना अभिमान करता था ?

(उत्तर) 'सोना' और 'लेटना' किसी ने अपनी ओर से तो मिला नहीं दिया। 'उपशेषे' शब्द स्वयँ वेद-मन्त्र में पड़ा हुआ है, जिसका अर्थ सायणाचार्य्य भी यही करते हैं। यदि तुम वेद को नहीं मानते तो न मानो। यदि वेद को मानोगे, तो वही अर्थ करना पड़ेगा। रही असभ्यता की बात ! यह केवल समझ का फेर है। वेद में बहुत से शब्द साङ्केतिक अर्थ में आते हैं और लोक में भी यही बात है। जैसे स्त्री का पति के साथ

"सहवास" सम्भोग के अर्थ में प्रयुक्त होता है। कोई कहे कि, "सहवास" का अर्थ केवल साथ रहना है, तो यह उसका प्रकरणानुकूल अर्थ न होगा। यदि माता अपने पुत्र को लिये कहीं सो रही है, तो उसको कदापि न कहेंगे कि, वह अपने पुत्र के साथ सहवास कर रही है। इसी प्रकार यहाँ यह तात्पर्य्य नहीं है कि, चिता में अग्नि प्रवेश करने से पूर्व ही दूसरे पति से विवाह या नियोग कर लिया जावे ; किन्तु आशय यह है कि यदि विधवा दुःखित है या सन्तानोत्पत्ति चाहती है, तो लोग इस मन्त्र को पढ़ सकते हैं।

छठा प्रमाण—

"या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दते परम्।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वियोषतः॥"

—अथर्ववेद; काण्ड, ९, अनुवाक ३, सूक्त ५, मन्त्र २७

अर्थ—(या) जो स्त्री (पूर्वं) पहले (पतिं) पति को (वित्त्वा) पाकर (अथ) उसके पीछे (अन्यम्) अन्य (अपरम्) दूसरे को (विन्दते) प्राप्त होती है (तौ) वे दोनों (पञ्चौदनं) पाँच भूतों को सींचने वाले (अज) ईश्वर को (ददातः) अर्पण होते हुए (न) न (वियोषतः) अलग हों।

इस मन्त्र में स्पष्टतया बताया गया है कि, यदि एक पति के उपरान्त दूसरा पति ग्रहण किया जाय, तो वह एक दूसरे से अलग न हों, किन्तु ईश्वर का नाम लेते हुए प्रेम से बर्त्ताव करें।

सातवाँ प्रमाण—

"समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः ।
योऽजं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥"

—अथर्ववेद, काण्ड ९, सूक्त ५, मन्त्र २८

अर्थः—(समान लोकः) बराबर स्थान या पदवाला (भवति) होता है (पुनर्भुवा) पुनर्भू अर्थात् उस स्त्री के साथ जिसका पुनर्विवाह हुआ है (अपरः) दूसरा (पति) पति जो (पञ्चौदनं अजं) पाँच भूतों के सींचने वाले परमात्मा को (दक्षिणा ज्योतिषम्) दान-क्रिया है ज्योति जिसकी ऐसे को (ददाति) अर्पण करता है।

यहाँ बतलाया है कि, जो पुरुष विधवा से पुनर्विवाह करता है, उसका पद किसी प्रकार अन्य पुरुषों से कम नहीं समझा जाता। क्योंकि पुनर्विवाह कोई घृणित कार्य्य नहीं है।

छठा अध्याय

स्मृतियों की सम्मति

स्मृतियाँ तो ऐसे प्रमाणों से भरी पड़ी हैं, जिनमें अक्षत-योनि विधवाओं के पुनर्विवाह का विधान है। अधिकन्तु कोई-कोई स्मृति क्षत-योनिविधवा के विवाह में भी कोई सामाजिक अथवा धार्मिक क्षति नहीं देखती। इनमें सबसे प्राचीन और प्रामाणिक मनुस्मृति है; क्योंकि कहा है कि :—

"यद्वै किंचनमनुरवदत्तद्भेषजं भेषजातायाः।"

अर्थात् जो कुछ मनुजी ने कहा है, वह औषधियों औषधि है।

इस विषय में निम्नलिखित प्रश्न मीमांसनीय हैं :—

(१) क्या मनुजी विधवा-विवाह की आज्ञा देते हैं ?

(२) क्या मनुस्मृति में कुछ श्लोक विधवा-विवाह विधायक और कुछ उसके निषेध में भी हैं ?

(३) क्या मनुस्मृति में उन विधवाओं को जो पुनर्विवाह कर लेती हैं, नीच समझा गया है ?

(४) क्या मनुस्मृति उन पुरुषों को नीच समझती है, जो किसी विधवा से विवाह कर लेते हैं ?

(५) क्या मनुस्मृति के अनुसार पुनर्विवाहित विधवाओं की सन्तान पैतृक सम्पत्ति की अधिकारी होती है ?

सब से पहले हम वेद को लेते हैं। मनुजी महाराज कई श्लोकों में बताते हैं कि, किसी बात के लिये वेद से अधिक अन्य कोई प्रमाण नहीं—समस्त स्मृतियाँ वेद का ही अनुसरण करती हैं। महाकवि कालिदास ने भी कहा है :—

"श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्।"

जिसका आशय यही है कि, स्मृति का कर्त्तव्य है—श्रुति अर्थात् वेद का अनुसरण करे। मनुजी भी इसी कथन के अनुयायी हैं ; वह लिखते हैं—

"धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।"

अर्थात् धर्म के जिज्ञासुओं के लिये परम प्रमाण श्रुति है। यही नहीं मनु के अनुसार तो—

"नास्तिको वेद निन्दकः।"

वेद का निन्दक या न मानने वाला नास्तिक तथा शूद्रवत् वहिष्कार्य (शूद्र के समान बाहर निकालने योग्य) है। मनुस्मृति में कोई श्लोक ऐसा नहीं, जिससे प्रकट होता हो कि, कलियुग या किसी अन्य युग में वेद को प्रमाण नहीं मानना चाहिये। इन श्लोकों

से सिद्ध होता है कि, यदि मनुस्मृति में विधवा-विवाह के सम्बन्ध में अन्य कोई श्लोक न होते, तो हम मनुजी को विधवा-विवाह का पक्षपाती ही समझते ; क्योंकि वेद में 'अन्यपति' 'देवर' आदि स्पष्ट शब्द पड़े हुए हैं, जिनका दूसरा अर्थ हो ही नहीं सकता ; परन्तु इतनी ही बात नहीं है ; अधिकन्तु मनुस्मृति स्पष्ट शब्दों में विधवा-विवाह का उल्लेख कर रही है :—

"या पत्या वा परित्यक्ता
विधवा वा स्वेच्छया ।
उत्पादयेत् पुनर्भूत्वा
स पौनर्भव उच्यते ॥
सा चेदक्षतयोनिः स्याद् ।
गतप्रत्यागतोपि वा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा
पुनः संस्कारमर्हति ॥"

—मनु० ; अ० ९, श्लोक १७५-१७६

हम प्रथम कुल्लूकभट्ट कृत मन्वर्थमुक्तावली से अर्थ लिखते हैं :—

"या भर्त्रा परित्यक्ता मृतभर्तृका ।वा स्वेच्छयाऽन्याश्रय पुनर्भार्या भूत्वा यमुत्पादयेत्स उत्पादकस्य पौनर्भवः पुत्र उच्यते" ॥ १७५ ॥

"सा स्त्री यद्यक्षतयोनिः सत्यन्यमाश्रयेत्तदा तेन पौनर्भवेन भर्त्रा पुनर्विवाहाख्यं संस्कारमर्हति । यद्वा कौमारं पतिमुत्सृज्यान्यमाश्रित्यपुनस्तमेव प्रत्यागता भवति तदा तेन कौमारेण भर्त्रा पुनर्विवाहाख्यं संस्कार मर्हति" ॥ १७६ ॥

कुल्लूक भट्ट कृत अर्थ :—जो स्त्री भर्त्ता से त्यागी गई हो या जिसका पति मर गया हो, वह अपनी इच्छा से फिर भार्य्या बन कर (अर्थात् फिर विवाह करके) जिसको उत्पन्न करे, वह उत्पन्न करने वाले पुरुष का पौनर्भव पुत्र कहलाता है ।

इस श्लोक से विदित होता है कि, स्त्री विधवा होकर या पति से त्यागी जाने की दशा में फिर भार्य्या बन सकती है अर्थात् पुनर्विवाह कर सकती है और उसकी सन्तान इस दूसरे पति का पौनर्भव पुत्र कहलायेगी ।

१७६ वें श्लोक का अर्थ यह है:—

वह स्त्री अगर अक्षत योनि होकर दूसरे का आश्रय ले, तो उस पौनर्भव पति के साथ पुनर्विवाह नामक संस्कार की अधिकारिणी होती है ।

यहाँ कुल्लूक भट्ट स्पष्टतया मानते हैं कि, न केवल विधवा का ही पुनर्विवाह हो सकता है, किन्तु उस स्त्री का भी जो कुमार पति को छोड़ कर दूसरे के पास रहे और फिर पूर्व पति के पास आ जाय । यहाँ कुल्लूक भट्ट की 'कुमार पति' को कल्पना मनुस्मृति के मूल श्लोक के अनुकूल नहीं ! प्रतीत होता है कि, कुल्लूक भट्ट जी

अपने रिवाज के झगड़े में फँस गये ; क्योंकि यह कहना कि, यदि स्त्री अपने पति को छोड़ जाय, मनुस्मृति के सिद्धान्त से असङ्गत है। मनु के अनुकूल बालकों का विवाह ही नहीं हो सकता ; फिर स्त्री बालक पति को कैसे छोड़ सकती है ? इसी प्रकार आज कल भी मनुस्मृति के आधुनिक टीकाकार पक्षपात में आकर मनमाने शब्द मिला देते हैं। जैसे ऋषिकुमार पण्डित रामस्वरूप जी मुरादाबादी इस श्लोक का अर्थ करते हुए कोष्ठ में लिखते हैं— 'यह विवाह द्विजातियों के लिये निन्दित है' यह सर्वथा अनधिकार चेष्टा है; क्योंकि मूल श्लोकों में वा इसके पूर्वस्थ श्लोकों में कोई ऐसा शब्द नहीं, जिससे शूद्रत्व की दुर्गन्ध आ सके।

अब प्रश्न यह है कि, क्या मनुस्मृति में कोई श्लोक ऐसा नहीं है, जिससे विधव-।विवाह वा नियोग का निषेध होता हो ?

इस सम्बन्ध में दो बातें विचारणीय हैं :—

(१) प्रथम तो जो मनुस्मृति आज कल मिलती है, उसमें समय पाकर लोगों ने मनमानी बातें मिला दी हैं। जिनके लिये एक नहीं अनेक प्रमाण हैं। यह सिद्धान्त सभी विद्वानों का है और प्राचीन प्रतियों को यदि मिलाया जाय, तो भेद भी पाया जाता है। और यही कारण है कि, मनुस्मृति में कहीं-कहीं परस्पर विरोध भी पाया जाता है।

(२) दूसरी बात यह है कि, जो श्लोक विधवा-विवाह तथा नियोग के विरोध में उद्धृत किये जाते हैं, वह वस्तुतः विरुद्ध नहीं

किन्तु उनका अर्थ ही अन्य है। यदि आप विरोध-सूचक अर्थ करने का ही हठ करें और हमारे अर्थों को स्वीकार न करें अर्थात् यदि आप इस सिद्धान्त को मानें कि, कहीं विधि और कहीं निषेध है, तो परस्पर विरोध होने से मनुस्मृति प्रामाणिक भी नहीं ठहरती। एक पुरुष विधि-सूचक श्लोक पढ़ कर कहता है कि, पुनर्विवाह धर्मानुकूल है। दूसरा निषेधात्मक श्लोक पढ़ कर उसका विरोध करता है। कोई बुद्धिमान मनुष्य अपनी पुस्तक में दो परस्पर विरुद्ध सिद्धान्त नहीं लिख सकता; फिर मनु की क्या कथा ?

पहले हम नियोग सम्बन्धी वह श्लोक देते हैं, जिनको विरुद्ध समझा जाता है; परन्तु वास्तवमें अनुकूल ही है:—

"नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा
वर्त्तेयातां तु कामतः।
तावुभौ पतितौ स्यातां
स्नुषागगुरुतल्पगौ ॥"

—मनु०; अ० ९, श्लोक ६३

अर्थ:—नियोग द्वारा सम्बद्ध हुए जो स्त्री-पुरुष विधि को छोड़ कर कामचेष्टा से वर्त्तते हैं, वह दोनों पतित हो जाते हैं; जैसे पुत्र-वधू या गुरू की स्त्री के साथ संगमन करने वाले !

यहाँ स्पष्टतया दिखाया गया है कि, नियोग "विधि अनुकूल"

करे—बिना विधि के सम्बन्ध करना महापाप है। यह बात विवाह में भी है अर्थात् यदि एक कुँआरा पुरुष कुँआरी कन्या से विवाह की विधि छोड़ कर अन्यथा संगमन करता है, तो वह पतित हो जाता है। उसे चाहिये कि पहले विवाह करे; तत्पश्चात् संगमन! यह श्लोक वस्तुतः विधि के अभाव का विरोधी है; न कि नियोग का!

"नान्यस्मिन् विधवा नारी
नियोक्तव्या द्विजातिभिः।
अन्यस्मिन् हि नियुञ्जाना,
धर्मं हन्युः सनातनम्॥"

—मनु०; अ० ९, श्लोक ६४

अर्थ—द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) को चाहिये कि, अन्य जाति वाले के साथ विधवा स्त्री का नियोग न करें। अन्य जाति वाले के साथ नियोग करने वाले सनातनधर्म का हनन करते हैं।

इस श्लोक में बताया है कि, नियोग सवर्णों में ही होना योग्य है—विरुद्ध वर्णों में नहीं; जिससे वर्णसंकरता न हो। इसमें नियोग का विरोध नहीं। यदि कोई कहे कि, ब्राह्मण को अपनी कन्या इतर जातियों में नहीं व्याहनी चाहिये, तो क्या इसका तात्पर्य्य यह होगा कि, ब्राह्मण को अपनी कन्या ही नहीं व्याहनी चाहिये?

"नोद्वाहिकेषु मंत्रेषु
नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ।
न विवाह विधावुक्तं
विधवा वेदनं पुनः ॥"

—मनु०; अ० ९, श्लोक ६५

अर्थ:—विवाह के मन्त्रों में नियोग नहीं किया जाता और न विवाह की विधि में 'पुनः विधवा वेदन' अर्थात् नियोग को कहा गया है। यह श्लोक नियोग का विरोधी नहीं। यहाँ केवल यह दिखाया गया है कि, विवाह की विधि अलग और नियोग की अलग है। विवाह की विधि में नियोग नहीं; किन्तु नियोग की विधि में नियोग है "विधवा वेदनं पुनः" का अर्थ नियोग है अर्थात् विधवा का सन्तानोत्पत्ति के लिये वेदन अर्थात् ग्रहण करना !

"अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः
पशुधर्मो विगर्हितः ।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो
वेने राज्यं प्रशासति ॥
स महीमखिलां भुञ्जन्
राजर्षि प्रवरः पुरा ।

वर्णानां संकरं चक्रे
कामोपहत चेतनः ॥
ततः प्रभृति यो मोहात्
प्रमीतपतिकां स्त्रियम् ।
नियोजमत्यपत्यार्थं
तं विगर्हन्ति साधवः ॥"

—मनु०; अ० ९, श्लोक ६६—६८

अर्थ—यह (नियोग) वेन राजा के राज में विद्वान् द्विजों द्वारा निन्दित किया गया और मनुष्यों के लिये ऐसा ही कहा गया। वह प्रवर राज-ऋषि पहले समस्त पृथ्वी को भोगता हुआ कामचेष्टा से प्रेरित होकर वर्ण संकरता पैदा किया करता था। उस समय से जो मोह से विधवा-स्त्री के साथ सन्तान उत्पन्न करने के लिये नियोग करता है, उसे भले लोग निन्दित समझते हैं ॥

इन तीनों श्लोकों में केवल इतना दिखाया गया है कि, वन के राज में योगिन को पशु धर्म समझा जाने लगा; क्योंकि वेन काम-

वश वर्णसंकरता उत्पन्न करता था। इसलिये वेन से पश्चात् नियोग की निन्दा होने लगी।

इन श्लोकों से यह सिद्ध होता है कि :—

(१) वेन से पूर्व नियोग पशु-धर्म नहीं समझा जाता था;

(२) वेन ने नियोग का दुरुपयोग किया; और

(३) उस समय से लोग इसे अधर्म समझने लगे।

इन्हीं श्लोकों पर ऋषि-कुमार पं० रामस्वरूप जी ने एक टिप्पणी भी दी है :—

"कलि से अन्य युग में नियोग विहित है। कलियुग में निषिद्ध है अथवा नियोग से अनियोग पक्ष श्रेष्ठ है।" इनका भी यही अभिप्राय है कि नियोग पहले धर्म समझा जाता था। दुरुपयोग तो प्रत्येक वस्तु का बुरा है। सोना मनुष्य को लाभदायक है; परन्तु जो दिन भर सोता रहे, तो हानि होगी। अब यदि कोई पुरुष दिन भर सोने वाले को देख कर "सोने" का सर्वथा निषेध करे, तो अनर्थ होगा; इसी प्रकार वेन की करतूतों को देख कर विद्वानों को केवल इस दुरुपयोग का निषेध करना चाहिये था, न कि उचित और विधियुक्त नियोग का भी!

अब एक और श्लोक है :—

"न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां
पुनर्दद्याद्विचक्षणः।

दत्त्वा पुनः प्रयच्छन्हि
प्राप्नोति पुरुषानृतम् ॥"

—मनु०; अ० ९, श्लोक ७१

इसका सीधा अर्थ यह हुआ—"किसी को कन्या देकर फिर बुद्धिमान दूसरे को न दे। देकर फिर देने से मनुष्य झूठा हो जाता है।" इसका यह तात्पर्य नहीं कि, विधवा का पुनर्विवाह न करे। यहाँ केवल इतना है कि, यदि किसी ने अपनी कन्या, एक पुरुष को विवाह दी, तो यह नहीं हो सकता कि, उससे लेकर फिर दूसरे को विवाह दे। नहीं तो मनुष्य झूठ का भागी होगा। इसमें विधवा का वर्णन नहीं। यदि ऐसा होता तो, इसी अध्याय के ७६ वें श्लोक में ऐसा न कहते कि—

"प्रोषितो धर्म कार्य्यार्थं
प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।
विद्यार्थं षट् यशोर्थं वा
कामार्थं त्रींस्तुवत्सरान् ॥"

—मनु०; अ० ९, श्लोक ७६

धर्म-कार्य्य से परदेश गये हुए पति की आठ वर्ष राह देखे, विद्या या यश के लिये गये हुए की ६ वर्ष और कामार्थ गये हुए के लिये ३ वर्ष! इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि, इसके पश्चात्

वह अन्य पति का आश्रय ले। जो लोग यह कहते हैं कि, ऐसी अवस्था में वह अपने पति के साथ चली जाय—वह अपनी गढ़न्त लिखते हैं; क्योंकि श्लोक में ऐसा नहीं है और न प्रकरण ही इसका है। यह अर्थ नारद-स्मृति अध्याय १२ से भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है :—

"अष्टौ वर्षाण्युदीक्षेत
ब्राह्मणी प्रोषितं पतिम्।
अप्रसूता तु चत्वारि
परतोऽन्यं समाश्रयेत्॥"

—नारद०; अ० १२, श्लोक ९८

अर्थः—ब्राह्मणी परदेश गये हुए पति की आठ वर्ष प्रतीक्षा करे और यदि सन्तान-रहित हो, तो चार वर्ष! इसके पश्चात् दूसरे पति का आश्रय ले। इससे पता चलता है कि, नारद-स्मृति के लेखक के हृदय में मनु का यही श्लोक होगा; क्योंकि नारद-स्मृति का अधिकांश में आधार मनुस्मृति पर ही है और इसके ८५९ श्लोकों में से ३७ श्लोक* तो तद्वत् मनुस्मृति के ही हैं।

*The Ordinances of Manu by A. C. Burnell, Introduction page—31.

अब हम तीसरे और चौथे प्रश्न को लेते हैं। मनुजी ने किसी श्लोक में पुनर्विवाहित विधवा स्त्री अथवा उस पुरुष को, जो ऐसी स्त्री से विवाह करे, जाति-च्युत या पदच्युत करने का उल्लेख नहीं किया और कर भी कैसे सकते थे, जब उन्होंने अन्य श्लोकों में पुनर्विवाह अथवा नियोग की आज्ञा दे दी है। ११ वें अध्याय में उन्होंने प्रत्येक पाप का प्रायश्चित दिया है, जिसमें छोटे-बड़े सभी प्रकार के पापों का वर्णन है; परन्तु उसमें विधवा-पुनर्विवाह का, स्त्री या पुरुष किसी की ओर से प्रायश्चित नहीं लिखा; इससे भी प्रकट होता है कि, मनुजी ऐसा करना पाप नहीं समझते थे।

अब पाँचवाँ प्रश्न रह गया अर्थात् क्या पुनर्विवाहिता विधवा की सन्तान अपने पति का दाय भाग प्राप्त कर सकती है। इस विषय में पूर्ण विचार आगे दिये जायँगे।

अब हम याज्ञवल्क्य स्मृति को लेते हैं। इसके आचार-अध्याय के ६७ वें श्लोक में लिखा है :—

"अक्षता च क्षता चैव
पुनर्भूः संस्कृता पुनः।
स्वैरिणी या पतिं हित्वा
सवर्णं कामतः श्रयेत् ॥"

इस श्लोक पर मिताक्षरा टीका इस प्रकार है :—

"अन्य पूर्वा द्विविधा पुनर्भूः स्वैरिणी चेति। पुनर्भूरपि द्विविधा क्षता चाक्षता च। तत्र क्षता संस्कारात्प्रागेव पुरुषसम्बन्धदूषिता। या पुनः कौमारे पतिं त्यक्त्वा कामतः सवर्णमाश्रयति सा स्वैरिणीति।"

यहाँ दो प्रकार की स्त्रियाँ बताई गई हैं—एक अनन्यपूर्वा और दूसरी अन्यपूर्वा। अनन्यपूर्वा वह है, जिसका विवाह-संस्कार से पहले किसी अन्य के साथ विवाह या संगमन, नहीं हुआ (अनन्य पूर्विकां दानेनोपभोगेन वा पुरुषान्तरा परिगृहीतामिति मिताक्षरा) हो। दूसरी अन्यपूर्वा अर्थात् जिनका विवाह से पूर्व अन्य पुरुष से सम्बन्ध हो गया हो। अन्यपूर्वा के दो भेद कहे—एक स्वैरिणी और दूसरी पुनर्भू, अर्थात् जिसका पुनर्विवाह हो जाता है। पुनर्भू के फिर दो भेद किये—एक क्षता जिसका पूर्व पति से संयोग हो चुका हो और दूसरी अक्षता अर्थात् जिसका संस्कार मात्र हुआ हो; परन्तु पति के साथ संयोग न हुआ हो। इन दोनों प्रकार की स्त्रियों को याज्ञवल्क्य स्मृतिकार "पुनः संस्कृता" या "पुनर्भू" बताते हैं अर्थात् वह पुनर्विवाह की अधिकारिणी हैं।

यही नहीं; किन्तु यह स्मृति नियोग की भी पक्षपातिनी है :—

"अपुत्रांगुर्वनुज्ञातो
देवरः पुत्र काम्यया।
सपिण्डो वा सगोत्रो वा
घृताभ्यक्त ऋताविंयात्॥
आगर्भसम्भवाद्गच्छेत्
पतितस्त्वन्यथा भवेत्।
अनेन विधिना जातः
क्षेत्रजोऽस्य भवेत्सुतः॥"

—याज्ञवल्क्य-स्मृति; आचाराध्याय, विवाह-प्रकरण, श्लोक ६८-६९

इस पर मिताक्षरा टिप्पणी है :—

"अपुत्राम लब्धपुत्रां पित्रादिभिः पुत्रार्थमनुज्ञातो देवरो भर्त्तुः कनीयान भ्राता सपिण्डो वा उक्तलक्षणः सगोत्रो वा। एतेषां पूर्वस्य पूर्वस्याभावे परः परः घृताभ्यक्तसर्वाङ्गः ऋतावेव वक्ष्यमाण लक्षणे ब्रुयाद् गच्छेत् आगर्भोत्पत्तेः। ऊर्ध्वं पुनर्गच्छन् अन्येन वा प्रकारेण तदा पतितो भवति। अनेन विधिनोत्पन्नः पूर्वं परिणेतुः क्षेत्रजः पुत्रो भवेत्।"

अर्थात् सन्तान-रहित स्त्री के साथ बड़ों की आज्ञा से, पुत्र की कामना से पति का छोटा भाई सपिण्ड या सगोत्र, घी पोत

कर, ऋतु-काल में समागम करे; जब तक गर्भ न रह जाय। यदि इससे अन्यथा काम करे, तो पतित हो जाय। इस प्रकार से उत्पन्न हुआ पुत्र क्षेत्रज कहलाता है।

यहाँ मिताक्षरा एक विशेषण देती है :—

"एतच्च वाग्दत्ताविषयमित्याचार्य्याः। यस्याम्रियेत कन्याया वाचा सत्ये.कृते पतिः। तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः।" इति (९। ६९) मनुस्मरणात्" ॥६८।६९।

अर्थात् मनुस्मृति के ९ वें अध्याय ६९ वें श्लोक के अनुसार यहाँ वाग्दत्ता के विषय में कहा गया है। यह मिताक्षरा की खींचा-तानी है; क्योंकि मूल श्लोक में न तो मनु की ओर सङ्केत है और न वाग्दत्ता की ओर! वाग्दत्ता कन्या के नियोग का प्रकरण भी मनुस्मृति के ६८वें श्लोक के पीछे है, जिसमें वेन राजा के समय का वृत्तान्त दिया हुआ है अर्थात् वेन राजा के समय में नियोग को गर्हित समझ कर भी वाग्दत्ता कन्या के साथ नियोग निषिद्ध नहीं किया; परन्तु इससे पूर्व ९ वें अध्याय के ५९ वें श्लोक में मनुस्मृति में—

"देवराद्वा सपिण्डाद्वा
स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया।"

अर्थात् वाग्दत्ता से इतर स्त्रियों के भी नियोग का विधान है। प्रतीत होता है कि, याज्ञवल्क्य भी ऐसा ही मानते थे।

याज्ञवल्क्य स्मृति के पश्चात् हम पाराशर-स्मृति का प्रमाण देते हैं, जो पौराणिक मतानुसार कलियुग के लिये विशेष स्मृति समझी जाती है; क्योंकि लिखा है कि :—

"कृते तु मानवा धर्मा-
स्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः॥
द्वापरे शंखलिखिताः
कलौ पाराशराः स्मृताः॥"

—पाराशर-स्मृति; अ० १ श्लोक २४-२५

अर्थात् सतयुग में मनुस्मृति, त्रेता में गौतम-स्मृति, द्वापर में शङ्खलिखित स्मृति और कलियुग में पाराशर-स्मृति प्रमाण हैं।

हमारा यह निज मत नहीं कि भिन्न-भिन्न युगों की भिन्न-भिन्न स्मृतियाँ हैं या होनी चाहिये; क्योंकि सांख्य-दर्शन में कपिलमुनि ने स्पष्ट लिखा है :—

"न कालयोग तो व्यापिनो
नित्यस्य सर्व सम्बन्धात्।"

—सांख्य०; अ० १, सूत्र १२

काल से मनुष्य के धर्म अर्थात् कर्त्तव्याकर्त्तव्य में भेद नहीं आता और मनुस्मृति का श्लोक—

"अन्ये कृतयुगे धर्मा-
स्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ।
अन्ये कलियुगे नृणां
युगह्रासानुरूपतः ॥"

—मनु०; अ० १, श्लोक ८५

अर्थात् सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के धर्म अलग-अलग हैं; इसको यदि ठीक भी माना जाय, तो भी मनुस्मृति में यह नहीं लिखा गया कि, मनुस्मृति केवल सतयुग के लिये है। वेदों के लिये भी यह कहीं उल्लेख नहीं है अर्थात् कलियुग होने से वेदों की प्रामाणता में कुछ बाधा नहीं पड़ती। फिर मनु ने यह कहीं नहीं बताया कि, सतयुग के कौन-कौन से धर्म कलि में मानने नहीं चाहिये। हमारे इस निज मत के होते हुए भी जो लोग भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न स्मृतियाँ मानते हैं, उनको पाराशर-स्मृति* पर भली प्रकार ध्यान देना योग्य है :—

*"श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस" की मुद्रित पाराशर-स्मृति (सं० १९६५), अ०, ४, श्लोक १०

"नष्टे मृते परिव्रजते
क्लीवे च पतिते पतौ ।
पंचस्वापत्सु नारीणां
पतिरन्यो विधीयते ॥"

अर्थात् पति के खोने, मरने, संन्यासी, नपुंसक या पतित होने आदि पाँच आपत्तियों में स्त्रियों को दूसरा पति करने की विधि है।

यह श्लोक इतना स्पष्ट है और पौराणिक लोगों में पाराशर-स्मृति का इतना मान्य है कि, विधवा पुनर्विवाह के विरोधा-बड़े असमञ्जस में पड़ जाते हैं। उन्हें न तो पाराशर-स्मृति को छोड़ते ही बनता है और न विधवा के पुनः संस्कार को मानते ही। मैं समझता हूँ कि, पण्डित-मण्डली ने इस श्लोक के अर्थ को पलटने में जितना चोटी से एड़ी तक पसीना बहाया है और व्याकरण साहित्य आदि की बाल की खाल निकालने में जितना प्रयत्न किया है, उतना शायद ही किसी अन्य विषयमें किया गया हो। श्रीभर्तृहरि जी ठीक कहते है कि:—

"पुरा विद्वत्तासीदुपशमविशां क्लेश हतये ।
गता कालेनासौ विषय सुख सिद्धि विषयिणाम् ॥"

अर्थात् पहले विद्या (विधवा जैसी) दुखियों के दुःख दूर करने में लगाई जाती थी; परन्तु अब काल की गति से यह विषयी लोगों की विषय पूर्त्ति के काम में आती है; अर्थात् आज कल पण्डित-मण्डली स्वयँ तो बहुत से विवाह रूप विषय-सुख को सिद्ध करती है, एक कुलीन पण्डित कई-कई विवाह करने और दहेज लेने में सङ्कोच नहीं करता; परन्तु दुखी विधवाओं के घावों पर नमक छिड़कने के लिये समस्त पाण्डित्य को व्यय कर दिया जाता है। इधर तो एक, दो, तीन, चार, आठ एवँ दश वर्ष की अवस्था की विधवाओं की चीख-पुकार जिनसे पृथ्वी फटती और आकाश थरथराता है एवँ "अपि ग्रावा रोदित्यपिदलति वज्रस्य हृदयम्" अर्थात् भ्रूण-हत्या से पापों की वृद्धि हो रही है; उधर पण्डित जी व्याकरण हाथ में लिये सूत्रों को तोड़, मरोड़ कर इस प्रयत्नमें लगे हुए हैं कि विधवाएँ बढ़ कर इनका आर्तनाद और भी अधिक हो जाय। यदि कोई पण्डित अत्यन्त भूखा होकर भोजन माँगे और आप भोजन के स्थान में उससे भोजन शब्द व्याकरण-रीत्या सिद्ध करने को कहे या उसके शब्दों में साहित्य सम्बन्धी दोष दिखावें, तो उसे कितना क्रोध होगा। यदि किसी का घर जलता हो और आप से सहायता माँगी जाय और आप सहायता न करके व्याकरण के सूत्रों की भरमार करने लगें, तो क्या परिणाम होगा ? उसी प्रकार इधर तो विधवाओं के दुःख से भारत

पीड़ित हो रहा है, उधर व्यवहार—अपण्डितों को शब्दों की सिद्धि की पड़ी हुई है। हा! कैसा दुर्भाग्य का समय है कि, अर्थों को छोड़ कर लोग केवल शब्दों के जाल में फँस गये और चावल छोड़ कर भूसी खाने लगे !!

हाँ, हम अब ऊपर दिये हुए श्लोक की भी मीमांसा करते हैं। इसमें बड़े झमेले का शब्द 'पतौ' है, जो 'पति' का सप्तम्यन्त पद (अधिकरण कारक) है। साधारणतया 'पति' का सप्तम्यन्त 'पत्यौ' बनता है और इस श्लोक में 'पतौ' का प्रयोग हुआ है। इसी पर आकाश-पाताल एक किया जा रहा है। विधवा-विवाह के विरोधियों के इस विषय में भिन्न मत हैं और उन सबका उद्देश एक है; अर्थात् येन-केन प्रकारेण विधवा-विवाह का निषेध किया जाय।

(प्रश्न) चूँकि 'पति' शब्द का सप्तम्यन्त पद 'पत्यौ' बनता है और यहाँ 'पतौ' है, अतः यह शब्द 'पतौ' नहीं किन्तु 'अपतौ है अर्थात् 'पतिते' के पश्चात् अकार का लोप हो गया है—वस्तुतः उसको यों पढ़ना चाहिये:—

"नष्टे मृते परिव्रजते क्लीवे च पतितेऽपतौ।"

(उत्तर) यह प्रश्न तो जड़ दिया; परन्तु क्या यह भी सोचा है कि 'अपति' शब्द का क्या अर्थ है और यहाँ उसकी क्या

यह दुर्बल सन्तान यहँ ! वह विधवाओं का हृदयानल !
क्यों न जलाता पाण्डु-वर्ण वाली जनता की मति का मल !

सङ्गति है। पाठकगण! क्या आपको किसी कोष में 'अपति' शब्द मिला?

(प्रश्न) 'अपति' उस पति को कहते हैं जिसका विवाह नहीं हुआ किन्तु मंगनी हुई है। देखो 'अपति' शब्द का कोष में यह अर्थ दिया हुआ है—वह जिसका पति न हो, या वह जो पति न हो।

(उत्तर) तुम्हारे कोष के बताये हुये दोनों अर्थ इस श्लोक में नहीं लग सकते। यदि 'अपति' का अर्थ करें "वह व्यक्ति जिसका 'पति' नहीं है" तो श्लोक का अर्थ ही गड़बड़ हो जायगा और यदि 'अपति' का अर्थ "वह पुरुष जो पति नहीं है" तो इसका अर्थ होगा 'अविवाहित'। फिर किसी दशा में तुम इससे 'मंगनी हुये' का अर्थ न ले सकोगे। क्या 'अब्राह्मण' का अर्थ यह है कि, जो ब्राह्मण न हो किन्तु होने वाला हो? क्या इसी प्रकार 'अदीन' 'अनाथ' आदि शब्दों में 'अ' का यही अर्थ है? यहाँ 'अपतौ' नहीं किन्तु 'पतौ' ही है और इसका अर्थ 'पत्यौ' ही है। इसके लिये जैन-मत की पुस्तकें देखो जिनमें यही श्लोक रूपान्तर के साथ लिखा हुआ है:—

पत्यौ प्रव्रजिते क्लीवे प्रनष्टे पतिते मृते।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

(प्रश्न) हम जैनियों के ग्रन्थों को स्वीकार नहीं करते वह तो नास्तिक हैं। यहाँ 'अपतौ' ही है।

(उत्तर) अच्छा जाने दो। पाराशर-माधवी तो जैनियों की पुस्तक नहीं। उसमें ४९१ पृष्ठ पर लिखा है :—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते तथा।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

यहाँ तुम 'अपति' किसी प्रकार नहीं जोड़ सकते।

(प्रश्न) यदि हम तुम्हारी बात मान भी लें तो भी यह प्रश्न शेष रह जाता है कि, स्मृतिकार ने ऐसी भूल क्यों की ? क्या उनको यह भी नहीं मालूम था कि, 'पति' के रूप सातवीं विभक्ति में किस प्रकार होते हैं ?

(उत्तर) यह बात नहीं। छन्द में कवि लोग व्याकरण के नियमों का उल्लङ्घन भी कर जाते हैं। कविवर कालिदास के काव्यों में भी यह निरङ्कुशता पाई जाती है। आर्ष प्रयोग तो अनेक अंशों में व्याकरण से भिन्न भी होता है। जब तुम पाराशर-स्मृति को आर्ष ग्रन्थ मानते हो तो इस प्रकार के आक्षेप उचित नहीं हैं। देखो पाराशर-स्मृति में 'पति' का सप्तम्यन्त पद 'पत्यौ' दोनों ही तरह आया है।

'पत्यौ' का उदाहरण :—

तद्वत्परस्त्रियः पुत्रौ द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ।
पत्यौ जीवति कुण्डस्तु मृते भर्त्तरि गोलकः॥

—पाराशर-स्मृति; अ० ४, श्लोक २३

'पतौ' का दूसरा उदाहरण:—

जारेण जनयेद्गर्भं मृते त्यक्ते गते पतौ ।

—पाराशर-स्मृ०; अ० १०, श्लोक ३१

यहाँ 'अपतौ' हो ही नहीं सकता।

(प्रश्न) अजी हम वैयाकरण हैं। जब तक किसी व्याकरण का उदाहरण न मिले, तुम जैसे असंस्कृतज्ञों की बात नहीं मान सकते।

(उत्तर) अच्छा वैयाकरण की ही साक्षी देते हैं। परन्तु, अब कभी विधवा-विवाह का विरोध मत करना। क्योंकि पक्षपाती संस्कृतज्ञ भी अविद्वानों के समान हैं। सिद्धान्त-कौमुदी में दिये हुये अष्टाध्यायी के "पतिः समास एव" । १ । ४ । ८ इस सूत्र पर तत्वबोधनी टीका इस प्रकार है:—

"पतिः समास एव ।। एवकार इष्टतोऽवधारणार्थः। अन्यथा हि 'समासे पतिरेव' इति नियमः संभाव्यते। ततश्च महाकविनेत्यादि प्रयोगो न सिध्येत्। "अनल्विधौ" 'धात्वादेः' इत्यादि ज्ञापकानुसरणे तु प्रतिपत्ति गौरवं स्यादिति भावः ।। पत्येत्यादि। नन्वेवं 'शेषोऽघय सखि पती' इत्येवोच्यताम्। किमनेन 'पतिः समास एव' इति सूत्रेणेति चेन्न। समुदायस्य पतिरूपत्वाभावेन बहुच्पूर्वकपतिशब्दस्यापि घि संज्ञा स्यात्'। ततश्च सुसखिनेत्यादिवद बहु पतिनेत्यादि प्रसज्येत। इष्यते तु बहुपत्येत्यादि। नापि

'सखिपती समास एव' इत्येव सूत्र्यतामिति शङ्क्यम् । बहु पत्येत्यादिवद्बहुसख्येत्याद्यापत्तेः इष्यते तु बहुसखिनेत्यादि । **अथ कथं "सीतायाः पतये नमः" इति "नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ । पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते" इति पराशरश्च ॥** अत्राहुः ॥ पतिरित्याख्यातः पतिः— 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिचि टिलोपे 'अच' इः "इत्यौणादिक प्रत्यये 'णेरनिटि' इति णिलोपे च, निष्पन्नोऽयं पतिशब्दः 'पतिः समास एव' इत्यत्र न गृह्यते । लाक्षणिकत्वादिति" ॥

यहाँ हमने सूत्र के ऊपर समस्त टिप्पणी उद्धृत कर दी है। इसका भाषार्थ देने की आवश्यकता नहीं क्योंकि आप स्वयं वैयाकरण हैं, व्याकरण का ही विषय है। आप समझ ही लेंगे। देखो, यहाँ न केवल 'पति' का सप्तम्यान्त 'पतौ' ही सिद्ध किया है; किन्तु चतुर्थ्यान्त 'पतये' भी सिद्ध कर दिया है और दृष्टान्त भी दैवयोग से वही दिया है जिस पर आप सन्देह करते हैं। अब तो न कहोगे ?

(प्रश्न) देखो सनातन-धर्म-महामण्डल के अपूर्व वक्ता और सञ्चालक श्री स्वामी दयानन्द जी अपने रचे हुये सत्यार्थ-विवेक ग्रन्थ में इस श्लोक पर यह सम्मति प्रकट करते हैं कि, इन पाँच आपत्तियों में स्त्रियाँ किसी के घर बैठ जाँय, परन्तु विवाह न करें क्यों कि, पुनर्विवाह करना दोष है। ऐसी स्त्रियों को जाति से च्युत भी

कर देना चाहिये। हमको पुनर्विवाह की अपेक्षा यह बात अच्छी मालूम होती है। पाराशर भी यही कहते हैं कि, अन्य पति कर ले। विवाह की आज्ञा तो वह भी नहीं देते।

(उत्तर) वाह जी वाह ! कैसी विचित्र घटना है ? यही क्यों न कह दो कि, चाहे वेद कुछ कहे और स्मृति में कुछ भी लिखा हो हम वही करेंगे जो हमारे मन में आवेगा। यदि स्वामी जी तनिक 'विधीयते' शब्द पर दृष्टि डालते तो कदापि ऐसा न लिखते। क्योंकि जाति और धर्म्म के प्रतिकूल किसी के घर बैठ जाना 'विधि' नहीं और न उसके लिये 'विधीयते' शब्द का प्रयोग हो सकता है। यदि अन्य पति की "विधि" है तो उस में दोष नहीं और यदि दोष नहीं तो जाति से च्युत करना कैसा ? क्या कोई कह सकता है कि, "चोरी करना तुम्हारे लिये 'विधि' तो है परन्तु चोरी करोगे तो दण्डनीय होगे ?" यदि विधि है तो दण्ड कैसा ? और यदि दण्ड है तो विधि कैसी ? यदि जाति से बहिष्कृत ही होना है तो इस श्लोक की आवश्यकता क्या ? सहस्रों स्त्री-पुरुष प्रति दिन नियमोल्लङ्घन करते हैं। बहुत सी स्त्रियाँ दूसरों के घर में बैठ जाया करती हैं। क्या वह किसी से यह पूछती फिरती हैं कि, पाराशर-स्मृति में हमारे अन्य के घर बैठने की विधि दी है या नहीं ?

दूसरी बात यह है कि, 'पतिरन्यो' अर्थात् "दूसरा पति" पड़ा हुआ है। 'पति' बिना विधियुक्त संस्कार के नहीं हो सकता।

'पति और पत्नी' भाव उसी समय होता है जब विधि के अनुकूल संस्कार किया जाय। अतः यहाँ 'पति' और 'विधीयते' दो शब्द यही प्रकाशित करते हैं कि, पाराशर-स्मृति पुनर्विवाह के पक्ष में है और स्वामी दयानन्द की सत्यार्थ-विवेक वाली कल्पना असङ्गत है।

तीसरी बात यह है कि, पाँच आपत्तियों में से एक आपत्ति 'पतिते पतौ' अर्थात् "पति का पतित" होना है। इससे भी प्रकट होता है कि, यदि किसी स्त्री को पतित पति से घृणा होगी तो वह कदापि किसी के घर न बैठेगी। एक पतित काम से दूसरा पतित काम करके घृणा प्रकट नहीं की जा सकती। इससे भी हमारा ही मत सिद्ध है न कि सत्यार्थ-विवेक का।

बिना संस्कार के काम-चेष्टामात्र से किसी को घर में बिठाने वाले को 'पति' नहीं किन्तु 'जार' कहते हैं। जैसा कि, इसी स्मृति के १०वें अध्याय के ३१वें श्लोक में आया है:—

जारेणजनयेद्गर्भं मृते त्यक्ते गते पतौ।
तां त्यजेदपरेराष्ट्रे पतितां पापकारिणीम्॥

इसी लिये ऐसी स्त्री को 'पतिता' और 'पापकारिणी' लिखा है।

(प्रश्न) पाराशर-स्मृति के इस श्लोक में तो अवश्य पुनर्विवाह संस्कार की विधि है, परन्तु इस के आगे दो निषेध-वाचक श्लोक

भी तो हैं। इस से मालूम होता है कि, पाराशर जी वस्तुतः विधवा पुनः संस्कार के विरुद्ध हैं:—

मृते भर्त्तरि या नारी ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थिता।
सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः॥
तिस्रः कोट्योऽर्ध कोटी च यानि लोमानि मानवे।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्त्तारं याऽनुगच्छति॥

—पाराशर-स्मृति; अ० ४, श्लोक ३१, ३२

अर्थ:—पति के मरने पर जो स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करती हैं वह मरने पर ब्रह्मचारियों के समान स्वर्ग को प्राप्त करती हैं।३१।

और जो पति के साथ जाती हैं (अर्थात् सती हो जाती हैं) वह साढ़े तीन करोड़ मनुष्य के शरीर में जो बाल हैं उतने वर्ष पर्य्यन्त स्वर्ग में निवास करती हैं। ३२।

(उत्तर) इस से विधवा-विवाह का निषेध कैसे हुआ? वहाँ उन स्त्रियों का तारतम्य दिखलाया है जो पुनर्विवाह करतीं या ब्रह्मचारिणी रहती हैं। जो पुरुष आजन्म ब्रह्मचारी रह कर संन्यासी हो जाता है वह उस पुरुष की अपेक्षा उत्तम है जो विवाह करके "यौवने विषयैषिणाम्" अर्थात् गृहस्थियों की कोटि में सम्मिलित होता है। परन्तु, इस का यह तात्पर्य्य नहीं कि, विवाह करना निषिद्ध है। इसी प्रकार विधवा-विवाह के पक्षपाती नहीं कहते कि, विधवाओं को जबरदस्ती पकड़-पकड़ कर विवाह कर

दो। यदि वह ब्रह्मचारिणी रह सकती है तो इससे उत्तम क्या बात है ? हम तो कहते हैं कि, यदि कुमारियाँ भी इन्द्रिय-निग्रह कर सकें और आजन्म ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन कर सकें तो अत्युत्तम बात हो। परन्तु, जिनके बुरे कर्म्म करने और गर्भपात कराने की सम्भावना है और जिनमें इन्द्रियों के वश में करने की अपूर्व शक्ति नहीं उन को ताले में बन्द करके रोकना और बलात्कार पुनर्विवाह से वञ्चित् करना सर्वथा अन्याय है। यों तो विधि में भी तारतम्य होता है; परन्तु विधि का अर्थ यह है कि, अमुक सीमा तक कार्य्य करने में मनुष्य जाति से बहिष्कृत या दण्डनीय नहीं समझा जाता। कल्पना कीजिये कि, दान देना है। एक वह पुरुष है जो दूसरों के लिये सर्वस्व दान कर देता है और दूसरा वह है जो अपनी आय का एक छोटा-सा भाग ही दान करता है। तीसरा कुछ भी दान नहीं देता। इन तीनों में से कोई भी जाति-बहिष्कृत या दण्डनीय नहीं ठहराया जा सकता यद्यपि तीसरे की अपेक्षा दूसरा और दूसरे की अपेक्षा पहला अत्युत्तम है। इसी प्रकार वह स्त्रियाँ धन्य हैं जो ब्रह्मचारिणी हैं और वेश्या से तो वह स्त्रियाँ भी श्रेष्ठ हैं जो विधि के अनुसार विषयों को भोगती हैं इससे अधिक नहीं।

(प्रश्न) पाराशर-स्मृति में विधवा-विवाह-विधायक यह श्लोक किसी विधवा-विवाह-प्रचारक ने मिला दिया है। मूल स्मृति में ऐसा न था और कई स्मृतियों में भी नहीं मिलता।

(उत्तर) देखो हम ने यह श्लोक उस पुस्तक से उद्धृत किया है जो वेङ्कटेश्वर जैसे कट्टर प्रेस में छपी हुई है और जहाँ नये विचारों का स्पर्श तक नहीं हो सकता और जितनी पाराशर-स्मृतियाँ जहाँ-कहीं मिलती हैं उन सब में यह श्लोक इसी प्रकार मिलता है। इसके अतिरिक्त वर्त्तमान काल में सब से पहले विधवा-विवाह का प्रश्न बङ्गाल के प्रसिद्ध विद्वान् और सुधारक श्री० पं० ईश्वरचन्द्र जी विद्यासागर ने उठाया था। उस समय समस्त पण्डित मण्डली ने इसका विरोध किया था तब से लेकर आज तक विधवा-विवाह के विरोधियों का ही आधिक्य है और उन्हीं के हाथ में प्रायः संस्कृत के प्रसिद्ध छापेखाने और संस्कृत के पुस्तकों के मुद्रण और संस्करण रहे हैं। विधवा-विवाह के पक्षपाती तो अपने विपक्षियों की छपाई हुई पुस्तकों का ही आश्रय लेते रहे हैं। आज-कल अवश्य देखा जाता है कि, जो श्लोक विधवा-विवाह के अनुकूल पूर्वकालिक ग्रन्थों में पाये जाते थे वह आज-कल की छपी हुई कतिपय प्रतियों में नहीं मिलते। इससे सम्भव जान पड़ता है कि, यथा अवसर विधवा-विवाह के विरोधी अपना हस्तक्षेप करते रहते हैं। यहाँ 'उलटा चोर कोतवाल को डाँटे' की लोकोक्ति चरितार्थ होती है। हम को ज्ञात हुआ है कि, कुछ प्रेसों का विचार है कि, पुराणों से वह श्लोक उड़ा दिये जाँय जिन पर आर्य्य-समाज के ग्रन्थों में आक्षेप किया गया है। इस प्रकार आर्य्य-सामाजिकों को झूठा सिद्ध करने का अच्छा अवसर हाथ लग जायगा।

सम्भव है कि, किसी भद्र पुरुष ने इस विचार को कार्य्यरूप में भी परिणत कर लिया हो। जो आक्षेप विधवा-विवाह के पक्षपातियों पर किया जाता है वह इसके विरोधियों पर भी लग सकता है। अर्थात् सम्भव है कि, उन्होंने ही किसी समय पर और विशेष कर उस समय में जब कि, विधवा-विवाह की प्रथा सर्वथा उठ गई और एक द्विज भी इसके पक्ष में न रहा, बीच-बीच में ऐसे श्लोक मिला दिये जिनसे नियोग और विधवा पुनः संस्कार का निषेध पाया जाय। यही कारण है कि, जहाँ किसी ग्रन्थ में दो श्लोक विधि के मिलते हैं वहाँ उन्हीं के बीच में एक श्लोक निषेध का पड़ा हुआ है।

नारद-स्मृति भी विधवा पुनः संस्कार की आज्ञा देती है। वहाँ भी आठ प्रकार के विवाह गिनाते हुए पुनर्भू स्त्रियों के तीन भेद किये हैं:—

(१) कन्यैवाक्षतयोनिर्वा पाणिग्रहणदूषिता।
पुनर्भूः प्रथमा प्रोक्ता पुनः संस्कारमर्हति॥

—नारद०; अ० १२, श्लोक ४६

अर्थ:—कन्या हो या अक्षतयोनि बाल-विधवा हो जिस का केवल पाणि-ग्रहण ही हुआ हो उसको पहिली पुनर्भू कहते हैं और वह फिर संस्कार कराने (अर्थात् पुनर्विवाह) की अधिकारिणी है।

(२) कौमारं पतिमुत्सृज्य यात्वन्यं पुरुषं श्रिता ।
पुनः पत्युर्गृहमियात् सा द्वितीया प्रकीर्त्तिता ॥

—नारद०; अ० १२, श्लोक ४७

अर्थ:—बालक पति को छोड़कर जो स्त्री अन्य का आश्रय ले और फिर पति के घर आ जाय उसे दूसरी पुनर्भू कहते हैं ।

(३) असत्सु देवरेषु स्त्री बान्धवैर्या प्रदीयते ।
सवर्णाय सपिण्डाय सा तृतीया प्रकीर्त्तिता ॥

—नारद०; अ० १२, श्लोक ४८

जिसके पति के छोटे भाई न हों और जो सम्बन्धियों द्वारा सवर्ण या सपिण्ड पुरुष को दे दी जावे वह तीसरी पुनर्भू कहलाती है ।

इनमें पहिला श्लोक विधवा पुनर्विवाह के और तीसरा नियोग के पक्ष में है ।

नियोग के पक्ष में अन्य श्लोक भी हैं जैसे :—

अनुत्पन्नप्रजायास्तु पतिः प्रेयाद्यदि स्त्रियाः ।
नियुक्ता गुरुभिर्गच्छेद् देवरं पुत्रकाम्यया ॥

—नारद०; अ० १२, श्लोक ८०*

अर्थ:—यदि किसी ऐसी स्त्री का पति मर जाय जिसके कोई

* नारद-स्मृति Published by Asiatic Society Bengal, New Series No. 542. 1885 (भारती-भवन-पुस्तकालय, प्रयाग)

सन्तान उत्पन्न नहीं हुई तो बड़ों की आज्ञानुसार वह पुत्र की कामना से देवर के साथ नियोग करले।

'नष्टे मृते' इति श्लोक पाराशर-स्मृति का नारद-स्मृति में भी ज्यों का त्यों आया है; (अ० १२, श्लो० ९७)।

वशिष्ठ-स्मृति के कुछ प्रमाण आगे दिये जाते हैं:—

या च क्लीवं पतितमुन्मत्तं वा भर्त्तारमुत्सृज्यान्यं पतिं विन्दते मृते वा सा पुनर्भूर्भवति।

—वशिष्ठ०; अ० १७

अर्थ:—जो स्त्री नपुंसक, पतित, पागल या मरे पति को छोड़ अन्य पति से विवाह करती है वह पुनर्भू कहलाती है।

नोट—याद रखना चाहिये कि, स्वैरिणी स्त्री को पुनर्भू नहीं कहते।

आगे इसी स्मृति के इसी अध्याय में और स्पष्ट है:—

पाणिग्रहे मृते बाला केवलं मंत्र संस्कृता।
सा चेदक्षत योनिः स्यात् पुनःसंस्कारमर्हति॥

अर्थ:—पाणि-ग्रहण होते ही पति के मरने पर यदि बाला (बाल स्त्री) का केवल मन्त्रों से संस्कारमात्र हुआ हो और वह अक्षत योनि अर्थात् पति के साथ सम्भोग को प्राप्त न हुई हो तो उसका फिर विवाह होना योग्य है।

इसी श्लोक के ऊपर दो और श्लोक हैं जो कतिपय विधवा-विवाह-विधायक पुस्तकों में इस प्रकार लिखे हुये हैं:—

अद्भिर्वाचा च दत्तानां म्रियेतार्थो वरो यदि ।
कृतमंत्रोपनीतापि (१) कुमारी पितुरेवसा ॥
यावच्चेदाहृता कन्या मंत्रैरपि सुसंस्कृता । (२)
अन्यस्मै विधिवद्देया, यथा कन्या तथैव सा ॥

परन्तु, आज-कल की छपी हुई स्मृतियों में इस प्रकार पाठ-भेद है:—

न च मंत्रोपनीता स्यात् (१)
और
मंत्रैर्यदि न संस्कृता । (२)

परन्तु, "पाणिग्रहे मृते बाला" इस श्लोक में कोई भी पाठ-भेद नहीं है । इस में आज-कल की स्मृतियों में भी "मन्त्रसंस्कृता" और "साचेदक्षतयोनिः" ही है । स्मृति के अनुसार "मन्त्रसंस्कृता अक्षत योनि" कन्या का विवाह विधियुक्त है । ऊपर जो "न च मन्त्रोपनीता" और "मंत्रैर्यदि न संस्कृता" लिखा है यदि इसी प्रकार शुद्ध माना जाय तो परस्पर विरोध होगा अर्थात् कहीं मन्त्र संस्कृता को पुनर्विवाह की विधि और कहीं निषेध । इससे सिद्ध होता है कि, किसी समय विधवा-विवाह के विरोधियों ने दो श्लोकों में भेद कर दिया और तीसरे में या तो भूल गये या किसी अन्य

कारण से न कर सके। चूंकि यह श्लोक पास-पास ही हैं अतः परस्पर अविरोध करने के लिये केवल इसी बात की सम्भावना होती है। अन्यथा इसका कुछ निश्चित अर्थ ही न होगा। यद्यपि यह भी कहा जाता है कि, विधवा-विवाह के प्रचारकों ने अपनी पुस्तकों में अशुद्ध उद्धृत कर दिया है तथापि यदि ऐसा मानें तो मूल स्मृति में परस्पर विरोध पड़ेगा और विधवा-विवाह के प्रचारकों के पास जब वशिष्ठ-स्मृति का एक स्पष्ट श्लोक था तो उसी अर्थ का दूसरा श्लोक गढ़ने की आवश्यकता भी क्या थी ?

इसके अतिरिक्त "वशिष्ठ धर्मशास्त्रम्" के पृष्ठ ५१ पर लिखा है*:—

"प्रेतपत्नी षण्मासान् व्रतचारिण्यक्षारलवणं भुञ्जानाधः शयीत ॥ ५५ ॥

ऊर्ध्वं षड्भ्यो मासेभ्यः स्नात्वा श्राद्धं च पत्ये दत्त्वा विद्याकर्म गुरुयोनिसम्बन्धान् संनिपात्यपिता भ्राता वा नियोगं कारयेत्" ॥ ५६ ॥ (अध्याय १७)

अर्थ:—मरे हुये पुरुष की स्त्री ६ महीने व्रत रक्खे,

---

* जिसको Rev. Alois Auton Fahrer Ph. D. Professor of Sanskrit St. Xavier's College, Bombay ने edit किया है और जो Government Central Book Depot., Bombay से १८८३ में छपा है।

नमक-रहित वस्तुओं को खावे और जमीन पर सोवे । ५५ । और छः मास नहा कर, पति के लिये श्राद्ध देकर विद्या, कर्म, गुरु, गोत्र आदि सम्बन्ध को विचार के पिता या भाई इसका नियोग कर दे । ५६ ।

बौधायन-धर्म्मशास्त्र के पृष्ठ १०१, चतुर्थ प्रश्न, प्रथम अध्याय में इस प्रकार लिखा है *:—

बलाच्चेत् प्रहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता ।
अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा ॥ १५ ॥
निसृष्टायां हुते वापि यस्यै भर्त्ता म्रियेत सः ।
सा चेदक्षतयोनिः स्याद्ग गतप्रत्यागता सती ।
पौनर्भवेन विधिना पुनः संस्कारमर्हति ॥ १६ ॥

अर्थ:—यदि किसी कन्या को जबरदस्ती ले जाया गया हो और यदि मन्त्रों से उसका संस्कार न हुआ हो तो विधि के अनुसार उसका दूसरे के साथ विवाह कर दे । क्योंकि जैसी कन्या वैसी वह ॥ १५ ॥

और जिसका विवाह-संस्कार हो गया हो और पति मर जावे और वह अक्षत योनि हो, चाहे आई-गई भी हो तो भी, पुनर्विवाह की विधि से उसका संस्कार होना चाहिये ॥१६॥

---

* Edited by E. Hulzsch Ph. D. Vienna and Printed at Leipzig 1884.

यहाँ दो प्रकार की कन्याओं के विषय में पुनर्विवाह की आज्ञा है :—

(१) वह कन्या जिस को कोई छीन ले गया हो और बिना विवाह के ही उस का धर्म्म-भ्रष्ट कर दिया हो।

(२) वह कन्या जो अक्षत योनि तो है, परन्तु विवाह भी होगया है और पति के घर में आई-गई भी है।

अब हम लघुशातातप स्मृति को लेते हैं जो "आनन्दाश्रम प्रेस" द्वारा १९०५ ई० की छपी हुई है। (पृ० १२९)

उद्वाहिता च या कन्या न संप्राप्ता च मैथुनम्।
भर्त्तारं पुनरभ्येति यथा कन्या तथैव सा॥
समुद्धृत्य तु तां कन्यां साचेदक्षतयोनिका।
कुल शीलवते दद्यादिति शातातपोऽब्रवीत्॥

अर्थः—जिस कन्या का विवाह होगया हो परन्तु जो मैथुन को प्राप्त न हुई हो उस का दूसरा पति हो सकता है क्योंकि जैसी कन्या वैसी वह।

उस कन्या को लेकर यदि वह अक्षत योनि हो, कुल और शील वाले पुरुष को देवे। ऐसा शातातप का कथन है।

सातवाँ अध्याय

पुराणों की साक्षी

ल-विधवा-विवाह का विरोध करने वालों में अधिक संख्या उन लोगों की है जो पुराणों पर अपना विश्वास रखते हैं। उनका कहना है कि, यद्यपि वेद में विधवा-विवाह की आज्ञा है तथापि पुराणों से विरुद्ध होने के कारण ऐसा करना ठीक नहीं क्योंकि इस काल में पुराणों का ही प्रचार होना चाहिये।

ऐसे पुरुषों से हमारी विनय है कि, पुराण भी सर्वथा विधवा-विवाह का खण्डन नहीं करते।

हम यहाँ पद्मपुराण भूमि-खण्ड; अध्याय ८५ से कुछ श्लोक उद्धृत करते हैं:—

उज्ज्वल उवाच

प्लक्षद्वीपे महाराज ! आसीत्पुण्यमतिः सदा।
दिवोदासेति विख्यातः सत्यधर्मपरायणः ॥ ५० ॥

तस्यापत्यं समुत्पन्नं नारीणामुत्तमं तदा ।
गुणरूपसमायुक्ता सुशीला चारुमङ्गला ॥
दिव्यादेवीति विख्याता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ५१ ॥
पित्रा विलोकिता सा तु, रूपलावण्यसंयुता ।
प्रथमे वयसि दिव्या वर्त्तते चारुमङ्गला ॥ ५२ ॥
स तां दृष्ट्वा दिवोदासो दिव्यादेवीं सुतां तदा ।
कस्मै प्रदीयते कन्या सुवराय महात्मने ॥ ५३ ॥
इति चिन्तापरो भूत्वा समालोच्य नृपोत्तमः ।
रूप देशस्य राजानं समालोक्य महीपतिः ॥ ५४ ॥
चित्रसेनं महात्मानं समाहूय नरोत्तमः ।
कन्यां ददौ महात्माऽसौ चित्रसेनाय धीमते ॥ ५५ ॥
तस्या विवाहयज्ञस्य संप्राप्ते समये नृप ।
मृतोऽसौ चित्रसेनस्तु कालधर्मेण वै किल ॥ ५६ ॥
दिवोदासस्तु धर्मात्मा चिन्तयामास भूपतिः ।
ब्राह्मणान्स समाहूय पप्रच्छ नृपनन्दनः ॥ ५७ ॥
अस्या विवाहकाले तु चित्रसेनो दिवंगतः ।
अस्यास्तु कीदृशं कर्म भविष्यं तद्ब्रुवन्तु मे ॥ ५८ ॥

ब्राह्मणा उचु

विवाहो जायते राजन् कन्यायास्तु विधानतः ।
पतिर्मृत्युं प्रयात्यस्या नोचेत्संगं करोति च ॥ ५९ ॥

महाव्याध्यभिभूतश्च त्यागं कृत्वा प्रयाति वा ।
प्रव्राजितो भवेद्राजन् धर्मशास्त्रेषु दृश्यते ॥ ६० ॥
उद्वाहितायां कन्यायामुद्वाहः क्रियते बुधैः ।
न स्याद्रजस्वला यावदन्येष्वपि विधीयते ॥
विवाहं तु विधानेन पिता कुर्य्यान्न संशयः ॥ ६१ ॥
एवं राजा समादिष्टो धर्मशास्त्रार्थकोविदैः ।
विवाहार्थं समायात इन्द्रप्रस्थं द्विजोत्तमैः ॥ ६२ ॥
दिवोदासः सुधर्मात्मा द्विजानां च निदेशतः ।
विवाहार्थं महाराज उद्यमं कृतवांस्तदा ॥ ६३ ॥
पुनर्दत्ता तदा तेन दिव्यादेवी द्विजोत्तमाः ।
रूपसेनाय पुण्याय तस्मै राज्ञे महात्मने ॥
मृत्युधर्मं गतो राजा विवाहस्य समीपतः ॥ ६४ ॥
यदा यदा महाभागो दिव्या देव्याश्च भूमिपः ।
चक्रे विवाहं तद्‌ भर्त्ता म्रियते लग्नकालतः ॥ ६५ ॥
एकविंशतिभर्त्तारः काले काले मृतास्तदा ।
ततो राजा महादुखी संजातः ख्यातविक्रमः ॥ ६६ ॥
समालोच्य समाहूय मंत्रिभिः सह निश्चितः ।
स्वयंवरे तदा बुद्धिं चकार पृथिवीपतिः ॥ ६७ ॥
प्लक्षद्वीपस्य राजानः समाहूता महात्मना ।
स्वयंवरार्थमाहूतास्तथा ते धर्मतत्पराः ॥ ६८ ॥

तस्यास्तु रूपं संश्रुत्य राजानो मृत्युनोदिताः ।
संग्रामं चक्रिरे मूढास्ते मृताः समराङ्गणे ॥
एवं तात क्षयो जातः क्षत्रियाणां महात्मनाम् ॥ ६९ ॥
दिव्यादेवी सुदुःखार्त्ता गता साऽचल कन्दरम् ।
रुरोद करुणं बाला दिव्यादेवी मनस्विनी ॥ ७० ॥

अर्थः—उज्ज्वल ने कहा—

"प्लक्ष द्वीप में सदा पुण्यमतिः, सच्चे धर्म में पयराण प्रसिद्ध महाराज दिवोदास रहता था। उसके उसी समय स्त्रियों में उत्तम, गुण और रूपयुक्त, सुशील, चारु, मङ्गल, संसार में विख्यात, रूप वाली 'दिव्यादेवी' नामक कन्या हुई। पिता ने जब देखा कि, यह पूर्ण युवती रूप और लावण्य से युक्त और सुन्दर हो गई तब वह यह सोच कर कि, यह कन्या किसे विवाही जाय, चिन्ता करने लगा और रूप देश के राजा चित्रसेन को देख कर उसी बुद्धिमान के साथ दिव्यादेवी का विवाह कर दिया। उसके विवाह-यज्ञ के प्राप्त होने के समय काल-धर्म से प्रेरित होकर चित्रसेन मर गया। तब धर्मात्मा दिवोदास ने ब्राह्मणों को बुला कर उनसे पूछा कि, "इसके विवाह के समय चित्रसेन मर गया अब आप बतलाइये कि मुझे क्या करना चाहिये।"

ब्राह्मणों ने उत्तर दियाः—"हे राजन्! कन्या का विवाह तो विधि के अनुकूल हो सकता है यदि उसका पति मर जाय

और पति के साथ उसका सङ्ग न हुआ हो, या पति को महा रोग लग गया हो, या पति उसे छोड़ कर चला जाय, या संन्यासी हो जाय। ऐसा धर्मशास्त्र में लिखा हुआ है। विवाहिता कन्या का बुद्धिमान लोग फिर दूसरों के साथ विवाह कर देते हैं जब तक वह रजस्वला नहीं हुई। विधि-अनुकूल पिता उसका विवाह कर दे। इसमें कोई संशय नहीं।"

जब धर्मशास्त्र के जानने वाले पण्डितों ने राजा को ऐसा उपदेश किया तो धर्मात्मा दिवोदास ने उसके विवाह का फिर उद्यम किया और राजा रूपसेन के साथ उसका विवाह कर दिया। परन्तु, विवाह के समीप ही वह राजा (रूपसेन) भी मर गया। जब जब राजा दिव्यादेवी का विवाह करता तब तब समय पर ही पति मर जाता। इस प्रकार जब उसके इक्कीस पति मर गये तो राजा बहुत दु:खी हुआ। वह मन्त्रियों को बुला कर फिर स्वयंवर की तैयारियाँ करने लगा और उसने प्लक्षद्वीप के सब राजाओं को निमन्त्रण दिया और जब धर्मात्मा राजा स्वयंवर के लिये बुलाये गये, तब उस लड़की के सौन्दर्य्य को सुनकर मृत्यु से प्रेरित हुये राजा लोग आपस में लड़ पड़े और रण-क्षेत्र में ही मर गये। इस प्रकार हे तात ! महात्मा क्षत्रियों का सर्वनाश हो गया और दुखिया दिव्यादेवी 'अचल कन्दरा' को चली गई और वहाँ रोने-पीटने लगी।"

हम ने यहाँ पद्म-पुराण से दिव्यादेवी का पूरा वृत्तान्त उद्धृत

कर दिया है जिससे हमारे पाठकगण समस्त घटना पर पूर्णतया विचार कर सकें और किसी को यह कहने का साहस न हो कि, हम ने प्रकरण पर ध्यान नहीं दिया। यहाँ इतनी बातों पर ध्यान देना चाहिये:—

(१) दिवोदास ने दिव्यादेवी का २१ बार 'विवाहं चक्रे' विवाह किया।

(२) और उसके २१ पति मर गये।

(३) दिवोदास ने जब ब्राह्मणों से पहले विवाह के पश्चात् सम्मति माँगी तो उन्होंने निम्न बातें कहीं:—(अ) यदि कन्या का पति मर जाय और उसका सहवास न हुआ हो,

(आ) यदि पति महारोगी हो,

(इ) यदि पति छोड़ कर चला जाय,

(ई) यदि पति संन्यासी हो जाय तो इन चारों दशाओं में "उद्वाहितायां कन्यायां" विवाहित कन्या का विवाह हो सकता है। यहाँ चारों दशायें वही हैं जो पाराशर-स्मृति में दी हुई हैं। अर्थात्; नष्टे, मृते, प्रव्रजिते, क्लीवे, पाँचवीं दशा अर्थात् 'पतिते' का इसमें उल्लेख नहीं है। क्लीवत्व और महारोग समान हैं।

(४) दिवोदास शूद्र नहीं महात्मा और गुणवान् क्षत्रिय था। इससे पद्मपुराण के अनुसार विवाह निषिद्ध नहीं है।

महाभारत में तो विधवा-विवाह तथा नियोग के अनेकों

उदाहरण मिलते हैं। भीष्म-पर्व के अध्याय ९१ में धनुर्धारी अर्जुन के पुनर्विवाह का वर्णन है :—

> अर्जुनस्यात्मजः श्रीमानिरावान्नाम वीर्य्यवान्।
> सुतायां नागराजस्य जातः पार्थेन धीमता ॥ ७ ॥
> ऐरावतेन सा दत्ता ह्यनपत्या महात्मना।
> पत्यौ हते सुपर्णेन कृपणा दीनचेतना ॥ ८ ॥

अर्थः—नागराज की कन्या से अर्जुन का एक बलवान लड़का उत्पन्न हुआ जिसका नाम इरावान् था।

जब सुपर्ण ऐरावत् ने उस (नागराज की कन्या) के पति को मार डाला तो उस बुद्धिमान राजा (नागराज) ने अपनी दुखिया कन्या का विवाह अर्जुन के साथ कर दिया।

आठवाँ अध्याय

अङ्गरेज़ी क़ानून की आज्ञा
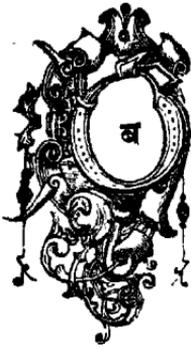
हुत से विधवा-विवाह के विरोधी लोगों को यह कह कर बहका देते हैं कि, यदि तुम विधवा का विवाह करोगे तो तुमको सज़ा हो जायगी और विधवा की सन्तान भी हरामी या नाजायज़ कहलायेगी। हमने स्वयं देखा है कि, जब एक ग्राम के भद्र-पुरुष एक विधवा-विवाह में सम्मिलित हुये तो उनको यह कह कर डराया गया कि, तुमको कानून के अनुसार छः छः महीने की सजा होगी। उस समय उन अनभिज्ञ मनुष्यों को बड़ी घबराहट हुई।

इसलिये हम यहाँ सरकारी क़ानून को भी उद्धृत किये देते हैं जिससे सर्वसाधारण को इस विषय में अपने अधिकार और कर्त्तव्य ज्ञात हो जाँय।

जिस समय श्रीयुत पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बङ्गाल प्रान्त में विधवा-पुनर्विवाह का प्रश्न उठाया उस समय यद्यपि विधवा-

विवाह को अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई तथापि सबसे बड़ा काम जो उक्त पण्डित जी ने किया और जिसके लिये हम सबको उनका कृतज्ञ होना चाहिये, यह था कि, बृटिश गवर्नमेन्ट में आन्दोलन करके हिन्दू-लॉ (Hindu law) में इस प्रकार का परिवर्त्तन करा दिया कि, विधवा-विवाह जायज और नियमानुकूल निश्चित होगया।

यह क़ानून २५ जुलाई, सन् १८५६ ई० को पास हुआ था और इसका नाम "The Hindu Widows' Remarriage Act. 1856" अर्थात्; "हिन्दू-विधवाओं के पुनर्विवाह का निश्चय १८५६ है।" इसकी मूल भाषा यह है:—

AN ACT TO REMOVE ALL LEGAL OBSTACLES TO THE MARRIAGE OF HINDU WIDOWS

Preamble.

Whereas it is known that by the law as administered in the Civil Courts established in the territories in the possession and under the Government of the East India Company, Hindu Widows with certain exceptions are held to be, by reason of their having been once married, incapable of contracting a second valid marriage and the offspring of such widows by any second marriage are held to be illegetimate and incapable of inheriting property, and

whereas many Hindus believe that this imputed legal incapacity, although it is in accordance with established custom, is not in accordance with a true interpretation of the precepts of their religion, and desire that the Civil Law administered by the courts of Justice shall no longer prevent those Hindus who may be so minded, from adopting different customs, in accordance with the dictates of their own conscience; and whereas it is just to relieve all such Hindus from this legal incapacity of which they complain, and the removal of all legal obstacles to the marriage of Hindu widows will tend to the promotion of good morals, and to the public welfare. It is enacted as follows:—

Marriage of Hindu widows legalized

1. No marriage contracted between Hindus (a) shall be invalid, and the issue (b) of no such marriage shall be illegitimate, by reason of the woman

Case law—

(a) Act applies only to Hindu widows' remarriage as such, 19c. 289; enables widows, unable to remarry previously, to remarry, 11A, 330; and does not apply to cases in which remarriage is allowed by custom of caste, 11 B. 119;

(b) Of a marriage under the Act can inherit, 4 P.R. 1905; 61 P.R. 1905;

having been previously married or betrothed to another person who was dead at the time of such marriage, any custom and any interpretation of Hindu law to the contrary not withstanding.

Rights of widow in deceased husband's property to cease on her remarriage.

2. (a) All rights and interests which any widow may have in her deceased husband's property by way of maintenance, or by inheritance to her husband or to his lineal successors, or by virtue of any will or testamentary disposition conferring upon her, without express permission to remarry, only a limited interest in such property, with no power of alienating the same, shall upon her remarriage cease and determine as if she has then died; and the next heirs of her deceased husband, or other

(a) S. 2 divests her of the right only if she marries after succeeding to the estate. 26 B.388=4Bom. L.R. 73 ; 29 B. 91. F.B.=6 Bomb. L.R. 779 ; transfer by a Hindu---for legal necessity before her remarriage is valid, 8 C. L. J. 542 ;

(b) Section applies only to widows who could not have remarried prior to the Act, 11 A. 930 ; a---of a caste in which remarriage is allowed, e. g., the Kurmi, can remain in possession of her husband's estate till her death, 20A. 476 ; see also 29 A. 122 ; she does not lose her right to maintenance against her husband's estate, 31 A. 161 ; she forfeits estate inherited, 22c. 589 ; from her son, 22 B. 321 (F. B.)

persons entitled to the property on her death, shall thereupon succeed to the same.

Guardianship of children of deceased husband on the remarriage of his widow.

3. On the remarriage of a Hindu widow, if neither the widow nor any other person has been expressly constituted by the will or testamentary disposition of the deceased husband the guardian of his children, the father or paternal grandfather or the mother or paternal grand-mother of the deceased husband, may petition the highest Court having original jurisdiction in civil cases in the place where the deceased husband was domiciled at the time of his death for the appointment of some proper person to be guardian of the said children, and thereupon it shall be lawful for the said Court, if it shall think fit, to appoint such guardian, who when appointed, shall be entitled to have the care and custody of the said children, or of any of them during their minority, in the place of their mother, and in making such appointment the Court shall be guided, so for as may be by the laws and rules in force, touching the

guardianship of children (a) who have neither father nor mother.

Provided that when the said children have not property of their own sufficient for their support and proper education whilst minors, no such appointment shall be made otherwise then with the consent of the mother (b) unless the proposed guardian shall have given security for the support and proper education of the children whilst minors.

Nothing in this Act to render any childless widow capable of inheriting.

4. Nothing in this Act contained shall be construed to render any widow who, at the time of the death of any person leaving any property is a childless widow, capable of inheriting the whole or any share of such property, if before the passing of this Act, she would have been incapable of inheriting the same by reason of her being a childless widow.

Case law—

(a) Meaning of---4A 195 ; (b) who has no right to give her son in adoption, 24 B 89.

5. Except as in the three preceding sections is provided, a widow shall not, by reason of her remarriage forfeit (a) any property or any right to which she would otherwise be entitled, and every widow who has remarried shall have the same rights of inheritance as she would have had, had such marriage been her first marriage.

Saving of rights of widow marrying except as provided in Sections 2 and 4.

6. Whatever words spoken, ceremonies performed or engagements made on the marriage of a Hindu female who has not been previously married, are sufficient to constitute a valid marriage, shall have the same effect if spoken, performed or made on the marriage of a Hindu widow, and on marriage shall be declared invalid on the ground that such words, ceremonies or engagements are inapplicable to the case of a widow.

Ceremonies constituting valid marriage to have same effect on widows' marriage.

(a) Remarriage does not prevent such a widow from inheriting her son's property, 2 B.L.R. A. C. 189---11 W. R. 82; a remarried Marwar---cannot claim her first husband's property, 1 M. 226; right to give in adoption is not a right reserved under the Section, 24 B 89 Contra; 33 B. 107---11 Bom. L. R. 1134.

7. If the widow remarrying is a minor, whose marriage has not been consummated, she shall not remarry without the consent of her father, or if she has no father, of her paternal grand-father, or if she has no such grand-father, of her mother, or failing also brothers, of her next male relative.

Consent to remarriage of minor widows.

8. All persons knowingly abetting a marriage made contrary to the provisions of this section shall be liable to imprision ment for any term not exceeding one year or to fine or to both.

Punishment for abetting marriage made contrary to this Section.

And all marriages made contrary to the provisions of this section may be declared void by a Court of law: provided that in any question regarding the validity of a marriage made contrary to the provisions of this section, such consent is as aforesaid shall be presumed (a) until the contrary is proved and that no such marriage shall be declared void after it has been consummated.

Effect of such marriage proviso.

Case law—

(a) Section 8A, 143.

In the case of a widow who is of full age, or whose marriage has been consummated, her own consent shall be sufficient consent to constitute her remarriage lawful and valid.

Consent to remarriage of major widow.

हिन्दू-विधवा-पुनर्विवाह एक्ट १८५६

क़ानून जिससे यह तात्पर्य्य है कि, हिन्दू-विधवा के विवाह करने में किसी प्रकार क़ानूनी रोक नहीं।

भूमिका

चूँकि यह बात मालूम है कि, जो देश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वत्व और शासन में हैं उन देशों की दीवानी अदालतों के क़ानून के अनुसार थोड़ी-सी विधवा स्त्रियों को छोड़ कर शेष हिन्दू विधवायें एक बार विवाह हो जाने के कारण जायज तौर पर दूसरा विवाह नहीं कर सकतीं और जो सन्तान उन विधवाओं के दूसरे विवाह से उत्पन्न हो वह अनुचित है और सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नहीं।

और चूँकि बहुत से हिन्दुओं का विश्वास है कि, यह क़ानून के अनुसार अनुचित ठहराना, यद्यपि रिवाज के अनुकूल है, परन्तु, उनके धर्मशास्त्र के वास्तविक अर्थों के अनुसार नहीं है और वह लोग यह बात चाहते हैं कि, यदि भविष्य में कोई भी हिन्दू लोग दूसरी रिवाज का जारी करना, इस रिवाज के विरुद्ध, अपने

आत्मा से स्वीकार करें तो उसके जारी करने में कोई रुकावट दीवानी के क़ानून द्वारा न हो सके।

और चूँकि यही न्याय है कि, उन लोगों को इस प्रकार क़ानून से नाजायज़ ठहराने की रोक से छुड़ाया जाय जिसकी उनको शिकायत है और हिन्दू विधवाओं के विवाह के विषय में सब क़ानूनी रुकावटों के उठा देने से सदाचार बढ़ेगा और शान्ति फैलेगी।

अतः यह आज्ञा होती है कि:—

(१) हिन्दुओं का कोई विवाह नाजायज़ न होगा और इस प्रकार के किसी विवाह की सन्तान नाजायज़ न होगी केवल इस-लिये कि, स्त्री का पहले विवाह हो चुका या मँगनी हो चुकी थी। ऐसे पुरुष के साथ में जिसकी इस दूसरे विवाह के पहले मृत्यु हो गई हो चाहे इस बात के विरुद्ध कोई रिवाज या शास्त्र की व्यवस्था हो।

(२) सब अधिकार जो किसी विधवा को अपने मृत पति की जायदाद में गुज़ारे के लिये, या पति की उत्तराधिकारिणी होने के कारण, या पति के वश में क़ानूनी उत्तराधिकारी होने के कारण मिलते हों या उसको किसी वसीयतनामे के अनुसार, जिसमें पुनर्विवाह की स्पष्ट आज्ञा न हो कोई जायदाद मिले जिसको पृथक करने का उसको अधिकार न हो तो विधवा के दूसरे विवाह के समय वह सब जायदाद और अधिकार उसी

प्रकार बन्द हो जाँयगे और जाते रहेंगे कि, जैसे वह विधवा मर गई होती और उस विधवा के मृत पति के निकटस्थ उत्तराधिकारी या वह लोग जो उस विधवा के मरने पर जायदाद के उत्तराधिकारी होते उस जायदाद को लेंगे।

(३) यदि हिन्दू-विधवा के विवाह के समय उसके मृत पति ने अपने वसीयतनामे के अनुसार स्पष्टतया अपनी विधवा को या किसी अन्य पुरुष को अपनी सन्तान का वली नियत न किया हो तो मृत पति का पिता, या पिता का पिता, या माता या पिता की माता, या मृत पति के किसी सम्बन्धी पुरुष को इस बात का अधिकार होगा कि, वह उस स्थान पर जहाँ मरने के समय वह मृत व्यक्ति रहता था सबसे ऊँची अदालत में जिसको दीवानी के असली मुकद्दमें सुनने का अधिकार है, यह अर्ज़ी दे कि, उचित पुरुष उस सन्तान का वली नियत किया जाय और उस अर्ज़ी पर यदि अदालत उचित समझे तो वली नियत करदे और जब वली नियत हो तो उस वली को अधिकार होगा कि, समस्त सन्तान या उनमें से थोड़े बच्चों का पालन-पोषण और रक्षण उनकी कम अवस्था होने तक उनकी माता के बजाय रक्खे। और जब अदालत ऐसा वली नियत करे तो उसे जहाँ तक सम्भव हो सके उन सब क़ानूनों की पैरवी करनी पड़ेगी जो उन बच्चों के वली नियत करने के सम्बन्ध में हों और जिनके माता-पिता नहीं हैं।

परन्तु शर्त यह है कि, यदि इन उपर्युक्त बच्चों के पास अपनी

काफ़ी जायदाद न हो जिससे उनका छोटी अवस्था में पालन तथा शिक्षण हो सके तो माता की इच्छा के बिना कोई वली नियत न किया जायगा, सिवाय उस दशा के, जब वली यह जमानत करदे कि, छोटी अवस्था में, मैं इन बच्चों के पालन-पोषण और शिक्षा का भार अपने सिर लूँगा।

(४) इस क़ानून की किसी इबारत से यह बात न समझी जायगी कि, कोई विधवा जो किसी जायदाद वाले पुरुष के मरने के समय सन्तान-रहित है यदि इस क़ानून के पास होने से पूर्व सन्तान-रहित होने के कारण जायदाद पाने की अधिकारिणी नहीं थी तो वह अब उस सब जायदाद या उसके किसी भाग के पाने की अधिकारिणी होगी।

(५) सिवाय उन शर्तों के, जिनका वर्णन इससे पहल की तीनों धाराओं में हो चुका है, कोई विधवा पुनर्विवाह कर लेने के कारण किसी सम्पत्ति या दाय-भाग से, जिसके पाने की वह और प्रकार से अधिकारिणी है, अलग नहीं होगी और प्रत्येक विधवा का जिसने पुनर्विवाह किया है उसी प्रकार का स्वत्व सम्पत्ति पर रहेगा मानो यह विवाह उसका पहला ही विवाह था।

(६) जिस हिन्दू स्त्री का पहले विवाह न हुआ हो उसके विवाह के समय में जिन शब्दों के बोलने या जिन रस्मों के करने या जिन प्रतिज्ञाओं के करने से वह विवाह विधि-अनुकूल होता है, हिन्दू-विधवा-विवाह के समय उन्हीं शब्दों के बोलने और उन्हीं

रस्मों या प्रतिज्ञाओं के करने से उसका पुनर्विवाह विधि-अनुकूल ठहरता है और कोई विवाह इस कारण से नाजायज़ न ठहराया जायगा कि, ऐसे शब्द या रस्में या प्रतिज्ञायें विधवा के विषय से सम्बद्ध नहीं हैं।

(७) यदि कोई विधवा पुनर्विवाह करना चाहे और वह नाबालिग़ हो और उसका पहिले पति से संयोग न हुआ हो तो अपने पिता या जो पिता न हो तो पिता के पिता और जो पिता का पिता न हो तो अपनी माता और जो यह सब न हों तो अपने बड़े भाई और यदि भाई भी न होवें तो अपने दूसरे निकटस्थ सम्बन्धी की इच्छा के बिना वह विधवा पुनर्विवाह न करेगी।

(८) और जो लोग जान-बूझ कर किसी ऐसे विवाह में सहायता दें जो इस धारा की शर्तों के विरुद्ध है तो वह सब लोग अधिक से अधिक एक वर्ष तक क़ैद या .जुर्माना या दोनों के दण्डनीय होंगे।

और जो विवाह इस एक्ट की शर्तों के विरुद्ध किये जायें तो उनको नाजायज़ ठहराने का अदालत को अधिकार होगा।

पर, शर्त यह है कि, यदि कोई झगड़ा इस प्रकार का पड़े कि, विवाह इस कारण नाजायज़ है कि, वह इस एक्ट की शर्तों के विरुद्ध किया गया है तो जब तक रज़ामन्दी सिद्ध न हो उस समय तक रज़ामन्दी का देना स्वीकार कर लिया जायगा और यदि स्त्री-पुरुषों का संयोग होगया हो तो कोई विवाह नाजायज़ न ठहराया जायगा।

यदि विधवा बालिग़ है, या उसका अपने पूर्व पति से संयोग हो चुका है तो स्त्री की ही रज़ामन्दी उसके पुनर्विवाह के करने में क़ानून और रस्म के अनुसार जायज़ ठहराने के लिये पर्य्याप्त होगी।

इस एक्ट से इतनी बातें प्रकाशित होती हैं:—

(१) प्रत्येक हिन्दू-विधवा का पुनर्विवाह जायज़ है चाहे अक्षत योनि, चाहे क्षत योनि, चाहे सन्तान वाली या सन्तान-रहित।

(२) यदि विधवा अक्षत योनि और नाबालिग़ हो तो पुनर्विवाह केवल पिता, पितामह, माता, बड़े भाई या इनके अभाव में किसी निकटस्थ सम्बन्धी की रज़ामन्दी से ही हो सकेगा।

(३) और यदि क्षत योनि या बालिग़ हो तो केवल उसी की रज़ामन्दी पर्य्याप्त है।

(४) अपने पूर्व पति की जो सम्पत्ति विधवा को केवल गुज़ारे के तौर पर मिलती है वह पुनर्विवाह के पश्चात् उससे छिन जाती है।

(५) परन्तु, जो सम्पत्ति उसकी अन्यथा होती है वह छिन नहीं सकती।

(६) पुनर्विवाहित पति से विधवा की जो सन्तान होती है वह अपने पिता की जायज़ सन्तान होती है और उसकी सम्पत्ति की भी उत्तराधिकारिणी होती है।

इसलिये विधवा-विवाह करने वालों को किसी प्रकार का भी क़ानूनी भय नहीं है।

नवाँ अध्याय

विधवा विवाह-विषयक अन्य युक्तियाँ

हम गत अध्यायों में बता चुके हैं कि, स्त्रियों का पुनर्विवाह निम्नलिखित युक्तियों से सिद्ध है:—

(१) स्त्री और पुरुषों का मनुष्य-समाज में तुल्य पद, तुल्य अधिकार और तुल्य कर्त्तव्य है। जब पुरुष पुनर्विवाह कर सकते हैं तो स्त्रियों को भी अवश्य इसकी आज्ञा होनी चाहिये।

(२) वेद, स्मृति, पुराण तथा इतिहास के प्रमाणों से विदित होता है कि, प्राचीन भारतवर्ष में स्त्रियों को नियोग अथवा पुनर्विवाह की आज्ञा थी।

परन्तु, इनके अतिरिक्त और बहुत सी युक्तियाँ दी जा सकती हैं जिनसे प्रतीत होता है कि, बिना विधवा-विवाह की आज्ञा दिये देश का कल्याण नहीं।

सबसे पहले विधवाओं को सदाचारिणी रखने का एकमात्र साधन यही है। आजकल जिन स्त्रियों के पति बाल्यावस्था में ही

मर गये हैं उनकी ऐसी दुर्दशा हो रही है कि, लेखनी लिखते हुये थर्राती है।

और न केवल विधवायें, किन्तु पुरुषों के आचार पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। बहुत से पुरुष इन्हीं विधवाओं को घर में डाल लेते हैं जिनको 'सुरैत' कहते हैं। इससे न केवल नाजायज़ और हरामी सन्तान का ही देश में आधिक्य हो रहा है किन्तु, लोग जातियों से बहिष्कृत हो रहे हैं और इस प्रकार जाति के पुरुषों की संख्या दिन प्रति दिन न्यून होती जा रही है।

हम यहाँ आर्य्य गज़ट लाहौर के २७ पौष, सम्वत् १९७४ विक्रमी के पर्चे से उस अंश को उद्धृत करते हैं जिसमें पञ्जाब में विधवा-विवाह न होने से जो हानियाँ हो रही हैं उनको भली प्रकार दिखलाया गया है:—

हिन्दू विधवाओं का क्या होगा ?

"मैं प्रथम लिख चुका हूँ कि, हिन्दू विधवाओं का सत्यानाश समस्त हिन्दू स्त्रियों के लिये एक भारी आपत्ति है और स्त्रियों की आपत्ति पुरुषों के सत्यानाश की अग्रगन्ता है। हिन्दू-जाति में स्त्री-जाति के साथ उत्पत्ति के दिन से ही जो व्यवहार किया जाता है वह मैं थोड़ा सा दिखलाना चाहता हूँ:—

"परमात्मा की क़ुदरत के हिसाब में कोई भूल नहीं होती। इस कारण लड़के और लड़कियों की उत्पत्ति संख्या में लगभग

बराबर होती है। परन्तु, माता-पिता की ओर से जो व्यवहार लड़कियों से किया जाता है वह लड़कियों के अनुकूल नहीं है। इसका प्रभाव यह है कि, सृष्टि-नियम के अनुसार जितने लड़के और लड़कियों को छोटी अवस्था में मरना चाहिये लड़कियों की मृत्यु इससे कहीं अधिक होती है। १९११ ई० की मनुष्य-गणना इस प्रकार से है कि, पञ्जाब में एक साल तक आयु के एक सौ हिन्दू लड़के होते हुये ९६·६ लड़कियाँ हैं और पाँच वर्ष तक की आयु के एक सौ लड़कों के मुक़ाबिले में ९·१७ लड़कियाँ हैं और इससे पन्द्रह वर्ष की आयु की लड़कियाँ इस आयु के एक सौ लड़कों में केवल ७२.३ रह जाती हैं।

दूसरा हिसाब इस प्रकार है कि, एक से पाँच वर्ष तक की आयु की लड़कियाँ इस आयु के लड़कों से संख्या में २५,१९२ कम हैं और पाँच वर्ष से ऊपर दस वर्ष तक की आयु की लड़कियाँ इसी अवस्था के लड़कों से ८०,७४० कम हैं और दस से १५ वर्ष तक की आयु की लड़कियाँ इसी अवस्था के लड़कों से १,५५,८८८ कम हैं और १५ से ऊपर बीस वर्ष तक अवस्था की लड़कियाँ इसी अवस्था के लड़कों से १,३१,३८६ कम हैं। मानों लड़कियों से जिस प्रकार का व्यवहार हिन्दू-जाति ने उचित माना है इसका परिणाम यह है कि, बीस वर्ष की आयु होने तक स्वभावतः जितने लड़के और लड़कियाँ मरती हैं लड़कियों की मृत्यु-संख्या इससे ३,९३,२०६ अधिक है। तो क्या यह बात समझ में आनी मुश्किल है कि,

इतनी अधिक संख्या लड़कियों की छोटी अवस्था में मरने का कारण पुरुषों का स्त्री-जाति से व्यवहार है और यह जितना शोक-प्रद है उसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं ?

सहस्रों लड़कियाँ पालन-पोषण की असावधानी और रोग में बेपरवाही का शिकार हो जाती हैं। सहस्रों बाल्यावस्था में विवाही जाकर प्रसव-काल में मर जाती हैं। सहस्रों बूढ़े पतियों से ब्याही जाती हैं और छोटी अवस्था में विधवा होकर और भूख से सताई जाकर मरती हैं; या कहीं को निकल जाती हैं। सारांश यह कि, इस बात के सत्य होने में कोई सन्देह नहीं कि, हिन्दू-जाति में पुरुषों का व्यवहार ही इस प्रकार का है जिसको स्त्रियों की सर्व-तन्त्र-हत्या कही जाय तो अत्युक्ति न होगी।

इस सर्व-तन्त्र-हत्या का दूसरा पक्ष इस प्रकार भी दृष्टि-गोचर होता है कि, दिल्ली नगर में २९,८३६, लाहौर में २९,०६४, अमृतसर में १५,७७१, मुल्तान में ७,७४३, रावलपिण्डी में ९,०५८, अम्बाले में ९,४८३, जालन्धर में ५,१००, स्यालकोट में ३,८१२ और फ़ीरोज़पुर में ६,४१६ स्त्रियाँ पुरुषों से कम हैं। इस प्रकार से पञ्जाब के इन बड़े नगरों में जहाँ कुल मनुष्य-संख्या हिन्दू-पुरुषों की २,५४,२९० है इनमें से १,१६,२८३ पुरुषों के भाग्य में स्त्रियाँ नहीं अर्थात् इनका विवाह न हुआ है और न होगा। क्योंकि स्त्रियों की संख्या बहुत कम है।

तीसरा पक्ष आप देखना चाहें वह इस प्रकार है कि, समस्त

पञ्जाब में कुँआरे हिन्दू-पुरुषों की संख्या २४,१३,३६५ और कुमारी लड़कियों की संख्या १३,२६,८३० है जिससे सिद्ध है कि, ११,८६,५३५ पुरुषों का विवाह नहीं हो सकता। इनके अतिरिक्त ऐसे रँडुए पुरुष जिनकी आयु एक वर्ष से लेकर ५० वर्ष तक है और वह भी विवाह के उम्मेदवार हैं संख्या में २,४२,८२९ हैं। यह भी कुँआरे पुरुषों में सम्मिलित किये जावें तो १४,२९, ३६४ पुरुष ऐसे हैं जिनके लिये स्त्रियों का अभाव है। जो एक स्त्री के मरने पर दूसरा, उसके मरने पर तीसरा भी विवाह करते हैं और कई ऐसे हैं जो लड़के न होने के कारण एक स्त्री के होते हुये दूसरी स्त्री से विवाह करते हैं और कुँआरी स्त्रियों में प्रति शतक न्यून से न्यून पाँच यह अवश्य ले जाँयगे जो ४,६३,४१ होती हैं। इनको भी सम्मिलित करके विवाह के योग्य पुरुषों से विवाह के योग्य स्त्रियों की संख्या १४,९५,७०५ या १५ लाख से लगभग कम है।

और चौथे पक्ष पर दृष्टि डालने से यह संख्या १६ लाख के लगभग मालूम होती है। अब पाठकगण विचार करें कि, यह १५ या १६ लाख मनुष्य सन्तान-वृद्धि की अपेक्षा से किसमें गिने जाँयगे? इनमें से किसी एक का भी स्थानापन्न बच्चा— इसके पूर्वजों के वंश को जारी रखने का साधन, इसके अन्तिम श्वास लेने के समय उपस्थित न होगा जिसके शोक और निराशा में यह लोग अपनी आयु के दिन शोक, चिन्ता, क्रोध, पाप और

दुराचार में व्यतीत कर रहे हैं और जिस दुःख और कष्ट से यह अपना अन्तिम श्वास छोड़ेंगे क्या इसका कुछ प्रभाव शेष लोगों और कुल जाति पर पड़ रहा है या नहीं ? जिनकी आँखें हैं वह देखें ! और जिनके कान हैं वह सुनें कि, यह केवल इन्हीं लोगों की बरबादी नहीं, किन्तु जो लोग संसार के विषयों में आसक्त हैं, धन-धान्य तथा बाल-बच्चों के सुख में आनन्द लूट रहे हैं उनके और उनकी सन्तान के लिये भी यही भाग्य बनाया जा रहा है। और इनका भी एक दिन यही अन्त होगा। यह १६ लाख पुरुष जिनके हिस्से की स्त्रियों को, पुरुषों के अनुचित व्यवहार ने मार डाला और सात लाख विधवायें जिसमें से ९६ तो ऐसी हैं जिनकी अवस्था ५ वर्ष के भीतर है, और १,५२७ जिनकी आयु ५ वर्ष से ऊपर १० वर्ष तक है, और ४,२८८ वह जिनकी अवस्था १० वर्ष से ऊपर और १५ वर्ष तक है, और ११,८४४ वह जिनकी आयु १५ वर्ष से ऊपर २० वर्ष तक है, और २४,३३५ की अवस्था २५ वर्ष तक है और जिनकी दुर्दशा उनको दृष्टिगोचर हो सकती है जो देखना चाहते हैं। क्या यह जिन्दा लाशें नहीं हैं ? जोकि रात-दिन चिन्ता की चिता में जल रही हैं और कितने इनके सम्बन्धी हैं जो इन्हीं के कारण से दुःखों की पीड़ा से सूख कर काँटा हो रहे हैं ! इन २३ लाख के साथ अधिक नहीं तो २३ लाख के प्रेम का सम्बन्ध अवश्य है। इस हिसाब से पञ्जाब ही के भीतर हिन्दू-जाति के ४६ लाख स्त्री-पुरुष आजकल उपस्थित हैं जो दिन-रात जल रहे हैं, जिनको जीवन

का कुछ स्वाद नहीं और मृत्यु को बुलाते हैं और वह आती नहीं। अन्त में एक दिन मृत्यु अवश्य आयेगी और हिन्दू-जाति के ८७,७३, ६२१ मनुष्यों में से ४६ लाख को दुःखों से छुड़ायेगी। फिर क्या होगा ? इनका स्थान लेने वाले और बहुत से लोग हो जावेंगे। यह लोग कौन होंगे ?

वह जो अपनी जाति के दुःखित भाई-बहिनों की परवाह नहीं करते और अपने मद में मस्त हैं। अब पाठकगण स्वयं हिसाब लगा कर देख लें कि, शेष बचे हुये ४१ लाख का इसी अवस्था में लाकर नाश के समुद्र में डुबोने के लिये कितने वर्ष का समय आवश्यक है। समय है कि, जो लोग विषयासक्ति में मग्न हैं असावधानी की नींद से जागें, अपने दुःखिया बहिन-भाइयों के लिये नहीं तो कम से कम अपने ही नाश को रोकने का यत्न करें। हे जगज्जननी ! तू दया कर, अपने असावधान और मदमस्त बच्चों को प्रेम की लोरी दे जिससे वह ईर्षा, द्वेष, आलस्य और प्रमाद को छोड़कर परोपकार में लग जावें।"

कौन ऐसा कठोर हृदय होगा जो इस अपील पर द्रवित न हो और फिर भी पूछे कि, विधवा-विवाह क्यों उचित है ? पाठकगण, यदि आपने बाल-विधवा-विवाह का प्रचार न किया तो एक भयानक प्रश्न है कि, हिन्दू विधवाओं की क्या दशा होगी ? जिन महाशय का लेख हमने उद्धृत किया है उन्हीं के अन्वेषण से एक और भयानक सूचना मिली है जिसके कारण हिन्दू-जाति

के सत्यानाश में कोई सन्देह ही नहीं रहता। इन्होंने पता लगाया है कि, सैकड़ों इस प्रकार के दलाल हैं जो संयुक्त-प्रान्त से हज़ारों विधवाओं को बहका कर पञ्जाब में ले जाते और उनको बेच देते हैं। मानों ग़ुलामी की प्रथा भी हमारे सामाजिक बिगाड़ के कारण अभी तक गई नहीं। बहुत से ऐसे पुरुष हैं जो यही व्यापार करते हैं और अपनी ही जाति के लोहू से अपनी प्यास बुझाते हैं। इन दलालों की भाषा गुप्त और पत्र-व्यवहार भी गुप्त होता है। उक्त महाशय ने पहली भादों सं० १९७४ को दो तीन पत्र आर्य्य गजट में इन दलालों के छपवाये थे जिनसे पता लगता है कि, साधारणतया इनका पकड़ना भी मुश्किल है। हम यहाँ कुछ नमूने देते हैं:—

पहला पत्र:—"श्रीगणेशाय नमः। आपका ख़त आया था सो बहुत कोशिश की थी कि, तुमको इसका जवाब दूँ। लेकिन पता न मालूम होने के कारण मैं नहीं भेज सका। परन्तु, ईश्वर की कृपा से अब पता मालूम होगया है तो अब पत्र भेजता हूँ। गेहूँ १३ सेर फ़ी रुपया, चना १६ सेर फ़ी रुपया, अरहर २० सेर फ़ी रुपया है। तीन चीज़ें तैयार हैं। अगर आपको आना हो तो १३ मई १९१७ ई० तक ज़रूर आइये वरना मैं यहाँ से चला आऊँगा।"

दूसरा पत्र:—"बाबू..............साहेब! अर्सा हुआ, कुछ हाल मालूम नहीं हुआ। यहाँ का हाल यह है कि, हमने

माल तैयार किया है। आपको २३ तारीख़ बरोज़ सोमवार तार दिया है कि, माल तैयार है। जल्द आओ। मगर, आज आठ रोज़ हुये कुछ हाल मालूम नहीं हुआ कि, आपको तार मिला है या नहीं। अगर आप देर में आवेंगे तो नुक़सान है। सौदागर माल वाला जल्दी करता है। जो हाल हो उससे बहुत जल्द इत्तला दो। वैसा इन्तज़ाम किया जाय। माल उमदा है और काम जल्दी का है। अगर जल्दी ख़रीद-फ़रोख़्त माल की न होगी तो वापिस हो जाने का ख़ौफ़ है। अगर आपका आना किसी वजह से न हो सके तो जल्द इत्तला दीजिये। माल वाले को जवाब दिया जाय कि, वह अपने मकान वापिस जावे या अपना दूसरी जगह वास्ते फ़रोख़्त के इन्तज़ाम करे। क्योंकि ख़र्च फ़िज़ूल हो रहा है और आपकी उम्मेद पर रुके हुये हैं और आपके कहने के माफ़िक़ माल ख़रीद कर लिया है वरना कोई ज़रुरत नहीं थी। मगर ख़ैर, जो बात होवे उससे साफ़-साफ़ इत्तला दीजिये। तबीयत अज़हद परेशान है और हर रोज़ इन्तज़ारी करते करते आँख बैठ जाती है। इस क़दर देर होने की क्या वजह है? अगर तशरीफ़ लाने में देरी हो तो फ़ौरन इत्तला दो। माल वाले को जवाब देवें। रोज़ाना ख़र्च हो रहा है। नुक़सान है और ज़्यादा क्या लिखूँ?"

तीसरा पत्रः—"बाबू ....। आज हमने माल वापिस कर दिया। आपके आने में देरी पाई गई। और माल वाला सौदागर बहुत जल्दी करता था। इस वजह से वापिस कर

दिया गया। आपके न आने की वजह से मुझे बहुत नुक़सान बरदाश्त करना पड़ा। बराहे नवाजिश ऐसा न किया कीजिये। इसमें क्या फ़ायदा? आपका काम जल्दी होने वाला है। दस-पाँच रोज़ की देरी है। अगर ईश्वर ने चाहा तो दस-पाँच रोज़ में आपका काम उमदा होगा। मगर आना फ़ौरन जिस वक्त आपको ख़त मिले। फ़ौरन आइयेगा। देर ना कीजियेगा। दिलोजान से कोशिश कर रहे हैं। उम्मेद है कि, आपका काम बहुत जल्दी और उमदा होगा।"

पाठकगण, जिस जाति को आप बहुत उच्च समझते हैं उसी में देखो किस प्रकार सैकड़ों दलाल विधवाओं को बहकाने और उनको बेचने का उद्योग किया करते हैं। यदि विधवा-विवाह प्रचलित हो जाय तो इस भीषण कार्य्य में बहुत-कुछ कमी हो सकती है। हज़ारों विधवायें तो ऐसे लोगों के हाथ पड़ जाती हैं जिनके स्वभाव, आर्थिक दशा तथा जाति-पाँति से वह सर्वथा अनभिज्ञ हैं और उनके घर रहना भी नहीं चाहतीं। एक बार उनके हाथ बिक जाने के पश्चात उनके लिये आपत्तियों का जो चक्र चलता है वह महा भयानक और हानिप्रद है। इन बिचारियों पर बड़े-बड़े अत्याचार होते हैं और जो कष्ट उनको डमरारा या अन्य टापुओं में कुली की भाँति भरती होने में होता है उससे यहाँ किसी प्रकार भी कम नहीं होता। क्या विधवा-विवाह के विषय में यह प्रबल युक्ति नहीं है?

दसवाँ अध्याय

विधवा-विवाह के विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर

(१) क्या स्वामी दयानन्द विधवा-विवाह के विरुद्ध हैं ?

धिकतर आर्य्य-समाज के सभासदों को विधवा-पुनर्विवाह को प्रचार में संलग्न देख कर इसके विरोधी यह आक्षेप किया करते हैं कि, आर्य्य-समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ-प्रकाश में विधवा-विवाह के अनेक दोष दिखाये हैं फिर न जानें क्यों। आर्य्य-समाज के लोग विधवा-विवाह का ढिंढोरा पीटा करते हैं ?

इसका उत्तर यह है कि, लोगों ने महर्षि दयानन्द के लेखों को ध्यानपूर्वक पढ़ा नहीं। यदि पढ़ते तो ऐसा कदापि न कहते। इसके अतिरिक्त एक बात और है। ऐसे आक्षेप करने वालों को स्वामी दयानन्द या उनके लेखों से कोई सहानुभूति नहीं है; किन्तु केवल छिद्र-दर्शन ही उनका मुख्य प्रयोजन है। यही कारण है कि, वास्तविक बात

को छोड़ कर व्यर्थ आक्षेप करते हैं। हम श्री० स्वामी जी का लेख सत्यार्थ-प्रकाश से उद्धृत करते हैं वह यह है :—

(प्रश्न) स्त्री और पुरुष के बहुत विवाह होने योग्य हैं या नहीं ?

(उत्तर) युगपत् न अर्थात् एक समय में नहीं।

(प्रश्न) क्या समयान्तर में अनेक विवाह होने चाहिये ?

(उत्तर) हाँ जैसे :—

सा चेदक्षतयोनिः स्याद्‌ गतप्रत्यागतापि वा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥

—मनु०; अ० ९, श्लो० १७६

जिस स्त्री वा पुरुष का पाणिग्रहण मात्र संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो अर्थात् अक्षत योनि स्त्री और अक्षत वीर्य्य पुरुष हो उनका, अन्य स्त्री वा पुरुष हो उनका, अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिये। किन्तु; "ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षत योनि स्त्री तथा क्षत वीर्य्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिये।"

—सत्यार्थ-प्रकाश, चतुर्थ समुल्लास

इससे स्पष्ट विदित होता है कि, श्री० स्वामी दयानन्द सरस्वती अक्षत-योनि-विधवा-विवाह को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी के लिये मानते हैं, परन्तु क्षत योनि विधवा का विवाह केवल शूद्रों के लिये ही। जो लोग स्वामी दयानन्द के इस वाक्य में से कुछ अंश लेकर शेष को छोड़ देते हैं वह अनर्थ के भागी हैं। जो आर्य्य सामाजिक पुरुष अक्षत योनि बाल-विधवाओं के पुनर्विवाह

का प्रचार, उद्योग तथा उल्लेख करते हैं वह श्री० स्वामी जी के अभिप्रायों के प्रतिकूल नहीं जाते। इसके अतिरिक्त विधवा-विवाह के विरोधी श्री० स्वामी जी के उपदेशों को उद्धृत करते हुये एक बात और भूल जाते हैं। हमने जो लेख इनका ऊपर उद्धृत किया है उसके ठीक आगे स्वामी जी ने एक प्रश्न किया है :—

(प्रश्न) पुनर्विवाह में क्या दोष है ?

इसके उत्तर में चार दोष दिखाये हैं। परन्तु, यह सब क्षत योनि विधवा-विवाह और बहु-विवाह के सम्बन्ध में द्विजों के विषय में हैं। अक्षत योनि के विषय में नहीं। अक्षत योनि के विषय में तो उनकी सम्मति स्पष्ट है जो ऊपर दी जा चुकी है। इसके अतिरिक्त द्विजातियों में उन्होंने क्षत योनि विधवा-विवाह के स्थान में नियोग की विधि लिखी है। वह लिखते हैं :—

"जो स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य्य में स्थित रहना चाहें तो कोई भी उपद्रव नहीं होगा और जो कुल की परम्परा रखने के लिये अपनी स्वजाति का लड़का गोद में लेंगे उससे कुल चलेगा और व्यभिचार भी न होगा और जो ब्रह्मचर्य्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लें।"

—सत्यार्थ-प्रकाश, चतुर्थ समुल्लास

यहाँ उन्होंने तीन कोटियाँ, क्षत योनि विधवाओं तथा उन क्षत वीर्य्य पुरुषों की कर दी हैं जिनकी स्त्रियाँ मर गई हैं :—

(१) वह जो ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी रह सकती हैं और

जिनको सन्तान की भी इच्छा नहीं, ऐसों को तो किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं।

(२) वह जो ब्रह्मचर्य्य पालन तो कर सकते हैं परन्तु कुल की परम्परा के लिये सन्तान की इच्छा रखते हैं, ऐसों के लिये गोद रखने की आज्ञा दी।

(३) जो ब्रह्मचर्य्य भी पालन नहीं कर सकते उनको नियोग की आज्ञा दी।

इसलिये स्वामी दयानन्द के बताये हुये पुनर्विवाह के चार दोषों पर ज़ोर देने का उन लोगों को अधिकार नहीं है जो :—

(१) पुरुषों के लिये पुनर्विवाह मानते हैं और स्त्रियों के लिये नहीं। क्योंकि, स्वामी जी स्त्री और पुरुष दोनों को विवाह के विषय में समान ही अधिकार देते हैं।

(२) जो पुरुष नियोग को नही मानते अथवा उसका प्रचार दूषित समझते हैं।

(३) जो "अष्ट वर्षा भवेद्गौरी" के फेर में पड़े हुये बाल-विवाह की प्रथा को उत्साहित करते हैं।

हमारे विचार में स्वामी जी का बताया हुआ नियोग का नुसखा सर्वत्र, सर्वकालों और सर्व दशाओं के लिये क्षत योनि और क्षत वीर्य्य पुरुष के पुनर्विवाह से अधिक उपयोगी है। इसमें संशय नहीं। परन्तु, यदि जब लोग नियोग जैसी पवित्र प्रथा के प्रचार का साहस न रक्खें तब तक उससे कम लाभदायक

पुनर्विवाह के नुसखे में भी लाभ ही लाभ है हानि नहीं। यदि हम यह मानें कि, नियम के लिये बहुत समय लगेगा और मानव जाति इस समय इसके लिये तैयार नहीं है तो उस समय तक विधवा-विवाह ही जारी कर देना चाहिये। यदि रोग बढ़ रहा हो और सर्वोत्तम औषधि मिलने की सम्भावना न हो तो उससे कम उत्कृष्ट औषधि का ही प्रयोग करना चाहिये। सर्वोत्तम औषधि के अभाव में उससे कम उपयोगी औषधि का त्याग कर देना और रोगी को जाने देना मूर्खों का ही काम है।

(२) विधवायें, उनके कर्म्म तथा ईश्वर इच्छा

दूसरा आक्षेप यह है कि, विधवा-विवाह करना ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध कार्य्य करना है। यदि स्त्री के कर्म्म में वैधव्य न होता तो वह विधवा क्यों होती? और कर्म्म की गति को कौन मिटा सकता है?

(उत्तर) यह ठीक है कि, उसके कर्म्मानुसार ही उसे वैधव्य प्राप्त हुआ है। परन्तु, इसका यह तात्पर्य्य तो नहीं कि, भविष्य में कार्य्य ही न किये जाँय, या जो विपत्ति आ पड़ी है उसका प्रतीकार ही न किया जाय। यदि कोई पुरुष मार्ग में गिर पड़े और आप उससे कहें कि, तू अपने कर्म्मानुसार गिरा है, यदि तेरे कर्म्म में गिरना न होता तो तू कदापि न गिरता, अब तुझे उठना नहीं चाहिये, नहीं तो ईश्वर की आज्ञा का विरोध होगा। इससे कितना अनर्थ होगा यह आप स्वयं जान सकते हैं। क्या गिरे हुये

को उठने की कोशिश न करनी चाहिये ? इसी प्रकार यदि किसी का मकान गिर पड़े तो क्या उसका फिर बनाना ईश्वर-आज्ञा और कर्म्म-सिद्धान्त का विरोध करना है ? कौन नहीं जानता कि, मनुष्य पर अनेक प्रकार की विपत्तियाँ उसके कर्म्मानुसार आती रहती हैं और उनका प्रतीकार करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है।

फिर सन्तान-रहित स्त्री के लिये गोद रखना तो तुम्हारे मत में भी श्रेय है। यह क्यों ? क्या इसमें ईश्वर की आज्ञा का विरोध नहीं होता ? वहाँ भी यही युक्ति क्यों नहीं देते कि, अमुक पुरुष अपने कर्म्मानुसार-सन्तान रहित है ? यदि उसके कर्म्म अच्छे होते तो ईश्वर अवश्य सन्तान देता। यदि गोद रख कर सन्तान वाले बनोगे तो ईश्वर की आज्ञा भङ्ग होगी।

इसके अतिरिक्त तुम्हारी यही युक्ति पुरुषों के पुनर्विवाह में कहाँ जाती है ? सहस्रों निस्सन्तान मनुष्य पुनर्विवाह करते हैं और उनके सन्तान होती है। तुम उनसे क्यों नहीं कहते कि, तुम्हारी स्त्री कर्म्मों के कारण मर गई अब फिर दूसरा विवाह करना ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध बात होगी ? क्या तमाशा है कि, जो युक्तियाँ विधवा-विवाह के विरुद्ध दी जाती हैं वह रँडुओं के विवाह के सम्बन्ध में बिल्कुल भुला दी जाती हैं ! हा अन्याय ! हा क्रूरता !!

(३) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं

तीसरा आक्षेप यह है कि, तुम जो रँडुओं के पुनर्विवाह का

दृष्टान्त देकर विधवा-विवाह प्रचलित करना चाहते हो यह ठीक नहीं। हम मानते हैं कि, रँडुओं का विवाह भी वर्जनीय है। यदि एक मनुष्य चोरी करने लगे तो क्या दूसरे को भी चोरी करनी चाहिये। यदि तुम रँडुओं का विवाह बुरा समझते हो तो उसका खण्डन करो। इसके स्थान में विधवा-विवाह का मण्डन क्यों करते हो ? जो रोग अभी केवल मनुष्यों में है उसका स्त्रियों में भ। क्यों प्रवेश करना चाहते हो ? यदि मानव जाति का एक भाग ही इन व्यसनों से बचा रहे तो अच्छा ही है।

(उत्तर) तुम्हारा चोरी का यह दृष्टान्त ठीक नहीं। विधवा-विवाह शास्त्रोक्त है। चोरी के समान निषिद्ध नहीं। इसके प्रमाण हम पूर्व ही दे चुके हैं। यहाँ प्रश्न अधिकारियों का है। यदि पुरुषों को पुनर्विवाह करने का अधिकार है तो न्याय-सङ्गत यही है कि, स्त्रियों को भी यही अधिकार दिया जाय। याद रखना चाहिये कि, स्त्रियों के विवाह-सम्बन्धी नियमों में पुरुष सम्मिलित हैं और पुरुषों के विवाह में स्त्रियाँ। यह तो है ही नहीं कि, पुरुष बिना स्त्रियों के विवाह कर सकें और स्त्रियाँ बिना पुरुषों के। जब पुरुष पुनर्विवाह करते हैं तो उसका प्रभाव स्वभावतः स्त्रियों पर भी पड़ता है। स्त्रियाँ उससे बच नहीं सकतीं। इसलिये पुरुष केवल यह कह कर छूट नहीं सकते कि, यह हमारी निर्बलता है, हम को क्षमा करो और तुम सबल रहो। यदि पुरुष स्वीकार करते हैं कि, पुनर्विवाह करना उनकी निर्बलता है तो मैं पूछता हूँ

उनको दूसरों की निर्बलता पर आक्षेप करने का अधिकार ही क्या है ? जो अपनी आँख का शहतीर नहीं देखता उसको दूसरों की आँख का तिनका देख कर हँसना कितना अनुचित और गर्हित कार्य्य है ? फिर यह कि, जो निर्बलता पुरुषों में है वही स्वाभाविक निर्बलता स्त्रियों में भी है। इसमें उनका कुछ दोष नहीं और इसलिये उनको इसकी उत्तरदात्री ठहराना अन्याय है। स्त्रियों की बहुत-सी निर्बलतायें तो पुरुषों के कारण हैं। वह नीचे गिरते हुये उनको भी गिरा लेते हैं। तुलसीदास जी ने ठीक कहा है :—

पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

वस्तुतः बात यह है कि, जब तक पुरुष इन्द्रिय-दमन करना नहीं सीखते उस समय तक स्त्रियों से यह आशा करनी असम्भव है।

(४) कलियुग और विधवा-विवाह

चौथा आक्षेपः—हम मानते हैं कि, पहले विधवा-विवाह और नियोग दोनों ही धर्म्मानुकूल समझे जाते थे; परन्तु, सतयुग, त्रेता, और द्वापर के धर्म्म को कलियुग में बर्तना असम्भव है। विधवा-विवाह को कलियुग में वर्जित कर दिया गया है। देखो प्रमाणः—

ऊढायाः पुनरुद्वाहं ज्येष्ठांशं गोवधं तथा।
कलौ पंच न कुर्व्वीत भ्रातृजायां कमण्डलुम्॥

—आदि पुराण

आदि पुराण में लिखा है कि, विवाहिता का पुनर्विवाह और ज्येष्ठांश, गो-वध, भौजाई से सन्तानोत्पत्ति और संन्यास यह पाँच बातें कलियुग में वर्जित हैं।

(उत्तर) जो लोग यह मानते हैं कि, विधवा-विवाह और नियोग पहले धर्म्मानुकूल माने जाते थे और कलि में वर्जित हैं उनको कम से कम वेद के उन मन्त्रों के अर्थ बदलने की कोशिश न करनी चाहिये जिनमें विधवा-विवाह का विधान है। एक तरफ़ विधवा-विवाह-सम्बन्धी वेद तथा स्मृति के प्रमाणों का अर्थ बदलना और दूसरी ओर यह मानना कि, यह प्रथा केवल कलियुग में वर्जित है, परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध है और प्रकट करती है कि, लोगों को सत्य से काम नहीं, किसी न किसी प्रकार विधवा-विवाह का खण्डन करना उनका अभिप्राय है।

प्रथम तो जितने वेद-शास्त्र-सम्बन्धी विषय हैं वह सब युगों के लिये हैं जैसा कि, पहले लिखा जा चुका है। परन्तु, यह भी मान लिया जाय कि, धर्म्म भिन्न हैं तो यह ठीक नहीं कि, कलियुग में विधवा-विवाह नहीं होना चाहिये। जो प्रमाण तुमने ऊपर दिया है वह तो बड़ा ही विलक्षण है। प्रथम तो इसमें लिखा है कि, कलि में गो-वध वर्जित है। इससे मालूम होता है कि, किसी समय गो-वध धर्म्म भी था। परन्तु, यह बात नहीं है। वेद और वेदानुकूल शास्त्रों में गाय तो गाय बकरी तक की हिंसा भी धर्म्म-विरुद्ध लिखी है। देखो, जिस मनु-स्मृति को तुम सतयुग

के लिये बताते हो उसमें हिंसा को बुरा बताया है। अध्याय ५ के ५१ वें श्लोक को देखो :—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः॥

अर्थात्, अनुमति देने वाला, खण्ड-खण्ड करने वाला, मारने वाला, मोल लेने और बेचने वाला, पकाने वाला, ले जाने वाला और खाने वाला यह सब घातक अर्थात् हत्यारे कहलाते हैं। जब मनु जी ही हिंसा के इतने विरोधी हैं तो वेद जैसी पवित्र पुस्तक में गो-बध जैसी अधर्म्मयुक्त बात की किस प्रकार विधि हो सकती है। जो प्रमाण ऊपर दिया गया है वह सर्वथा प्रमाद और भूल से युक्त है। जिन मुसलमानों को तुम गो-बध के लिये इतना बुरा कहते हो उसी कार्य्य को सतयुग में धर्म्म-विहित कहना कैसी भूल है? यदि मुसलमान या ईसाई तुमसे कहने लगें कि भाई, तुम हमारे गो-बध को क्यों बुरा कहते हो? हम तो सतयुगी पुरुष हैं और वही करते हैं जो तुम्हारे पूर्वज सतयुग में किया करते थे तो क्या तुमको लज्जित न होना पड़ेगा? फिर ऐसे प्रमाण मानने से क्या लाभ?

दूसरी बात जो तुम्हारे प्रमाण में लिखी है वह यह है कि, कलियुग में संन्यास वर्जित है। कहिये साहिब, क्या कलियुग में केवल तीन ही आश्रम हैं और क्या जो लोग आज-कल संन्यासी हो

रहे हैं वह सब धर्म्म-विरुद्ध कार्य्य कर रहे हैं ? क्या स्वामी शङ्कराचार्य्य आदि संन्यासी जो कलियुग में हुये हैं अधर्म्मी थे ? या इनको तुम्हारा प्रमाण ज्ञात न था ? या तुमने इसे स्वयं गढ़ लिया है ? इनमें से एक बात तो तुमको अवश्य ही माननी पड़ेगी।

तीसरे जो पाराशर-स्मृति का प्रमाण हमने दिया है (नष्टे, मृते इत्यादि) वह कलियुग के ही लिये है। पाराशर-स्मृति के आरम्भ को देखो :—

अथातो हिमशैलाग्रे देवदारु वनालये।
व्यासमेकाग्रमासीन मपृच्छन्नृषयः पुरा ॥ १ ॥
मानुषाणां हितं धर्म्मं वर्त्तमाने कलौयुगे।
शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत ॥ २ ॥
तच्छ्रुत्वा ऋषिवाक्यं तु सशिष्योऽग्न्यर्कसन्निभः।
प्रत्युवाच महा तेजाः श्रुतिस्मृति विशारदः ॥ ३ ॥
न चाहं सर्वतत्त्वज्ञः कथं धर्म्मं वदाम्यहम्।
अस्मत्पितैव प्रष्टव्य इति व्यासः सुतोऽवदत् ॥ ४ ॥
तस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रं पराशरम्।
सुखासीनं महातेजा मुनिमुख्यगणावृतम् ॥ ८ ॥

कृतांजलिपुटो भूत्वा व्यासस्तु ऋषिभिः सह ।
प्रदक्षिणाभिवादैश्च स्तुतिभिः समपूजयत् ॥ ९ ॥
कृते तु मानवा धर्म्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः ॥२४॥
द्वापरे शङ्खलिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः ॥ २५॥

अर्थ:—हिमालय की चोटी पर देवदारु के वन में एकान्त में बैठे हुये व्यास से पहले समय में ऋषियों ने पूछा ॥ १ ॥

हे सत्यवती के पुत्र (व्यास), आप मनुष्यों के हित के लिये वर्त्तमान कलियुग में जो धर्म्म और आचार है उसको कहिये ॥२॥

ऋषियों के इस वाक्य को सुनकर महा तेज श्रुति और स्मृति के पण्डित और शिष्यों सहित अग्नि तथा सूर्य्य की उपासना में लगे हुये व्यास ने उत्तर न दिया ॥ ३ ॥

मैं तो सब तत्त्वों को नहीं जानता। धर्म्म कैसे कहूँ ? बेटे व्यास ने यह कहा कि, हमारे पिता से पूछना चाहिये ॥ ४ ॥

ऋषियों की उस सभा के बीच में मुनियों के मुख्य समूह से घिरे हुये, सुख से बैठे हुये शक्ति के पुत्र पराशर जी को महा-तेजस्वी ॥ ८ ॥

व्यास ने ऋषियों के साथ हाथ जोड़ कर प्रदक्षिणा, अभिवादन तथा स्तुतियों द्वारा पूजा की ॥ ९ ॥

सतयुग में मानव-धर्म्म-शास्त्र, त्रेता में गौतम स्मृति ॥ २४ ॥

द्वापर में शङ्ख और लिखित स्मृतियाँ और कलियुग में पाराशर-स्मृति माननीय है ॥ २५ ॥

पाराशर-स्मृति के इन वाक्यों से सिद्ध होता है कि :—

(१) व्यास और पाराशर कलियुग में हुये क्योंकि कलियुग के लिये वर्त्तमान शब्द प्रयुक्त हुआ है (वर्त्तमाने कलौयुगे) ।

(२) व्यास ने कलियुग का धर्म्म बतलाने में अक्षमता प्रकट की ।

(३) इसलिये वे सब ऋषि पराशर के पास गये ।

(४) कलियुग के लिये पाराशर-स्मृति है ।

अब यदि तुम आदि पुराण को व्यास-कृत कहो और पाराशर-स्मृति को पाराशर-कृत तो दोनों के परस्पर विरुद्ध होते हुये किस को मानोगे ? तुम्हारे कथनानुसार :—

(१) व्यास जी आदि पुराण में कहते हैं कि विधवा-विवाह कलियुग में वर्जित है ।

व्यास जी के पिता पाराशर जी पाराशर-स्मृति में कहते हैं कि, स्त्री पाँच आपत्तियों में पुनर्विवाह कर सकती है जिनमें एक आपत्ति विधवा होना है ।

अब (१) या तो तुम (आदि पुराण और पाराशर-स्मृति) दोनों को अप्रमाणित कहो । (२) या एक को प्रमाणित और दूसरी को अप्रमाणित । ऐसा कहना सर्वथा मनमाना, युक्ति-रहित और कपोल-कल्पित होगा । (३) या दोनों को सत्य मानो । ऐसी

अवस्था में पुत्र की भी बात से पिता की बात अधिक माननीय है। यह भी नहा कहा जा सकता कि, पुत्र से पिता मूर्ख था क्यों कि, व्यास जी स्वयं कहते हैं कि, मैं सब बातों को नहीं जानता। मेरे पिता पराशर जी से पूछना चाहिये।

महाभारत के प्रमाणों से विदित होता है कि, कलियुग में विधवा-विवाह न केवल धर्म्मानुकूल ही समझा जाता था; किन्तु द्विजों में भी इसका प्रचार था।

अर्जुनस्यात्मजः श्रीमानिरावान्नामवीर्य्यवान्।
सुतायां नागराजस्य जातः पार्थेन धीमता ॥ ७ ॥
ऐरावतेन सा दत्ता ह्यनपत्या महात्मना।
पत्यौ हते सुपर्णे न कृपणा दीन चेतना ॥ ८ ॥

—महाभारत; भीष्म-पर्व, अ० ९१

अर्थ :—नागराज की कन्या से अर्जुन का एक बलवान लड़का उत्पन्न हुआ जिसका नाम इरावान् था।

जब सुपर्ण ऐरावत् ने उस (नागराज की कन्या) के पति को मार डाला तो उस बुद्धिमान राजा (नागराज) ने अपनी दुःखिया कन्या का विवाह अर्जुन के साथ कर दिया।

(प्रश्न) भला अर्जुन के विवाह से कलियुग में विधवा-विवाह होना किस प्रकार सिद्ध होता है ?

(उत्तर) क्योंकि, अर्जुन कलियुग में ही तो हुये हैं। देखो, कल्हण की बनाई हुई राज-तरङ्गिणी की प्रथम तरङ्ग में कहा गया है:—

शतेषु षट्सु सार्द्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले
कलेर्गतेषु वर्षाणा मभवन् कुरुपाण्डवाः ॥

अर्थात्, कलियुग के आरम्भ होने के ६५३ वर्ष पश्चात् कौरव और पाण्डव लोग हुये।

अब तो मानना पड़ेगा कि, कलियुग में भी विधवा-विवाह हुये और द्विजों में हुये न कि, शूद्रों में, क्योंकि; अर्जुन क्षत्रिय थे। और उनकी सन्तान उचित सन्तान (जायज़) मानी गई क्योंकि इरावान् को कोई हरामी बेटा नहीं बता सकता!

(५) कन्यादान-विषयक-आक्षेप

पाँचवाँ आक्षेपः—प्रायः यह आक्षेप किया जाता है कि, जब पिता एक बार अपनी कन्या का दान कर चुका तो दी हुई वस्तु पर फिर उसका अधिकार नहीं रहता। फिर वह उसी दी हुई कन्या का कन्यादान कैसे कर सकता है? विधवा-विवाह के विरोधियों के विचार से यह एक ऐसा आक्षेप है जिसका कोई उत्तर दे ही नहीं सकता। परन्तु, यह उनकी सर्वथा भूल है।

जो पुरुष यह मानते हैं कि, सतयुग, त्रेता आदि में विधवा-विवाह धर्म्मोक्त था अब निन्दनीय है उनको तो यह आक्षेप उठाना

भी नहीं चाहिये। क्योंकि, उनके लिये तो केवल इतना ही उत्तर पर्य्याप्त है कि, जिस प्रकार सतयुग आदि में विधवाओं के पिता अपनी विधवा कन्याओं के विवाह किया करते थे उसी प्रकार अब भी करेंगे। या जिस प्रकार नागराज ने अपनी कन्या का पुनर्विवाह अर्जुन के साथ किया होगा उसी प्रकार अब भी होना चाहिये। परन्तु, इसके अतिरिक्त कई मुख्य बातें हैं जिनकी मीमांसा आवश्यक है।

हम स्त्री-अधिकार-विषयक अध्याय में भली प्रकार दिखला चुके हैं कि, स्त्री-पुरुष के अधिकार समान हैं। स्त्री भेड़-बकरी की भाँति पति या पिता की जायदाद या सम्पत्ति नहीं है। वह स्वयं एक स्वतन्त्र व्यक्ति है। प्रायः हम देखते हैं कि, यदि किसी मनुष्य के पास भेड़, बकरी, भूमि, स्वर्ण आदि सम्पत्ति हो तो वह उसे :—

(१) अपने प्रयोग में ला सकता है।

(२) दूसरों को बेच सकता है।

(३) दान दे सकता है।

(४) यह मोल या दान लेने वाला पुरुष स्वयं अपने उपयोग में ला सकता है या दूसरों को मोल या दान दे सकता है।

(५) अथवा वह अपने अन्य इष्टमित्रों-सहित सदैव या समयान्तर में उसे भोग सकता है।

(६) प्रत्येक पुरुष जो ऐसी सम्पत्ति का स्वामी है अपनी इच्छानुसार जिस पुरुष को चाहे उसे दे सकता है। इसमें किसी विशेष पुरुष, समय या देश की क़ैद नहीं है।

अब देखना चाहिये कि, स्त्रियाँ उपर्युक्त अंशों में पिता या पति की सम्पत्ति हैं या नहीं। प्रथम पहली दशा को लीजिये। प्रत्येक स्वामी अपनी वस्तु को अपने प्रयोग में ला सकता है। इस अर्थ में कन्या पिता की सम्पत्ति है और उस पर उसका स्वत्व है? क्या कोई पिता अपनी कन्या को भोग सकता है? यह एक ऐसी बात है जिसके लिये प्रमाण देना व्यर्थ है। सभी जानते हैं कि, असभ्य जातियों में भी इससे घोर अपराध या अधर्म्म दूसरा नहीं। इससे स्पष्ट विदित है कि, कन्या अपने पिता की सम्पत्ति नहीं है और न उस पर उसका स्वत्व है।

अब दूसरी बात; अर्थात्, क्या पिता अपनी पुत्री को बेच सकता है? यद्यपि किसी किसी जाति में पुत्रियाँ बेच दी जाती हैं और भारतवर्ष में भी कहीं कहीं रिवाज है; परन्तु यह एक महा अधम प्रथा है जिसको करते हुये पिता भी लज्जित हुआ करते हैं। कन्याओं का बेचना बड़ा असभ्य समझा जाता है।

फिर क्या पिता उसे दान कर सकता है? इस बात का हम सबसे पीछे निराकरण करेंगे।

चौथी बात; अर्थात्, साधारण सम्पत्ति के लिये नियम है

बिनु वसन्त का बाग़ हूँ, प्रिय-वञ्चित अनुराग हूँ !
बिना ताल का राग हूँ, भू-धूसरित पराग हूँ !!

Fine Art Printing Cottage

कि, यदि देवदत्त यज्ञदत्त से कोई वस्तु मोल या दान ले तो उसका पूरा अधिकार है कि, वह स्वयं उसे भोगे या दूसरे को दान या विक्रय कर दे। परन्तु, विधवा-विवाह के महा शत्रु भी यह स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं कि, यदि देवदत्त को यज्ञदत्त अपनी कन्यादान दे तो वह उसे किसी अन्य व्यक्ति को बेच या दान दे सकता है।

इसी प्रकार पाँचवीं बात रही। जैसे; यदि मैं कोई मकान मोल या दान में लूँ तो मुझे पूर्ण अधिकार है कि, मैं स्वयं उसमें रहूँ या अन्य इष्टमित्र-सहित उसको उपयोग में लाऊँ। इसी प्रकार भूमि, फल, अन्न, घृतादि का हाल है। परन्तु, जो पुरुष किसी कन्या को उसके पिता से दान लेता है उसे यह अधिकार नहीं है कि, वह अपने इष्टमित्रों सहित उसका भोग कर सके।

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार स्वामी को अपनी सम्पत्ति किसी पुरुष को, किसी स्थान या काल में बेचने या दान देने का अधिकार है उसी प्रकार पिता कन्या को चाहे किसी पुरुष को नहीं दे सकता। उसके लिये विशेष नियम है। अर्थात्; ब्राह्मण अपनी कन्या को केवल ब्राह्मण को ही विवाह सकता है; क्षत्रिय, क्षत्रिय या ब्राह्मण को; वैश्य, वैश्य, क्षत्रिय या ब्राह्मण को और शूद्र सब को। इसके सिवा अधिकतर तो नियम यह है कि, अपनी ही जाति या वर्ण में कन्या दी जाती है भिन्न वर्णों में नहीं।

इसके अतिरिक्त किसी सम्पत्ति के बेचने या दान देने का अधि-

कार केवल उसके स्वामी को ही होता है अन्य को नहीं। परन्तु, कन्या को देने का अधिकार अन्य को भी है, जैसे लिखा है:—

पिता दद्यात् स्वयं कन्यां भ्राता वानुमतः पितुः।
मातामहो मातुलश्च सकुल्यो बान्धवास्तथा॥
मातात्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदि वर्त्तते।
तस्यामप्रकृतिस्थायां कन्यां दद्युः साजतयः॥

—नारद-वचन (उद्वाहतत्त्व)

अर्थात्; कन्या को पिता या तो स्वयं देवे या पिता की आज्ञा से भाई या नाना या मामा या कुल के बान्धव। यदि यह कोई न हो और माता जीती हो तो माता और यदि माता भी न हो तो जाति वाले देवें।

इन सब बातों से स्पष्टतया सिद्ध होता है कि, कन्या अन्य वस्तुओं के समान सम्पत्ति नहीं है और उसको उसी अर्थ में दान देने का अधिकार किसी को नहीं है।

परन्तु, अब प्रश्न यह होता है कि, हम संसार में 'कन्यादान' 'कन्यादान' सुनते आते हैं। क्या यह सब झूठ है? विवाह पद्धतियों में जो कन्यादान की विधि दी गई है वह असत्य कैसे हो सकती है? क्या पिता को कन्यादान नहीं करना चाहिये? हमारे यहाँ तो कन्यादान का इतना पुण्य माना गया है कि, जिस पुरुष के कन्या नहीं होती वह दूसरे की कन्या का कन्यादान कर देते हैं।

परन्तु, बात यह है कि, यहाँ 'दान' का अर्थ ही दूसरा है। 'दान' संस्कृत के 'दो' धातु से निकला है जिसका अर्थ 'देना' मात्र है। यहाँ 'खैरात' से तात्पर्य्य नहीं। 'दा' और 'दान' का यह सामान्य अर्थ हम को कई शब्दों में मिलता है; जैसे जहाँ यह लिखा है कि, पति स्त्री को वीर्य्यदान करे वहाँ 'दान' का अर्थ 'खैरात' नहीं है। किन्तु, सामान्य अर्थ 'देना' है। 'दान' शब्द भाषा में कुछ विचित्रसा मालूम पड़ता है, परन्तु संस्कृत में यह सामान्य अर्थ का सूचक है। इसी प्रकार 'दद्यात्' 'दद्युः' इत्यादि शब्दों में खैरात का कुछ भी भाव नहीं है। विवाह-संस्कार वस्तुतः पाणि-ग्रहण-संस्कार है जिसमें स्त्री-पुरुष एक दूसरे का हाथ पकड़ते हैं; परन्तु उसका यह तात्पर्य्य नहीं कि, पुरुष स्त्री को खैरात में लेता है या उसका उस पर उसी प्रकार स्वत्व हो जाता है जैसे गाय, बैल या बकरी पर। पति न उसको बेच सकता है न और किसी को दे सकता है, किन्तु गृहस्थाश्रम का धर्म्म पालने के लिये स्त्री की अनुमति लेना भी उसका कर्त्तव्य है। विवाह में कन्यादान केवल सामान्य अर्थ में आया है; अर्थात्, जब कन्या अपने पति को वर लेती है अर्थात् स्वीकार कर लेती है तो पिता कहता है कि, अब तक इसके पालन-पोषण का भार मेरे ऊपर था। अब मैं इसको तुम्हें देता हूँ। तुम इसका पालन-पोषण करना इत्यादि। कन्यादान के इस सामान्य अर्थ को विशेष अर्थ में उस समय ले लिया गया जब भारतवर्ष अपनी प्राचीन

सभ्यता से गिर गया और स्त्रियाँ भोग या सम्पत्ति में गिनी जाने लगीं। उसी समय लोग उनको बेचने तथा मोल लेने लगे और इन पर अत्याचार भी होने लगा। भारतवर्ष के कई धनी पुरुष जिनमें बुद्धि की मात्रा केवल नाममात्र है कन्यादान के अतिरिक्त स्त्री-दान भी करते हैं। यह इस प्रकार होता है कि, पहले तो स्त्री को वस्त्राभूषण आदि से सुसज्जित करके पुरोहित को दान कर देते हैं; फिर पुरोहित वस्त्राभूषण आदि तो ले लेता है और उस स्त्री को उसके पूर्व पति के हाथ बेच देता है। इस प्रकार की प्रथायें अर्द्ध सभ्यता की चिन्ह-स्वरूपा और स्त्री-जाति के लिये बड़ी अपमान सूचक हैं।

यदि कन्यादान का अर्थ ख़ैरात होता तो समस्त संसार की कन्यायें केवल ब्राह्मणों को ही दान दी जाया करतीं और ब्राह्मणों से इतर जातियों के पुरुष कुँआरे ही रह जाते, क्योंकि सिवाय ब्राह्मणों के और किसी को दान लेने का अधिकार नहीं है। जहाँ मन्वादि स्मृतियों में चारों वर्णों के कर्त्तव्य दिखाये हैं वहाँ ब्राह्मणों को छोड़ कर और किसी वर्ण को दान लेने की विधि ही नहीं दी है। परन्तु; हम देखते हैं कि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी कन्यादान लेते हैं। इससे सिद्ध है कि, 'कन्यादान' पद में 'दान' शब्द केवल इसके सामान्य अर्थ 'देने' में आया है।

जब यह सिद्ध हो गया कि, कन्यादान का अर्थ कन्या का ख़ैरात में देना नहीं है तो यह प्रश्न उठ ही नहीं सकता कि, विधवा

कन्या के पुनर्दान करने का पिता को अधिकार नहीं है। देखो, हमने ऊपर जो प्रमाण नागराज की कन्या और अर्जुन के साथ पुनर्विवाह होने का दिया है उसमें 'दत्ता' शब्द प्रयुक्त हुआ है जिससे सिद्ध होता है कि, पूर्व-काल में भी क्षत्रिय राजे अपने दामाद की मृत्यु पर अपनी विधवा लड़की का किसी अन्य पुरुष के साथ पुनः दान कर दिया करते थे।

(६) गोत्रविषयक प्रश्न

कन्यादान के विषय में एक प्रश्न शेष रह जाता है, अर्थात् कन्यादान करते समय पुनर्विवाह में पिता किस गोत्र का उच्चारण करे; क्योंकि विवाह-पद्धति में लिखा है :—

ओं अमुकगोत्रोत्पन्नामिमाममुकनाम्नी मलंकृतां कन्यां प्रति गृह्णातु भवान्।

अर्थात्; अमुक गोत्र में उत्पन्न हुई अमुक नाम वाली इस अलंकृत कन्या को आप ग्रहण करें। यहाँ स्पष्ट है कि, विवाह होने से किसी कन्या का "वह गोत्र जिसमें वह उत्पन्न हुई है" बदल नहीं सकता। यहाँ शब्द 'अमुक गोत्राम्' नहीं है; किन्तु 'अमुक गोत्रोत्पन्नाम्' है। वृहद्वशिष्टसंहिता के चतुर्थ अध्याय में इसी विषय का निम्न श्लोक है :—

अमुष्य पौत्रीममुष्य पुत्रीममुष्यगोत्रजाम्।
इमां कन्यां वरायास्मै वयं तद्विवृणीमहे ॥

अर्थात्; अमुक पुरुष की पौत्री, अमुक की पुत्री, अमुक गोत्र में उत्पन्न हुई को इस वर के लिये हम देते हैं।

यहाँ भी 'अमुक गोत्रजाम्' 'अमुक गोत्र में उत्पन्न हुई' शब्द है। जिस गोत्र में एक स्त्री उत्पन्न हुई है उसी गोत्र की उत्पन्न हुई वह समस्त आयु भर कहलायेगी। कोई यह नहीं कह सकता कि, "वह पति के गोत्र में उत्पन्न हुई है।" "जन्म गोत्र" केवल अगले जन्म में बदल सकता है। इस जन्म में नहीं।

यदि विचार किया जाय तो पता चलता है कि, विवाह के समय गोत्र का उल्लेख केवल इस लिये किया है कि, विवाह पिता गोत्र और माता की छः पीढ़ियों में वर्जित है। अर्थात्; जिस गोत्र में कन्या उत्पन्न हुई है उसी गोत्र में उत्पन्न हुये पुरुष से जो उसकी माता के गोत्र की छः पीढ़ियों में हो, विवाह नहीं हो सकता। डॉक्टरी से भी यह बात सिद्ध है कि, उसी कुल में विवाह करने वाले स्त्री-पुरुषों की सान्तान रोगी होती है। इस बात का पता भारतवर्ष में बहुत कम लगता है क्योंकि यहाँ कुल में विवाह करने की प्रथा है ही नहीं। परन्तु, इस का अधिक अनुभव यूरोप में होता है जहाँ विशेष कर चचेरे भाई-बहिन में विवाह होने की प्रथा है। इस दोष की ओर पाश्चात्य डॉक्टरों का भी ध्यान आकर्षित हुआ है। डॉक्टर बीमिस साहेब (Dr. Bemiss) का कथन है:—

३४ विवाह ख़ून के रिश्तेदारों में हुये, सात तो बाँझ रहीं और २७ के घर सन्तान हुई। २७ विवाहों से उत्पन्न हुये बच्चों की

संख्या १९१ थी। १९१ बच्चों में से ५७ तो बचपन के समय में ही मर गये और इन में से २४ की मृत्यु के कारण निम्न-लिखित थे। शेष के रोगों का पता नहीं।

क्षय रोग से	१५	= २४
मिरगी से	८	
सरसाम से	१	

शेष संख्या में केवल ४६ स्वस्थ थे, ३२ दुर्बल पाये गये, ९ के स्वास्थ्य का पता नहीं और ४७ इस प्रकार रोगी थे:—

दमे से	१९	=४७
मिरगी से	४	
उन्माद से	२	
गूँगे	२	
अर्द्ध उन्मत्त	४	
अन्धे	२	
कुब्जे	२	
कोढ़ी	५	
कम दृष्टि वाले	६	
अति दुर्बल	१	

—आत्माराम-कृत विवाह-आदर्श, पृष्ठ ११८

इन्हीं महाशय ने अन्यथा भी अन्वेषण किया है। इस के अतिरिक्त अन्य महानुभाव भी इसी परिणाम पर पहुँचे हैं। इस

से ज्ञात होता है कि, हमारे ऋषि-मुनियों ने जो यह नियम बनाया था कि, स्त्री उसी कुल या माता की छः पीढ़ियों की न हो। वह सर्वथा धर्म्म तथा विज्ञान के अनुकूल था और इसी लिये उन्होंने विवाह-संस्कार में गोत्र का नाम लेने की प्रथा डाली थी जिससे बात स्पष्ट हो जाय।

जहाँ प्रसिद्ध ऋषियों के नाम पर गोत्रों की गणना की है वहाँ लिखा है:—

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजो गोतमः अत्रिर्वशिष्ठः। काश्यपइत्येते सप्तर्षयः सप्तर्षीणामगस्त्याष्ठमानां यदपत्यं तद्गोत्रमित्याचक्षते।

—पराशर-भाष्य, उद्धृत बौधायन वचन

अथवा:—

जमदग्निर्भरद्वाजो विश्वामित्रोत्रिगोतमाः।
वशिष्ठकाश्यपागस्त्या मुनयो गोत्रकारिणः।
एतेषां यान्यपत्यानि तानि गोत्राणि मन्यते॥

—पराशर-भाष्य, उद्वाहतत्त्वोद्धृत-स्मृति

यहाँ स्पष्ट बताया है कि, जिन ऋषियों के अपत्य अर्थात् सन्तान हैं उसी का नाम गोत्र है।

बहुत से लोगों का कथन है कि, स्त्री विवाह के पश्चात् पति

के गोत्र में हो जाती है। परन्तु, यह उनकी भूल है। वह गोत्र का अर्थ 'गृह' लेते हैं। यदि गोत्र का अर्थ 'गृह' लिया जाय तो ठीक है कि, विवाह के पश्चात् स्त्री पति के घर की हो जाती है। परन्तु, यदि गोत्र का अर्थ वह लिया जाय जो ऊपर के श्लोकों में दिया हुआ है, अर्थात् किसकी सन्तान है या किस कुल में उत्पन्न हुई है तो स्त्री का गोत्र विवाह के पश्चात् की तो बात दूर रही, मरते समय तक नहीं बदल सकता। क्या किसी स्त्री के पिता, पितामह, प्रपितामह उसके विवाह के कारण बदल सकते हैं? अतः यह शङ्का करना कि, पुनर्विवाह के समय कौनसा गोत्र बोला जाय व्यर्थ और असङ्गत है; क्योंकि उस समय भी पहिले विवाह की भाँति पिता का ही गोत्र उच्चरित होगा।

यहाँ एक और युक्ति देते हैं। हम ऊपर बतला चुके हैं कि, विवाह के लिये यह नियम है कि, माता के गोत्र की छः पीढ़ियाँ और पिता का गोत्र सर्वथा वर्जित है। अब यदि स्त्री के विवाह के उपरान्त गोत्र बदल गया होता और अपने पति का ही गोत्र हो जाता तो माता के गोत्र की छः पीढ़ी बचाने का नियम व्यर्थ था; क्योंकि उसका वही गोत्र होता है जो पिता अर्थात् माता के पति का। उससे भी स्पष्ट है कि, विवाह के पश्चात् स्त्री का गोत्र बदला नहीं।

जो लोग मृतक-श्राद्ध को मानते हैं उनको श्राद्ध-तर्पण आदि करने में गोत्र का उच्चारण करना पड़ता है। परन्तु, उन्होंने भी यह नियम कर दिया है :—

संस्कृतायान्तु भार्य्यायां सपिण्डीकरणान्तिकम् ।
पैतृकं भजते गोत्रमूर्ध्वन्तु पतिपैतृकम् ॥

—उद्वाह-तन्त्र

अर्थात्; विवाहिता स्त्री का सपिण्डी कर्म होने तक पिता का ही गोत्र रहता है। तत्पश्चात् पति का गोत्र हो जाता है। यहाँ वंश अर्थात् गोत्र से तात्पर्य्य नहीं है; किन्तु, प्रश्न यह था कि, मृत-स्त्री का पिण्डदान आदि कौन करे और इस कार्य्य के लिये वह किस गोत्र में गिनी जाय। यहाँ यह नियम कर दिया कि, पति के गोत्र में गिनी जाय अर्थात् उन लोगों का जो पति के गोत्र में हैं कर्त्तव्य होगा कि, वह श्राद्ध-तर्पण आदि करें। जो लोग मृतक-श्राद्ध के उद्देश और विवाह के उद्देश में भेद कर सकते हैं वह भली प्रकार जानते हैं कि, गोत्र शब्द विवाह में उसी अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता जिसमें श्राद्ध में। कल्पना कीजिये कि, किसी स्त्री के पालन-पोषण आदि का प्रश्न उठा कि, किस गोत्र अर्थात् कुल के लोगों का कर्त्तव्य है कि, उसे खाना दे; तो यह स्पष्टतया सिद्ध है कि, पिता के कुल वालों पर उसका कोई अधिकार नहीं। पति के कुल वाले अर्थात् पति के भाई-बन्धु ही उस को गुज़ारा देंगे अर्थात् वह पति के कुल में ही गिनी जायगी। परन्तु, यह पूछा जाय कि, यह स्त्री कौन 'गोत्रोत्पन्न' है अर्थात् उसका पिता कौन है तो कौन मूर्ख होगा जो यह उत्तर

दे कि, वह अपने पति के गोत्र में उत्पन्न हुई है। इसी प्रकार :—

स्वगोत्राद् भ्रश्यते नारी विवाहात् सप्तमे पदे ।
पति गोत्रेण कर्त्तव्या तस्याः पिण्डोदकक्रिया ॥

—उद्वाह तन्त्रोद्धृत हारीत वचन

पाणिग्रहणिका मन्त्राः पितृगोत्रापहारकाः ।
भर्त्तुर्गोत्रेण नारीणां देयं पिण्डोदकं ततः ।

—उद्वाह तन्त्रोद्धृत बृहस्पति वचन

इन श्लोकों का अर्थ यह है कि, विवाह के उपरान्त स्त्री अपने पिता के गोत्र से गिर जाती है इसलिये उसकी पिण्डोदक क्रिया (अर्थात् पिण्ड=भोजन, उदक=पानी) , खाना-पीना पति के गोत्र वालों को ही करना चाहिये। यहाँ केवल इतना ही कथन है कि, जब स्त्री विवाहिता हो गई तो पति के घर में आ गई; इस लिये उसी घर के लोगों को पालन-पोषण करना चाहिये। उसको कोई अधिकार नहीं कि, पिता के घर वालों से खाना-पीना माँगे।

(७) कन्यात्व नष्ट होने पर विवाह वर्जित है

विधवा-विवाह के विरुद्ध एक आक्षेप यह भी किया जाता है कि, लड़की की उसी समय तक कन्या संज्ञा रहती है जब तक

उसका विवाह नहीं होता। जब एक बार विवाह हो गया तो फिर उस को कन्या नहीं कह सकते। और विवाह चूँकि केवल कन्या का ही हो सकता है अतः पुनर्विवाह का निषेध सिद्ध है। यह युक्ति इस प्रकार दी जाती है :—

(१) विवाह-संस्कार केवल कन्या का हो सकता है।

(२) विधवा की कन्या संज्ञा नहीं।

(३) अतः विधवा का विवाह संस्कार निषिद्ध है।

यहाँ इतने प्रश्न विचारणीय हैं :—

(१) 'कन्या' शब्द का क्या अर्थ है ?

(२) क्या 'कन्या' शब्द किसी अन्य अर्थ में भी कभी प्रयुक्त होता है ?

(३) क्या 'विवाह-संस्कार' विषयक स्थलों पर 'कन्या' शब्द इसी योग रूढ़ि अर्थ में प्रयुक्त हुआ है अथवा साधारणतया ?

(४) क्या विवाह-संस्कार के सम्बन्ध में 'कन्या' से इतर अन्य शब्द भी प्रयुक्त हुये हैं ?

(५) विवाह-संस्कार के उद्देश का आधार केवल 'शब्द' पर कैसे हो सकता है ?

हम पहले 'कन्या' शब्द के अर्थ पर विचार करते हैं। यह शब्द वस्तुतः भिन्न-भिन्न स्थलों पर भिन्न-भिन्न अर्थों में आया है।

प्रथम उस लड़की को 'कन्या' कहते हैं जिसका न विवाह हुआ हो और न वह क्षत योनि हो।

दूसरे उस लड़की को भी 'कन्या' कहते हैं जिस का विवाह न हुआ हो, परन्तु बिना विवाह के ही पुरुष के साथ सङ्गम हो गया हो। इस विशेष अर्थ में 'कन्या' शब्द का प्रयोग पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी के—

कन्यायाः कनीन च ४। १। ११६।

सूत्र में किया है। इस पर काशिका में लिखा है :—

असंस्कृतविवाहकर्मिकैव कन्या कन्यात्वेन गृह्यते। तेन ततः प्राक् परोपभुक्तापि तत्वन्न जहाति नापि विप्रतिषिद्धतेति।

अर्थात्; जिसका विवाह-संस्कार नहीं हुआ उसको कन्या कहते हैं और उससे पहले पर-पुरुष से भोगी जाकर भी वह अपने कन्यात्व को नहीं छोड़ती और न इसमें विप्रतिषेध है।

महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि ने भी इस सूत्र पर प्रश्न उठाया है :—

इदं विप्रतिषिद्धम्। कोविप्रतिषेधः। अपत्यमिति वर्त्तते। यदि च कन्या नापत्यम्। अथापत्यं न कन्या। कन्या चापित्यं चेति विप्रतिषिद्धम्। नैतद्विप्रतिषिद्धम्। कथम्। कन्या शब्दोऽयं पुंसाभिसम्बिन्धपूर्वके संप्रयोगे निवर्त्तते। या चेदानी प्रागभिसम्बन्धात् पुंसा सह संप्रयोगं गच्छति तस्यां कन्या

शब्दो वर्त्तत एव । कन्यायाः कन्योक्तायाः कन्याभिमतायाः सुदर्शनायाः यदपत्यं स काकनीन इति । अ० ४ । पा० १ । आ० ४ ।

इसी पर भाष्य प्रदीप में कैय्यट महोदय लिखते हैं :—

शास्त्रोक्तो विवाहोऽभिसम्बन्धस्तत्पूर्वके पुरुषसंयोगे कन्या शब्दो निवर्त्तते । या तु शास्त्रोक्तेन विवाहसंस्कारेण विना पुरुषं युनक्ति सा कन्यात्वं न जहाति ।

इन सब का तात्पर्य्य यह है कि, शास्त्रोक्त विवाह से पुरुष-सङ्ग होने पर कन्यात्व छूटता है और बिना विवाह के पुरुष-सङ्ग से कन्यात्व नहीं छूटता । इन से तीन बातें स्पष्ट हैं :—

१—जो लड़की विवाहित है, परन्तु क्षत योनि नहीं वह 'कन्या' है क्योंकि पतञ्जलि मुनि कहते हैं कि, "कन्या शब्दोऽयं पुंसाभिसम्बन्धपूर्वके संप्रयोगे निवर्त्तते" अर्थात्, पुरुष का संयोग होने पर 'कन्यात्व' छूटता है पहले नहीं ।

२—अविवाहिता स्त्री पुरुष-संयोग होते हुए भी 'कन्या' है जिसके लिये पतञ्जलि मुनि लिखते हैं :—

"या चेदानी प्रागभिसम्बन्धात् पुंसा सह संप्रयोगं गच्छति तस्यां कन्या शब्दो वर्त्तत एव ।"

३—जो विवाहिता और क्षत योनि हो वह कन्या नहीं ।

'कन्या' का तीसरा अर्थ साधारण स्त्री भी है। श्रीवामन शिवराम आप्टे जी अपने संस्कृत-अङ्गरेजी कोष में 'कन्या' शब्द के कई अर्थ देते हैं, :—

(१) An unmarried girl or daughter, एक अविवाहिता लड़की या पुत्री।

(२) A girl ten years old, दस वर्ष की अवस्था वाली लड़की।

(३) A virgin, maiden, अक्षत योनि या अविवाहिता।

(४) A woman in general, एक साधारण स्त्री।

साधारण स्त्री के अर्थ में कन्या शब्द मनु-स्मृति, अ० १० के ११ वें श्लोक में भी आया है :—

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।

इस पर कुल्लूक भट्ट लिखते हैं :—

अत्र विवाहासंभवात्कन्याग्रहणंस्त्रीमात्रप्रदर्शनार्थम्।

अर्थात्; यहाँ विवाह असम्भव होने के कारण 'कन्या' शब्द 'स्त्रीमात्र' के लिये आया है।

गणरत्न महोदधि में पण्डित वर्धमान कवि लिखते हैं :—

कनति शोभते वपुषा कन्या।

अर्थात्; शरीर से शोभायमान होने से कन्या कहलाती है।

कनन्ति गच्छन्ति तस्यां रागिमनोनयनानीति कन्या। कुमारी।

—नाम गणाध्याय १, श्लो० ३८

या जिसमें रागी पुरुष का मन और आँखें जावें (आकर्षित हों) वह कन्या या कुमारी है।

उणादि कोष में स्वामी दयानन्द लिखते हैं:—

कन्यते दीप्यते काम्यते गच्छति वा सा कन्या कुमारी वा।

—पाद ४, सूत्र ११२

अर्थात्; जो शोभायमान होती या कामना की जाती है या जाती है उसे कन्या या कुमारी भी कहते हैं।

'कन्या' शब्द विवाहित लड़की के लिये भी आता है; जैसे—

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायाम्बष्ठोनामजायते।

—मनु-स्मृति; अ० १०, श्लोक ८

इसे कुल्लूक भट्ट और स्पष्ट करते हैं:—

कन्याग्रहणादत्रोढायामित्यध्याहार्यम्।

कन्या शब्द से यहाँ विवाहिता कन्या समझनी चाहिये।

साधारण पुत्री के अर्थ में भी कन्या शब्द आता है चाहे वह विवाहित हो या अविवाहित; जैसे:—

अनुज बधू भगिनी सुत नारी।
सुन शठ ये कन्या सम चारी॥

अर्थात्; अनुज-बधू, भगिनी और पुत्र-बधू कन्या के समान हैं। अर्थात् अगम्य हैं, जिस प्रकार कन्या अर्थात पुत्री। यहाँ विवाहिता और अविवाहिता दोनों से ही तात्पर्य्य है। अपनी पुत्री विवाहिता और क्षत योनि भी अगम्य ही है।

हमारा कहना यह है कि, विवाह-संस्कार में जहाँ कन्या शब्द आया है वहाँ साधारण पुत्री के अर्थ में आया है वहाँ पहले विवाहित या अविवाहित विशेषण लगाना अन्याय है। जो लोग 'कन्यात्व' और 'विवाह संस्कार के अधिकार' को एक दूसरे से सम्बद्ध करते हैं वह अपनी ही युक्ति को काटते हैं; क्योंकि हम ऊपर दिखा चुके हैं कि, 'कन्या' शब्द सभी अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। कहीं-कहीं तो 'कन्या' शब्द विवाहित और क्षत योनि के लिये भी आया है: जैसे :—

अहल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा।
पञ्चकन्याः स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्॥

अर्थात्: अहल्या, द्रौपदी, तारा, कुन्ती और मन्दोदरी इन पाँच कन्याओं का सर्वदा स्मरण करे जो महापातक का नाश करने वाला है।

यहाँ ये पाँचों स्त्रियाँ विवाहित तथा क्षत योनि दोनों थीं तो भी इनके लिये 'कन्या' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

यदि तुम 'कन्या' शब्द को केवल उसी अर्थ में लोगे जिसमें पाणिनि के सूत्र (कन्यायाः कनीन च) में प्रयुक्त हुआ है और इसी प्रकार की कन्या को विवाह का अधिकार दोगे तो बड़ा अनर्थ होगा; क्योंकि समस्त "वेश्यायें" "बिना विवाह पुरुष-संयोग" के कारण कन्यायें हुईं हैं और उनको विवाह का अधिकार ! परन्तु; बाल-विधवा अक्षत योनि धार्मिका लड़की को विवाह का अधिकार नहीं। कहो कैसा अन्धेर है !

वस्तुतः विवाह के मन्त्रों में 'कन्या' से इतर 'नारी', 'सूर्या' आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ है ।

यदि बाल-विधवाओं को संस्कार का निषेध होता तो वशिष्ठ, मनु आदि अपनी स्मृतियों में "पुनः संस्कारमर्हति", 'फिर संस्कार के योग्य है" ऐसा न लिखते। क्या उन लोगों को यह आक्षेप नहीं सूझता था ? केवल एक शब्द पर समस्त विवाह के गम्भीर प्रश्न को निर्भर कर देना और विवाह के उद्देश, अधिकार, कर्त्तव्य सब पर पानी फेर देना न्याय-विरुद्ध है ?

पाणिनि मुनि के जिस सूत्र पर इतना झगड़ा मचाया गया है वहाँ 'कन्या' शब्द विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है; क्योंकि वहाँ 'कानीन' शब्द सिद्ध करना था। यदि उसे सूत्र में 'कन्या' शब्द को साधारण (स्त्रीमात्र) अर्थ में लेते तो प्रत्येक पुरुष कानीन

होता; अतः वहाँ कन्या शब्द को विशिष्ट कर दिया। परन्तु, इसका यह अर्थ नहीं कि, कन्या शब्द अन्य स्थलों में भी इसी अर्थ में आता है। हम इसका अपवाद कई प्रमाणों द्वारा ऊपर दे चुके हैं।

(८) बाल-विवाह को रोकना चाहिये न कि विधवा-विवाह की प्रथा चलाना

कुछ लोगों का विचार है कि, विधवा-विवाह की आवश्यकता केवल इसलिये पड़ती है कि, भारतवर्ष में बाल-विवाह की प्रथा है। यदि बाल-विवाह रोक दिये जाँय तो विधवायें होंगी ही नहीं। फिर विधवा-विवाह की क्या आवश्यकता होगी? अतः लोगों को चाहिये कि, जो समय विधवा-विवाह के प्रचार में लगाते हैं वह बाल-विवाह के रोकने में व्यय करें।

(उत्तर) यह अधिकांश में ठीक है कि, विधवाओं की इतनी संख्या केवल बाल-विवाह के कारण हुई है। परन्तु, सर्वांश में यह ठीक नहीं। क्योंकि, कभी-कभी दैव-वशात् ऐसा भी हो जाता है कि, पूर्ण युवा अवस्था में विवाह हुआ है और स्त्री विधवा हो गई। यद्यपि बाल्यावस्था में मृत्यु अधिक होती है तथापि ऐसा नियम नहीं है कि, युवा पुरुष मरें ही नहीं। इसलिये बाल-विवाह के रोकने से यद्यपि विधवाओं की संख्या बहुत न्यून होगी तथापि

सौ में एक का होना सम्भव है। इसलिये विधवा-विवाह की आवश्यकता सर्वांश में दूर होना असम्भव ही है।

फिर दूसरी बात यह है कि, बाल-विवाह का रोकना तो अच्छा है। परन्तु, इतने वर्षों के बाल-विवाह के कारण जो करोड़ों विधवायें इस देश में दुख उठा रही हैं उनके लिये क्या उपाय है? भविष्य में बाल-विवाह के रुक जाने से वर्त्तमान विधवाओं का दुख कैसे दूर हो सकेगा?

किसी हैज़े के रोगी से यह कहना कि, सावधानी से रहा करो ठीक नहीं है। परहेज़ से रहना उन लोगों के लिये उपयोगी है जो अभी रोग-ग्रसित नहीं हैं। किन्तु, जो रोगी है उसको तो औषधि देनी ही होगी। यदि बाल-विवाह के अभाव से भविष्य में विधावायें कम होंगी तो जो हो गई हैं उनकी औषधि विधवा-विवाह ही है।

एक प्रकार से बाल-विधवा-विवाह प्रथम विवाह के ही तुल्य है। क्योंकि, बाल-विवाह धर्म्म विरुद्ध होने से न होने के तुल्य है। जब विवाह ही नहीं हुआ तो दूसरा विवाह कैसा? इसलिये बाल-विधवा-विवाह का विरोध तो किसी को भी उचित नहीं है।

बालक और बालिकाओं का विवाह माता-पिता की मूर्खता तथा कतिपय पण्डितों के बहकाने के कारण होता है और इसका दण्ड मुख्य अपराधियों को नहीं दिया जाता; किन्तु उन बालिकाओं को दिया जाता है जो अपनी छोटी अवस्था में किसी विषय की

मीमांसा करने में असमर्थ रहती हैं। यह बड़े अन्धेर की बात है कि, करे कोई और भोगे कोई।

(९) विधवा-विवाह लोक व्यवहार के विरुद्ध है

जिन लोगों को युक्ति नहीं सूझती वह अन्त को लोक-व्यवहार का आश्रय लेते हैं। यह उनका पक्षपात है। वस्तुतः इस प्रकार के लोग संसार में कोई सुधार नहीं कर सकते। ये लोग केवल लकीर पीटना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। उनको यह नहीं मालूम कि, लोक-व्यवन्हार किसके आश्रित है ?

जो विधवा-विवाह के विरोधी विधवा-विवाह को केवल इस लिये त्याज्य समझते हैं कि, लोक में इस का रिवाज नहीं, वह न केवल वेद और स्मृतियों का ही तिरस्कार करते हैं, किन्तु साधारण लोक-हित के भी शत्रु हैं। वस्तुतः यदि लोकाचार ही प्रत्येक कार्य्य के अच्छे-बुरे होने की कसौटी होती तो फिर वेद शास्त्र के पढ़ने और ज्ञान प्राप्त करने की कुछ आवश्यकता न थी। जो कुछ लोक में हो रहा है वह सभी उचित नहीं। यदि लोक में उचित बातें ही होतीं अनुचित न होतीं तो किसी को दुख न होना चाहिये था। हम देखते हैं कि, संसार में इतने दुखी पुरुष रहते हैं। इससे पता चलता है कि, लोक में उचित और अनुचित दोनों प्रकार के काम होते रहते हैं। इसीलिये लोकाचार कर्त्तव्याकर्त्तव्य की कसौटी नहीं समझा गया। इसका ज्ञान तो शास्त्र और तर्क से होता है।

यदि हम देखते हैं कि, लोक में विधवा-विवाह को बुरा समझते हैं तो उसके साथ ही यह भी देखते हैं कि, इस भूल के कारण सहस्रों हानियों का भार उठाते हैं, अतएव यह कोई युक्ति नहीं है कि, अमुक कार्य्य लोक में देखा नहीं जाता।

क्या तुमको पता है कि, लोक में प्रथायें किसी प्रकार चलती हैं ? जब विधवा-विवाह शास्त्रोक्त है तो अवश्य ही प्राचीन-काल में प्रचलित था। फिर इस प्रचलित संस्था को जिसने तोड़ा उसने लोकाचार के विरुद्ध कार्य्य किया और उसके अनुयायी अधिक हो जाने से लोकाचार बदल गया। इसी प्रकार यदि इस समय विधवा-विवाह की प्रथा नहीं है तो बहुत शीघ्र ही यह प्रथा फिर संस्थित हो सकती है यदि हम सब इसको चलाने लगें।

(१०) विधवा-विवाह आर्य्य सामाजिकों के लिये है। जो आर्य्य सामाजिक नहीं उनको इससे घृणा करनी चाहिये

बहुत से लोग समझते हैं कि, विधवा-विवाह आर्य्य सामाजिकों के ही लिये है। जो किसी कारण आर्य्य-समाज के सिद्धान्तों को नहीं मानते उनको विधवा-विवाह में सहायता नहीं देनी चाहिये।

परन्तु, यह उनकी भूल है। इसमें सन्देह नहीं कि, आर्य्य सामाजिक पुरुषों ने विवाह में अधिक भाग लिया है। परन्तु,

सैकड़ों मनुष्य आर्य्य-समाज से कुछ सम्बन्ध न रखते हुये भी विधवा-विवाह को उचित समझते हैं।

देखो, जिस समय श्री० पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बङ्गाल में विधवा-विवाह का प्रश्न उठाया उस समय आर्य्य समाज का जन्म भी नहीं हुआ था और आज कल भी जिनकी आँखें खुली हैं और जिनके कानों में रुई नहीं लगी वह अवश्य विधवा-विवाह के अनुकूल है। बिजनौर के श्री० श्रोत्रिय शङ्करलाल जी आर्य्य सामाजिक न थे। वह विधवा-विवाह में उसी प्रकार गणेश-पूजन कराते थे जिस प्रकार कट्टर से कट्टर सनातन-धर्म्मी करते हैं। वृन्दावन के गोस्वामी राधाचरण जी आर्य्य सामाजिक नहीं; किन्तु विधवा-विवाह के पक्षपाती हैं। प्रयाग के कायस्थ पाठशाला के भूतपूर्व संस्कृत प्रोफ़ेसर श्री० पं० सुदर्शनाचार्य्य जी ने बाल-विधवा से अपना विवाह किया। वह आर्य्य समाज में नहीं। क्वीन्स कॉलेज बनारस के संस्कृत के प्रिन्सिपल तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के वायस चैंस्लर श्री० डॉक्टर गङ्गानाथ जी झा विधवा-विवाह के पक्ष में हैं; परन्तु वह आर्य्य-समाज के सभासद नहीं। ऑनरेबिल सी० वाई० चिन्तामणि जी अर्य्य समाज में नहीं हैं, परन्तु वह विधवा-विवाह को देश हित के लिये आवश्यक समझते हैं। बड़ोदा के गायकवाड़ नरेश ने तो अपने यहाँ नियम कर दिया है कि, जो पुरुष विधवा-विवाह में विघ्न डालेगा वह दण्डनीय होगा। इतने पुरुषों के विधवा-विवाह के पक्ष में होते हुये यह नहीं कहा जा सकता कि, विधवा-विवाह

केवल आर्य्य-समाज का ही सिद्धान्त है। आज कल सैकड़ों विधवा-विवाह आर्य्य-समाज के बाहर भी हुये हैं और होते रहते हैं। अब तो सनातन-धर्म्म-सभा के कुछ लोग भी इनमें सम्मिलित होने में सङ्कोच नहीं करते। हम यहाँ इस प्रकार के थोड़े-से उदाहरण देते हैं:—

(१) १८ अप्रेल १९१९ को रुड़की, ज़िला सहारनपुर में सनातन-धर्म्म-सभा के एक पण्डित के घर विधवा-विवाह हुआ और सनातन-धर्म्म के अन्य सभ्य हर्षपूर्वक इसमें सम्मिलित हुये।

(२) जावड़ी ज़िला करनाल में एक सनातन-धर्म्मी गौड़ ब्राह्मण ने अपनी १९ वर्ष की बाल-विधवा लड़की का विवाह १९ अप्रेल १९१९ की रात्रि को पं० मानूराम जी गौड़ ब्राह्मण के साथ किया। यह भी सनातन-धर्म्मी थे।

इसके अतिरिक्त बहुत से विवाह इस प्रकार के सनातन-धर्म्मियों द्वारा हो चुके हैं। आर्य्य-समाज के सम्बन्ध से जो बाल-विधवा-विवाह हुये हैं उनकी संख्या तो गणना से बाहर है। पाठकगण प्रत्येक पत्र में नित्य प्रति देख ही सकते हैं।

सनातन-धर्म्म-सभा में इस समय जो कुछ विरोध विधवा-विवाह का हो रहा है वह न केवल भ्रममूलक और स्वार्थप्रेरित ही है; किन्तु आश्चर्य्यजनक भी है, क्योंकि सनातन-धर्म्म के सिद्धान्तानुसार जो पुरुष या स्त्री १०० योजन से भी 'गङ्गा' का पवित्र नाम ले ले, उसके असंख्य पाप छूट जाते हैं। फिर क्या कारण

है कि जिस पातक के कारण विधवा को वैधव्य का दुख प्राप्त हुआ वह गङ्गाजल में डुबकियाँ लगा कर भी वैसे का वैसे ही बना रहे और उसमें किसी प्रकार की कमी न हो ?

(११) पति-पत्नी का अटल और अटूट्य सम्बन्ध

कुछ विधवा-विवाह के विरोधी आक्षेप करते हैं कि, विवाह-रूपी सम्बन्ध शरीर का शरीर के साथ नहीं, किन्तु आत्मा का आत्मा के साथ है। आत्मा अजर और अमर है। शरीर नाश-वान है। पति के मरने का तात्पर्य्य यह है कि, शरीर मर गया परन्तु, जिसके साथ विवाह हुआ था अर्थात् आत्मा; वह तो मरा नहीं, इसीलिये विधवा स्त्री को किसी प्रकार विवाह करना उचित नहीं।

समाधान—जो लोग ऐसा कहते हैं वह वस्तुतः आत्मा के स्वरूप को न समझ कर शब्द-जाल में फँसे हुये हैं। वस्तुतः यह कहना सर्वथा भ्रममूलक है कि, विवाह आत्मा के साथ होता है। यदि गूढ़ दृष्टि से देखा जाय तो विवाह न तो शरीर का शरीर के साथ, न आत्मा का आत्मा के साथ, किन्तु स्त्री-लिङ्गयुक्त शरीर वाले आत्मा का पुल्लिङ्गयुक्त शरीर वाले आत्मा के साथ है। वस्तुतः आत्मा न स्त्री है न पुरुष। वह कभी स्त्री का शरीर धारण करता है कभी पुरुष का। विवाह का सम्बन्ध केवल मृत्यु-पर्य्यन्त रहता है। तत्पश्चात् न कोई किसी की स्त्री है न कोई किसी का

पति। इसलिये यह कहना कि, पति के मरने के पश्चात् भी वह स्त्री उस आत्मा की पत्नी है जो शरीर छोड़ गया, सर्वथा निर्मूल है। कल्पना कीजिये कि, बारह वर्ष की स्त्री का पति मर गया। उसकी अवस्था उस समय १६ वर्ष की थी। अब पति का यह आत्मा सम्भव है, स्त्री का जन्म ले, सम्भव है पुरुष का, सम्भव है किसी पशु-पत्ती का। यदि स्त्री का जन्म लिया तो जिस समय तक वह विधवा २५ या २६ वर्ष की होगी उस समय तक उसके पूर्व पति का आत्मा स्त्री-शरीर में जाकर किसी अन्य पुरुष की पत्नी बना होगा। उस समय उस में अपनी पूर्व पत्नी के प्रति कुछ भी भाव न होंगे। सम्भव है कि, उसी आत्मा ने उस विधवा के भाई के घर जन्म लिया तो यह अपनी पूर्व पत्नी को बुआ-बुआ कह कर पुकारता होगा। क्या सम्भव है कि, ऐसी दशा में वह विधवा अपने भाई के उस छोटे लड़के से पति का भाव प्रकट कर सके। यदि पशु या पत्ती हुआ तो और भी विचित्र बात होगी।

जो लोग यह कहते हैं कि, हिन्दू-स्त्री का पातिव्रत केवल इसी संसार में समाप्त नहीं होता वरन् उसकी डोर अन्य लोकों से लगी है, उन्होंने अपने शब्दों के ऊपर कुछ भी विचार नहीं किया। कल्पना कीजिये कि, विधवा मर जाय और किसी अन्य स्थान पर लड़की का ही उसको जन्म मिले तो क्या वह लड़की फिर किसी पुरुष से विवाह ही न करेगी और अपने पहले जन्म के पति की ही स्मृति में मग्न रहेगी? क्या यह सम्भव है?

यदि विवाह का अर्थ आत्मा का आत्मा के साथ सम्बन्ध है तो रण्डुए क्यों पुनर्विवाह करते हैं ? उन के लिये यह युक्ति कहाँ जाती है ? वस्तुतः देश और जाति तथा धर्म्म की उन्नति शब्दों की दुन्दुभी बजाने से नहीं होती। वास्तविक रीति से धर्म्माधर्म्म का विचार करना ही हम को पाप और अधर्म्म से बचा सकता है।

ग्यारहवाँ अध्याय

विधवा विवाह के प्रचलित न होने से हानियाँ

(१) व्यभिचार की वृद्धि

स अध्याय में हम इस बात की मीमांसा करेंगे कि, यदि विधवा-विवाह सर्वथा रोक दिया जाय तो क्या हानि होगी।

सब से बड़ी हानि जो विधवा-विवाह के प्रचलित न होने के कारण आज कल भारतवर्ष में हो रही है वह आचार का बिगड़ना है। वस्तुतः विधवा-विवाह एक आचार-सम्बन्धी प्रश्न है और जो लोग इसका विरोध करते हैं उनकी सब से प्रबल युक्ति यही है कि, इसके प्रचार से आचार की हानि होगी। परन्तु, तमाशा यह है कि, यह जिस बात का कारण समझा जा रहा है ठीक उस के अभाव में ही रोग की वृद्धि हो रही है। जिस प्रकार साधारण विवाह गृहस्थाश्रम को ठीक-ठीक चलाने और व्यभिचार के रोकने के लिये है उसी प्रकार विधवा-विवाह न होने के कारण भी ब्रह्मचर्य्य व्रत को क्षति पहुँच रही है और व्यभि-

चार बढ़ रहा है। केवल विधवा-विवाह रोकने से ही स्त्री-पुरुषों की वृत्तियाँ नहीं रुक सकतीं। और जब तक स्वाभाविक वृत्तियाँ बनी हुई हैं उस समय तक उनकी पूर्त्ति करनी होगी।

यदि आप भारतवर्ष की विधवाओं की ओर ध्यान दें और इनके वास्तविक जीवन पर दृष्टि डालें तो यह बात भली-भाँति विदित हो जायगी कि, उनके आन्तरिक जीवन ऐसे नहीं हैं जैसे हम समझे बैठे हैं। उनके भीतर अनेक प्रकार के घुन लगे हुये हैं जो समस्त आर्य्य-जाति को पाताल की ओर ले जा रहे हैं।

१८८१ ई० की मनुष्य-गणना के अनुसार भारतवर्ष में कुल विधवाओं की संख्या २ करोड़ से कम थी; परन्तु १९११ ई० की मनुष्य-गणना बताती है कि, भारतवर्ष में कुल विधवायें २ करोड़ १९ हज़ार हैं। इस गणना को हुये बारह वर्ष हो चुके जिनमें युद्ध-ज्वर, महामारी तथा इससे भी भयानक यूरोप का विश्वव्यापी युद्ध भी हो चुका है। इसलिये विदित होता है कि, सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार विधवाओं की संख्या में एक अद्भुत और शोकजनक आधिक्य हुआ होगा। १८८१ ई० की मनुष्य-संख्या के अनुसार ९ वर्ष तक की विधवायें ६३ हज़ार ५ सौ सत्तावन थीं; परन्तु १९११ में ९ वर्ष तक की विधवायें ७७ हज़ार ९ सौ ८५ हो गई। इसी प्रकार २४ वर्ष तक की विधवायें १८८१ ई० में ६ लाख दस हज़ार ९२ थीं; परन्तु १९११ ई० में इसी अवस्था की विधवाओं की संख्या सात लाख दो हज़ार हो गई। हज़ारों

विधवायें इस प्रकार की हैं जिनकी अवस्था अभी एक या दो वर्ष की ही है और जो अभी भली प्रकार 'माँ' और 'बाप' शब्द भी उच्चारण नहीं कर सकतीं। इनका जीवन अभी आरम्भ ही हुआ है और अभी समस्त आयु काटने को पड़ी है। इनके पास कोई साधन नहीं है जिससे वह ब्रह्मचर्य्य-व्रत भली प्रकार पाल सकें। इनका ब्रह्मचर्य्य-व्रत निम्न-लिखित अवस्थाओं में ही सम्भव हो सकता था:—

(१) उनको इन्द्रिय-दमन की शिक्षा दी जाती और उन सब के आत्मा इतने दृढ़ होते कि, वह ब्रह्मचर्य्य-व्रत के गौरव को भली प्रकार समझ सकतीं। उनको योग सिखाया जाता और वह विषयों से इतनी घृणा करने लगतीं कि, उनको कभी विषय-गमन की इच्छा ही न होती।

यदि ऐसा होता तो व्यभिचार में **किसी अंश तक** अवश्य कमी हो जाती। परन्तु, नितान्त अभाव तो असम्भव ही था। क्योंकि इतिहास के अवलोकन से विदित होता है कि, समस्त संसार जितेन्द्रिय और योगिराज हो ही नहीं सकता। संसार में भिन्न-भिन्न स्थिति के पुरुष हैं। कहा है:—

विचित्र रूपाः खलु चित्त वृत्तयः

अतः यह कहना दुस्तर है कि, हम संसार की सभी विधवा स्त्रियों को योगी बना देंगे और वह अपनी इन्द्रियों को वश में करने लगेंगी।

यदि थोड़ी देर के लिये यह कल्पना भी कर ली जाय कि, यह सब योगी हो जाँयगी तब भी इतिहास से हम को जोएक बात और विदित होती है वह यह कि, जब काम का वेग होता है तो विचारी अबलाओं का तो कहना ही क्या है भले-भले योगिराजों तक के छक्के छूट जाते हैं और वह भय तथा लज्जा को छोड़ कर अपने आप को बिगाड़ लेते हैं फिर चाहे थोड़ी देर के पश्चात् उनको पछताना ही क्यों न पड़े ! बहुधा देखा गया है कि, लोग बिगड़ कर पछताते हैं और थोड़े समय के पश्चात् पछताना भूल कर फिर वही काम कर बैठते हैं। इस प्रकार व्यभिचार और पछताना एक दूसरे के पश्चात् आयु-पर्य्यन्त जारी रहते हैं और उनका अन्त होने को नहीं आता। पुराणों ने तो बड़े-बड़े ऋषियों के गले ऐसे-ऐसे दोष मढ़ दिये हैं जिनको सुनकर हृदय कम्पायमान होता है; फिर जो पुरुष मानते हैं कि, ऐसे ऋषि-मुनि भी काम के प्रकोपों से सुरक्षित न रह सके वह विधवाओं को ब्रह्मचर्य्य-व्रत पालने पर बाधित करने का किस मुँह से साहस कर सकते हैं ? यह कह देना तो सरल है कि, विधवाओं को ब्रह्मचारिणी बनकर रहना चाहिये, इन्द्रिय-निग्रह सीखना चाहिये और अपने पूर्व पति की स्मृतिमात्र से जीवन का अवलम्बन करना चाहिये। परन्तु, ब्रह्मचर्य्य और इन्द्रिय-निग्रह खिलौना तो है नहीं जिनसे सभी खेल सकें। यह तो वह टेढ़ी खीर है जो भले-भलों के गलों में अटकती है। प्रिय पाठक-

गए ! अपने कलेजे पर हाथ रख कर अपने आन्तरिक जीवन पर पर दृष्टि डालिये, अपने अभ्यान्तरिक भावों को टटोलिये और सत्य-सत्य कहिये कि, आपकी इस विषय में क्या सम्मति है।

(२) विधवाओं के व्यभिचार में उस समय भी कमी आ सकती थी जब उनको पुरुषों का दर्शन-स्पर्शन ही न होता और वह सब की सब निर्जन स्थान में रख दी जातीं।

परन्तु; यह केवल असम्भव ही नहीं, किन्तु आचार की दृढ़ता का सब से अधम उपाय है। क्योंकि धर्म्म में स्वतन्त्रता आवश्यक है। जिसकी जिह्वा काट दी गई उसके लिये यह कहना कि, यह सत्यवादी है अनर्थ और मिथ्यावाद है। इसी प्रकार यदि विधवाओं को निर्जन स्थान में रख दिया जाय तो उनको धर्म्मात्मा नहीं बनाया जा सकता। धर्म्मपरायणता आन्तरिक इच्छा पर निर्भर है। जिस प्रकार पुरुष बिना स्त्रियों के भी कुचेष्टा करते हैं इसी प्रकार स्त्रियाँ भी बिना पुरुषों के कुचेष्टा कर सकती हैं, और व्यभिचार के अनेक उपाय ढूँढ़ सकती हैं। जिन स्त्रियों को व्यभिचार से रोकने के लिये परदे के भीतर रक्खा जाता है और उन पर अनेक प्रकार के पहरे बिठाये जाते हैं उन्हीं के गुप्त रहस्य बड़े भयानक सिद्ध हुये हैं। मुग़ल बादशाहों ने जब अपनी पुत्रियों का विवाह करना छोड़ दिया तो वह कड़े से कड़े परदे में रहती हुईं भी अनर्थ करने लगीं जैसा कि, इटली के यात्री मनूची के लिखे हुए इतिहास से प्रकट होता है।

(३) यदि समस्त पुरुष जितेन्द्रिय हो जाँय तो भी किसी अंश तक विधवाओं के ब्रह्मचर्य्य-व्रत पालन में सहायता मिल सकती है।

परन्तु, यह भी उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार समस्त स्त्री-वर्ग का योगी बन जाना। प्रायः देखा तो यह गया है कि, निर्लज्ज पुरुष विधवाओं को पहले से ही बहकाना आरम्भ कर देते हैं और जब वह एक दो-बार अपने धर्म्म को नष्ट कर बैठती हैं तो फिर उनका स्वभाव भी वैसा ही हो जाता है और उनको किसी प्रकार भी कुचेष्टा करने में सङ्कोच नहीं होता।

इस समय भारतवर्ष में इतनी विधवाओं की विद्यमानता न केवल विधवाओं को ही, किन्तु अन्य मनुष्यों को भी व्यभिचारी और व्यभिचारिणी बना रही है। यह इस प्रकार होता है कि, जो पुरुष युवती विधवाओं को पति-रहित और स्वतन्त्र देखते हैं वह उन पर आसक्त होकर उन्हें बहकाने में कृतकार्य्य हो जाते हैं और विधवायें भी अपनी युवावस्था के भार को न सँभाल सकने के कारण अपना सतीत्व नष्ट कर बैठती हैं। इस प्रकार न केवल यह विधवायें ही भ्रष्ट होती हैं, किन्तु इनके साथ-साथ अधिकांश पुरुष भी पतित हो जाते हैं।

(प्रश्न) क्या इसी प्रकार लोग सधवाओं को भी नहीं बिगाड़ते ?

(उत्तर) सधवाओं को बिगाड़ने की प्रति शतक एक की

सम्भावना है, परन्तु विधवाओं के बिगाड़ने की सौ में ९९ की सम्भावना है। सधवाओं को अपनी विषयपूर्त्ति के साधन, अपने पति का भय और बिगाड़ने वाले पुरुषों को भी इनके पतियों से भय होता है अतएव वे सुरक्षित रह सकती हैं। जिसके पास पुष्कल खाने को है वह भला भिक्षा क्यों माँगेगा; परन्तु जो कई दिन का भूखा है वह आत्मगौरव रखते हुये भी परवश होकर हाथ पसारने लगता है।

विधवाओं के बिगड़ने का गौण कारण उनकी जीविका का अभाव भी होता है, क्योंकि स्त्रियों की जीविका का एकमात्र आश्रय उनका पति ही होता है। जब पति मर जाता है तो उनको पति के भाई या अपने भाइयों के आश्रय में रहना पड़ता है। उस समय जो-जो अत्याचार उनको सहन करने पड़ते हैं उनको वही पुरुष जान सकते हैं जिनके हृदय में दूसरों के लिये सहानुभूति है। देवरानी-जिठानी के सदा के ताने, समस्त दिन भर का गृहस्थी का कड़ा कार्य्य और फिर भी पेट के लिये भोजनों की कमी !! यह दुख कभी-कभी इन को अपने सन्मार्ग से डिगा देते हैं और वह उन प्रलोभनों में फँस जाती हैं जो नीच पुरुष अवसर तकते हुये उन के सामने रक्खा करते हैं।

जो पुरुष विधवा-स्त्रियों से अनुचित सम्बन्ध कर बैठते हैं उन की निज स्त्रियों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। कलह और लड़ाई-झगड़ा बढ़ते-बढ़ते प्रेम का ह्रास हो जाता है और

स्त्रियाँ स्वभावतः अपने ऐसे व्यभिचारी पतियों से घृणा करते-करते पातिव्रत धर्म्म से च्युत हो जाती हैं।

जिस देश में स्त्री-पुरुषों का एक बड़ा अङ्ग इस प्रकार धर्म्म-च्युत हो जाता है उस देश की समस्त स्थिति बिगड़ जाती है। कहावत है कि, एक मछली समस्त तालाब को गन्दा कर देती है, फिर जिस भारतवर्ष-रूपी तालाब में २ करोड़ १९ हजार मछलियाँ हों उसके गन्दा होने में सन्देह ही क्या रहा ? जब एक बार वायु-मण्डल व्यभिचार के भावों से पूरित हो चुका तो यह दुर्गन्ध समस्त घरों में फैल जाती है और वृद्धों से लेकर बच्चों तक सभी के जीवन पर इस का बुरा प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः विधवायें एक चिनगारी हैं जो भारत-रूपी रुई को जला देने के लिये काफ़ी हैं। इस का एकमात्र इलाज यही है कि, विधवा-विवाह का प्रचार किया जाय।

(२) वेश्याओं का आधिक्य

आप यदि भारतवर्ष की अवस्था पर विचार करें तो एक भयानक दृश्य सामने आ जाता है। प्रत्येक नगर की मुख्य गलियों और बाज़ारों के अड्डे आज कल वेश्याओं के निवास-स्थान हो रहे हैं। लखनऊ, प्रयाग, बनारस, कलकत्ता जिस ओर निकल जाइये बड़े-बड़े व्यापारियों के सिरों पर वेश्यायें बैठी हुई हैं।

अब भला ये वेश्यायें कहाँ से आईं ? यदि इन का इतिहास

लिखा जाय तो पता लगेगा कि, यह उच्च घरों की बहू-बेटियाँ हैं जो वैधव्य पीड़ा को सहन न कर के दुराचार के गढ़े में गिरी हुई हैं और अपने साथ अनेकों को गिराती चली जा रही हैं। प्रत्येक पुरुष जानता है कि, वेश्याओं की वर्षा नहीं होती और न उन की कोइ मुख्य जाति ही है। इन का रण्डी नाम ही प्रकट करता है कि, यह वास्तव में राण्डें (विधवायें) थीं जो किसी न किसी कारण-वश रण्डियाँ हो गईं। यह रण्डियाँ अपना कुटुम्ब बढ़ाती रहती हैं। जब एक वेश्या बूढ़ी हो जाती है और उसके पास जीविका के साधन नहीं रहते तो वह किसी रूपवती विधवा को बहका कर लाने में कृतकार्य्य हो जाती है और इस प्रकार उसका कुटुम्ब बढ़ता रहता है।

बहुत से भोले-भाले मनुष्य कहेंगे कि, ऐसा हम ने कहीं नहीं देखा कि, अमुक घराने की विधवा निकल कर वेश्या हो गई। परन्तु, ऐसे मनुष्यों से कहना चाहिये कि, भोले-भाले ! अभी तुमने देखा ही क्या है ? तुम तो आँख बन्द किये बैठे हो। तुम्हें क्या पता है कि, तुम्हारे पड़ोस में ही क्या-क्या अनर्थ होते हैं ? हम यहाँ दो-तीन उदाहरण देंगे जो हमारी आँख के देखे हैं। इन के नाम हम देना नहीं चाहते, क्योंकि इस से वंश के लोगों की कीर्ति में बट्टा लगेगा।

खत्री जाति की २० वर्ष आयु की एक रूपवती विधवा थी। वह विचारी किसी न किसी प्रकार अपने ज्येष्ठ के यहाँ

रह कर अपना पालन किया करती थी। उसके रूप को देख कर उसका ज्येष्ठ उस पर मोहित हो गया और उसको फँसाना चाहा। कुछ दिनों तक तो वह किसी न किसी प्रकार अपने जेठ का प्रतिरोध करती रही, परन्तु अन्त को वह बहक गई और उन दोनों में गुप्त रीत्या अनुचित सम्बन्ध हो गया। कुछ समय तक ऐसा ही रहा। परन्तु, यह भेद प्रथम घर वालों पर फिर पड़ोसियों पर और फिर जाति-बिरादरी के लोगों पर विदित हो गया। उस समय तो बड़ा कोलाहल मचा और जेठ को अपनी पगड़ी सँभालनी भारी पड़ गई। ऐसी अवस्था में उनको यह सूझी कि, उस विचारी विधवा को घर से निकाल दिया। फलतः वह अन्य स्थान में जाकर वेश्या हो गई। यदि उस नववयस्का बाल-विधवा का विवाह कर दिया जाता तो जेठ के व्यभिचार, उसके व्यभिचार और उन पुरुषों के व्यभिचार में कमी हो जाती जो उस के वेश्या होने पर उसके साथ बिगड़ते रहे और जिनकी संख्या बताना असम्भव है।

इसी प्रकार एक कायस्थ थे। उनकी बहिन के विषय में उनकी स्त्री बताया करती थीं कि, हमारी नन्द विधवा थी जिस की मृत्यु हो गई। वास्तव में उस विधवा की मृत्यु नहीं हुई थी। किन्तु, वह नगर से दस बारह कोस की दूरी पर ही किसी नीच जाति वाले पुरुष के घर में थी। यह बात पड़ोस के सभी स्त्री-पुरुषों पर विदित थी। बात यह थी कि, यह लड़की बाल-विधवा थी और

इन लाला जी के घर एक नौकर रहता था जिस से उसका सम्बन्ध हो गया। जब भेद प्रकट होने लगा तो नौकर उस विधवा को लेकर भाग निकला। लाला जी की तो नाक कट ही चुकी थी। परन्तु, वे नकटा कहलाना नहीं चाहते थे अतः उन्होंने उसकी झूठ-मूठ मृत्यु प्रसिद्ध कर दी और क्रिया-कर्म्म करके जाति वालों का सहभोज भी कर दिया। विचारे क्या करते ? देश के रिवाज का दोष है, लाला जी का नहीं।

एक जैनी वैश्य थे जिनकी पुत्र-वधू विधवा थी। इन्हों ने स्वयं इस विधवा को बहका लिया। यद्यपि गाँव वाले सभी इस रहस्य को खूब जानते थे, परन्तु कोई मुँह पर कहने का साहस नहीं करता था। जब वह वैश्य जी वृद्ध हो गये तो वह विधवा बहुतसा गहना लेकर घर से भाग गई।

एक ब्राह्मण थे जिनकी बहिन विधवा थी। उनके नगर में विधवा-विवाह के प्रचारक और सहयक भी थे। उन्होंने उस लड़की की चाल-ढाल देख कर ताड़ लिया था कि, कुछ दाल में काला है। चूँकि इस ब्राह्मण देवता का वंश उच्च था और लोग उसका आदर करते थे। अतः उस कुल को धब्बे से बचाने के लिये इस विधवा के भाई से कहा कि, तुम इस का पुनर्विवाह कर दो। परन्तु, यह महात्मा बड़े लाल-पीले हुए और खुल्लमखुल्ला लड़ना आरम्भ किया कि, हम जैसे उच्च वंशज ऐसे निकृष्ट कार्य्य कब कर सकते हैं ? थोड़े दिनों में कुछ गुल खिल गया। उसको तो इन्होंने किसी प्रकार

दबाया। परन्तु, जब इसी नगर में एक अन्य विधवा का पुनर्विवाह हुआ, तो उस ब्राह्मणी विधवा से नहीं रहा गया। और उसने अपने भाई और भावज से प्रार्थना की कि, मेरा भी पुनर्विवाह कर दिया जाय। यह बात उन दोनों को कब सहन थी? इतना तो सहन ही था कि, गुप्त रीत्या जो चाहे होता रहे। परन्तु, पुनर्विवाह पर राजी नहीं हुये। और भाई ने बहिन को और भावज ने नन्द को कोठरी में बन्द करके अनेक प्रकार की अनिर्वचनीय पीड़ायें दीं। इन सब का परिणाम यह हुआ कि, वह अवसर पाकर एक दिन निकल भागी और ईश्वर जाने आज कहाँ और किस अवस्था में है !!

(३) भ्रूण-हत्या तथा बाल हत्या

व्यभिचार के अतिरिक्त, जिसका वेश्या-वृद्धि केवल एक ही अङ्ग है, विधवा-विवाह के प्रचरित न होने के कारण देश में भ्रूण-हत्या अर्थात् गर्भपात और बाल-हत्या भी बहुत ही बढ़ रही है। इसमें सन्देह नहीं कि, ब्रिटिश राज्य की ओर से बाल-हत्या के दोषियों को बड़ा कड़ा दण्ड दिया जाता है; परन्तु पाप केवल कड़े नियम और कड़े दण्ड से ही बन्द नहीं हो जाते। "कारणाभावात् कार्य्याभावः" जब तक कारण का अभाव नहीं होता उस समय तक कार्य्य का अभाव हो ही नहीं सकता। वृक्ष को उन्मूलित करने के लिये जड़ को काटना चाहिये। जब गर्भपात और बाल-

हत्या की विधवा-रूपी जड़ें मज़बूत हो रही हैं तो उस प्रकार के पातकों का बढ़ना एक स्वाभाविक सी बात है। स्मृतियों में भ्रूण-हत्या और गर्भपात को महा पाप * लिखा है। इस से न केवल उसी जान का पाप होता है, जो मारी जाती है, किन्तु उस जाति का भी ह्रास हो जाता है जिसकी व्यक्तियाँ पृथ्वी पर आने से पहले ही नष्ट कर दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त हिंसा बढ़ जाने से जाति में हिंसा और क्रूरता का स्वभाव बढ़ जाता है। यदि भारतवर्ष में गणना की जाय तो सहस्रों गर्भपात प्रति दिन होते हैं जो केवल विधवाओं के ही कारण हुआ करते हैं। बहुत-सी विधवाओं को लोग तीर्थ-स्थानों में जाकर छोड़ आते हैं और वहाँ वे अनेक गुप्त रीतियों से हत्याकाण्ड की प्रवृत्ति में तत्पर होती हैं।

मुझे एक सम्बन्धी का पता है कि, जब उनकी बाल-विधवा लड़की किसी प्रकार गर्भवती हो गई और उनको उसका पता लग गया तो उन्होंने उस को आगरे ले जाकर गर्भ से मुक्त कराना चाहा; परन्तु वहाँ कोई डॉक्टर इस भीषण कार्य्य करने के लिए राज़ी न हुआ। वह विचारे इतने तो धनवान न थे कि, जो कुछ चाहते कर लेते। वस्तुतः रुपये में बहुत बड़ी शक्ति है; परन्तु अन्त

---

* वशिष्ठ-स्मृति, प्रथम अध्याय में लिखा है :—

पञ्चमहापातकान्याचक्षते। गुरुतल्पं सुरापानं भ्रूणहत्यां ब्राह्मणसुवर्ण-हरणं पतितसंप्रयोगं च ब्राह्मे वा यौनेन वा।

को उन्होंने तीर्थयात्रा का एकमात्र उपाय करने का निश्चय कर लिया और अपनी वृद्धा स्त्री और युवती गर्भवती पुत्री को लेकर चारों धाम करने चल पड़े। मथुरा, काशी, गया, जगन्नाथ सब बड़े-बड़े तीर्थों में फिरे और इन देवतों के प्रसाद से लड़की भी गर्भ-दोष से मुक्त हो गई। दैव जाने इन महाशय को क्या-क्या करना पड़ा होगा। क्या? कहाँ? और किस प्रकार हुआ? मुझ को ज्ञात नहीं है।

कहीं-कहीं तो ऐसा भी हुआ है कि, माता-पिता ने अपना नाम बचाने के लिये अपनी दोषयुक्त लड़कियों को विष देकर अथवा अन्यथा मार डाला है। एक महाशय ने तो अपनी लड़की के ऊपर मिट्टी का तेल डाल कर दीप-शलाका लगा दी और प्रसिद्ध कर दिया कि, लड़की लैम्प लेकर कनस्तर के पास तेल लेने गई गई थी कि, उसके वस्त्रों में आग लग गई और वह वहाँ मर गई।

पाठकगण! विचार कीजिये कि, एक विधवा-विवाह का प्रचार न होने के कारण ही कैसी-कैसी मर्म-वेधक घटनायें हमारे देश में हो रही हैं। कैसा हृदय विदीर्ण करने वाला दृश्य है! जो माता-पिता अपनी सन्तान के लिये सदैव प्राण न्यौछावर करें, जो अपने लड़की-लड़कों को अपनी आँखों के तारे और कलेजे के टुकड़े कहें, वही माँ-बाप एक सामाजिक निर्बलता के कारण ऐसे क्रूर हो जाँय कि, अपनी कोख से ज्याये हुये, अपने हाथ से पाले हुये जीवों को अपने ही हाथ से मार डालें! ऐसी क्रूरता तो पशुओं

में भी देखने में नहीं आती। सिंह, भेड़िये, चीते आदि बड़े-बड़े भयङ्कर जन्तु अन्य प्राणियों पर तो बड़ी निर्दयता करते हैं और सदैव उनके रक्त के प्यासे रहते हैं, परन्तु उनका कठोर हृदय भी अपनी सन्तान के लिये पिघल ही जाता है और सिंहनी का जो हाथ दूसरों को चीर-फाड़ कर खाने के लिये दौड़ता है वही हाथ अपने बच्चों के लिये रुई और ऊन से भी कोमल हो जाता है। परन्तु, यह मनुष्य जिसे अपनी उच्चता पर अभिमान है, यह हिन्दू-मनुष्य जिसको अपने "अहिंसा परमोधर्मः" पर घमण्ड है, जो समझता है कि, धर्म्म के ठेकेदार केवल हम ही हैं और संसार में हम से अधिक कोई धर्म्मात्मा ही नहीं, यह उच्च और कुलीन मनुष्य जो चीटियों के मरने पर भी प्रायश्चित करता है, केवल विधवा-विवाह के प्रचार न होने के कारण अपनी ही सन्तान पर अनेक प्रकार क्रूरतायें करता है। विधवा-स्त्रियाँ जिस समय अपने गुप्त रीति से जन्मे हुये बच्चों को मारने के लिये उद्यत होती होंगी, तो आकाश थर्राता और भूमि काँपती होगी। हा दैव! माता का वह स्नेह कहाँ गया जो अपने हृदय के टुकड़े को देखकर उसका मुख चूमने की इच्छा करता है। कौन माता है जो अपने पुत्र को देखकर स्वर्ग-प्राप्ति के सुख का अनुभव न करती हो। परन्तु, समाज की कुरीतियाँ मनुष्य से क्या कुछ नहीं करातीं? इधर प्रेम-पात्र बच्चे ने जन्म लिया है उधर माता लोक-लाज से मर रही है! कहाँ तो इस समय बाजे-गाजे होते और बच्चे को

दूध-मिश्री पिलाई जाती कहाँ इस निर्लज्ज हिन्दू-जाति के बच्चे का प्राणान्त करने के लिये उसी की माता का हाथ उठ रहा है ! माता कभी तो मारना चाहती है और कभी अपने प्यारे पुत्र का मुख देख-कर उसे तर्स आता है। बहुत-सी स्त्रियाँ हैं जो ऐसे समय में अपने पुत्रों को मार नहीं सकतीं और केवल दैव के आश्रय पर उनको मार्गों में फेंक कर चल देती हैं, सैकड़ों हैं जिनके बच्चें दाइयों के हाथ से नष्ट हो जाते हैं। सैकड़ों हैं जिनका पता पुलिस को लग जाता है। उस समय लाला जी, पण्डित जी अथवा सेठ जी की जो कुछ कीर्त्ति-वृद्धि होती है वह तो पाठक स्वयं ही सोच सकते हैं !

अभी हाल की घटना है कि, संयुक्त-प्रान्त के एक प्रसिद्ध नगर की एक मण्डी में एक बच्चा मरा हुआ पाया गया। पुलिस को ख़बर लगी। पता चल गया और मालूम हुआ कि, उस नगर के बड़े माननीय महाशय की करतूत का यह फल है। पुलिस ने क्या किया और इस में किस का दोष था इसका तो पता नहीं, किन्तु उक्त महाशय के पड़ोसी और सम्बन्धी नित्य प्रति इस प्रकार की कानाफूँसी करते हैं। यदि अब भी हिन्दू-जाति को बुद्धि आवे और यह बुरे-भले का विचार कर सके तो अच्छा है, नहीं तो गिरने में सन्देह ही क्या रहा है !!

(४) अन्य क्रूरतायें

इस देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में विधवाओं के लिये कड़े नियम

रक्खे गये हैं। जिस समय कोई विधवा हो जाती है उसी समय उस के सास तथा अन्य घर वाले उसे कोसने लगते हैं कि, यह अभागी ऐसी आई कि, इसने मेरे लाल को डस लिया। यह डायन है, यह साँपिनी है, इत्यादि-इत्यादि। उस समय उसका कोई नहीं होता। प्रथम तो वह विचारी ससुराल में अकेली होती है। माता-पिता, भाई-बहिन सब से छूटकर वह पराये घर जाती है। उसका एकमात्र आश्रय पति ही होता है। वह भी मर गया और वह अकेली रह गई। फिर उस की अवस्था खेलने खाने की होती है। इसे संसार का कुछ अनुभव भी नहीं होता। ऐसे समय में चारों ओर से ताने और गालियाँ सुनना और लोगों को बजाय धैर्य्य और शान्ति देने के उसे कोसना। बड़ा भयङ्कर अवसर होता है और विधवा का हृदय विदीर्ण हो जता है। कैसा अन्याय है? माता का पुत्र मर गया, परन्तु माता नहीं कहती कि, मेरे दुर्भाग्य से मेरा पुत्र मर गया। बहिन नहीं कहती कि, मेरे दुर्भाग्य से भाई मर गया। दादी नहीं कहती कि, मेरे दुर्भाग्य से नाती मर गया; परन्तु सब यही कहते हैं कि, इस बहू के दुर्भाग्य से उस की मृत्यु हो गई। वस्तुतः दुर्भाग्य तो सभी का है, परन्तु वह किसी के हाथ में नहीं। क्या वह विचारी चाहती थी कि, मेरा पति मर जाय? फिर उसको डायन, साँपिन आदि नामों से सम्बोधित करना कितना बुरा है? इतने पर भी उसकी विपत्ति समाप्त नहीं होती। कहीं-कहीं तो उसका सिर मुँड़ा दिया जाता है। चूड़ियें और बिछुये तो प्रायः सभी जगह उतार

दिये जाते हैं। कहीं-कहीं रण्डसाला पहना देते हैं जो एक अपमान और शोक-सूचक वस्त्र है और जो हर घड़ी उसके घावों को ताजा किया करता है। इस के पश्चात् कोई उससे प्यार से नहीं बोलता। न अच्छे कपड़े पहनने को मिलते हैं और न अच्छा खाना। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि, विधवा विचारी छः या सात वर्ष की ही होती है। उसे यह पता भी नहीं होता कि, स्त्री विधवा कैसे होती है। माता जबरदस्ती उसकी चूड़ियाँ और बिछुये उतारती है और लड़की चिल्ला कर रोती है। एक कवि ने एक विधवा-बाला का विलाप बड़े हृदय-बेधक शब्दों में लिखा है :—

भजन

माय मोरी तुरियाँ चूँ फोरे मुझे नन्दा तरती हाय! तू तो तहे थी बनें दी नोंद्री। एत तुझे धड़वा दूँ तिलरी। आज उतारे है चूँ सिंदरी। नथ बिछुये मोरें। मुझे० ॥ १ ॥ तड़े छड़े झाँझन अरु बाली। झाँवर नुइयां मेरी निताली। हार पचलड़ी भूँ में दाली। चों फंदे तोरे॥ मुझे०॥ २॥ हाय माय! तू हो दई बैरिन, छोड़ मुझे मैं जाऊँ हूँ थेलन। ताले तरों दे है चों हाथन। है दोरे दोरे। मुझे० ॥ ३ ॥ माता सुन सुन खाय पछाड़े। खून बहे सिर दे दे मारे।

छिपे चन्द्र नैनों के तारे। फूटे भाग तोरे॥ मुझे० ॥ ४ ॥
हाय शोक दिल टुकड़े होवे। ज्यूँ वह विधवा कन्या रोवे।
पाठक खेलें कूदें सोवें। झूले हिन्डोरे॥ मुझे० ॥ ५ ॥

वस्तुतः इस में उसका दोष नहीं था। चेचक के खाजे से छोटी अवस्था में विवाह कर दिया गया और अब माता-पिता के दोष से वह विधवा हो गई, परन्तु उसके निर्दोष होते हुये भी उसे दोष दिया जाता है। आज से वह सभी शुभ कार्य्यों से बहिष्कृत कर दी जाती है। जब कभी विवाह आदि का शुभ अवसर आता है तो स्त्रियाँ उसे सम्मिलित नहीं करतीं। जब घर का कोई पुरुष परदेश जाने को होता है तो चलते समय उसका मुख नहीं देखता। बहुधा लोग प्रातःकाल भी उसका मुख नहीं देखते, इससे प्रतीत होता है कि, हमारी जाति ऐसी पतित हो गई है कि, उसको अपनी दुखिया व्यक्तियों से सहानुभूति नहीं रही। इसमें सन्देह नहीं कि, विधवा को घोर दुख है और वह उसका अनुभव कर रही है; परन्तु जाति का कर्त्तव्य था कि, जिस पर विपत्ति पड़ी है उसके साथ सहानुभूति और समवेदना प्रकट की जाती, उसके घावों पर मरहम लगाया जाता, उसके साथ ऐसा बर्त्ताव किया जाता कि, जिससे उसके दुख-रूपी पहाड के काटने में कुछ सहायता मिलती, जिससे उसकी कडी राह कुछ आसान होती। परन्तु, जाति की क्रूरता को तो देखये कि, घायल के घावों पर और निमक छिड़कती है। मरे

को मारे शाह मदार। यह भी कोई सभ्यता है? यह भी कोई गौरव की बात है कि, गिरे हुये को दो लातें और लगा दो। वस्तुतः बात यह है कि—

जिसके नाहीं पैर बिवाई। वह का जाने पीर पराई॥

बहुत से लोग कहेंगे कि, हम यह सब विधवाओं की आत्मोन्नति के लिये करते हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो यह भोग विलास में फँस जाँय। लोक की अपेक्षा परलोक का सुधारना अधिक आवश्यक है। परन्तु, यह हमारे भोले भाइयों की भूल है। वह यह नहीं समझते कि, आत्मोन्नति और परलोक सुधार किसे कहते हैं। हम ऊपर दिखा चुके हैं कि, गुप्त व्यभिचार, वेश्यापन, गर्भपात और बाल-हत्या करने वाली आत्मायें परलोक-सुधार के लिये जो कुछ कर रही हैं उससे चुप ही भली। परन्तु, एक बात और है। जो विधवायें रात-दिन के अपमान सहते-सहते इस लोक में समस्त आत्म-गौरव खो चुकीं, जिनके हृदय से वास्तविक आत्मोन्नति का स्रोत ही सूख गया, जिनको केवल इतना ही ज्ञान रह गया है कि, हम अधम, नीच और अभागिनी हैं, वे दूसरे जन्म में भी अधिक उन्नति नहीं कर सकतीं। हमारा जीवन सादि और सान्त नहीं, किन्तु अनादि और अनन्त है। यह वस्तुतः एक शृङ्खला है जिसकी कड़ियाँ हमारे जन्म-जन्मान्तर हैं। जो सामग्री हम इस जन्म में इकट्ठी

रोती हूँ इसलिए कि सुन्दर चूड़ी फोड़ी जाती है !
क्या समझे ! मेरे सुहाग की हड्डी तोड़ी जाती है !!

The Fine Art Printing Cottage

रोती हूँ इसलिए कि सुन्दर चूड़ी तोड़ी जाती है !

क्या समझे ! मेरे सुहाग की हड्डी तोड़ी जाती है !!
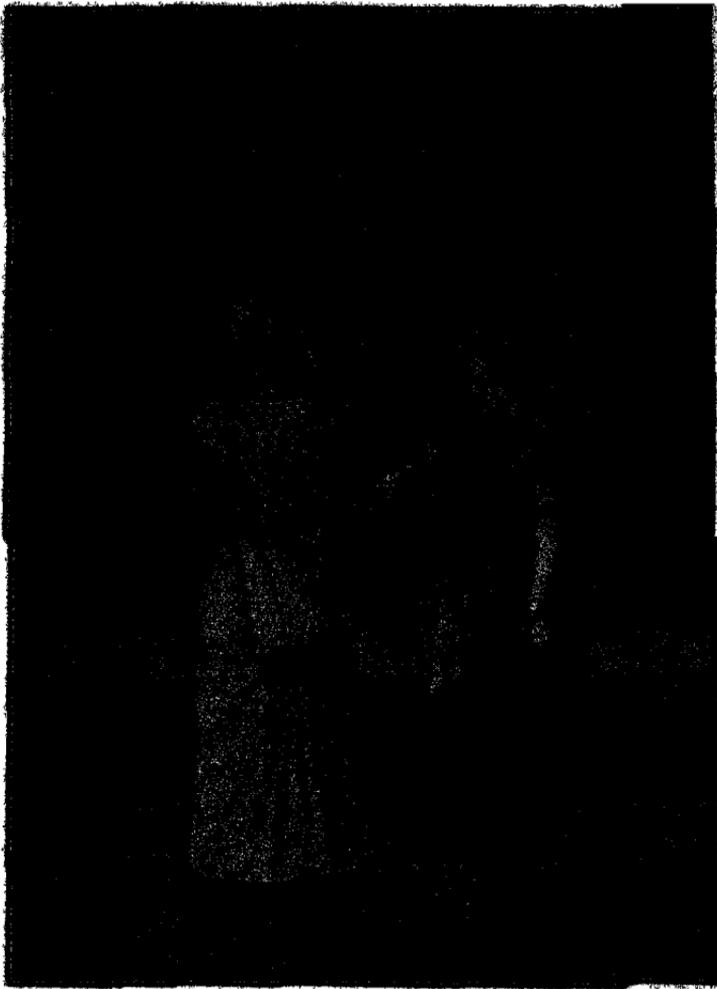
The Fine Art Printing Cottage

इसका परलोक बिगाड़ा जाय। पाठकवर्ग! क्या कभी आप पर ऐसा कष्ट पड़ा है? क्या कभी आपने ज्येष्ठ मास की दुपहरी को बिना जल के बिताया है? फिर इस पर भी यदि रोग की अवस्था हो तो विपत्ति का क्या कहना। जब आधी रात का समय हुआ तो बिचारी लड़की की मारे प्यास के सचमुच जान निकलने लगी। परन्तु माँ-बाप उसे सचमुच स्वर्ग भेजना चाहते थे, उनको कुछ भी दया न आई, या यों कहिये कि, धर्म्म के वास्तविक स्वरूप को न जान कर वह अन्धे हो रहे थे। परिणाम यह हुआ कि, तीन बजे रात को उस बिचारी विधवा का प्राण-पखेरू मारे प्यास के इस नश्वर शरीर को छोड़ कर उड़ गया।

इस प्रकार की अनेक घटनायें प्रति दिन सुनने में आती हैं जिनसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ९० वर्ष हुये कि, इसी देश में विधवाओं पर इससे भी अधिक अत्याचार होते थे और उनको अपने पति के साथ जीवित जलना पड़ता था। इसको लोग सती होना कहते थे। पहले तो स्त्री को अपने पति के साथ जलने के लिये उत्तेजित करते थे और जब वह तैयार हो जाती तो उसे चिता पर रख दिया जाता था। यदि कोई तैयार न होती तो घर के लोग उसे इतने ताने देते और कहते कि, इस दुष्टा को अपना शरीर इतना प्यारा है कि, पति का अनुसरण ही करना नहीं चाहती कोई कहता था कि, यह कुलटा है, कोई कहता कि, अजी यह तो यही चाहती थी। इन शब्दों को सुनने की अपेक्षा

वह मरना ही पसन्द करती थी और जब एक बार चिता पर पहुँच गई। और आग लगते ही उसने भागना चाहा तो लोग लाठियों के मारे उसे उसी चिता में भस्म कर देते थे और 'सती' 'सती' के शब्दों से आकाश गूँज जाता था। वस्तुतः बात यह है कि, अपना शरीर किसको प्यारा नहीं होता ? और आग में कौन जलना चाहता है ? भला हो ब्रिटिश राज्य का जिसने सदा के लिये इस प्रकार की क्रूर प्रथा बन्द कर दी। आज कल यदि कोई सती होने में सहायता या उत्तेजना उत्पन्न करता है तो उसे दण्ड दिया जाता है।

(५) जाति का ह्रास

ये व्यक्तिगत हानियाँ तो विधवा-विवाह के प्रचलित न होने से हैं ही, परन्तु इनके अतिरिक्त जातिगत हानियाँ भी जिनमें हिन्दुओं की संख्या दिन प्रति दिन कम हो रही है। १९११ ई० की भारतीय मनुष्य-गणना की जो रिपोर्ट ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की ओर से छपी है उसकी पहली पुस्तक (Vol. I) के प्रथम भाग (Part I) के पृष्ठ ११९ पर लिखा है कि, आज कल हिन्दुओं की जन-संख्या २१ करोड़ ७३ लाख है। एक समय था कि, समस्त भारतवर्ष में यही लोग थे। अब घटते-घटते दो-तिहाई रह गये हैं; अर्थात् प्रत्येक तीन में से एक इन से छिन गया। जो जाति ८ या १० शताब्दियों के हेर-फेर में दो-तिहाई रह जाय वह इतने ही समय के और व्यतीत होने तक सर्वथा नष्ट हो जायगी

यदि बिगड़ने के वर्त्तमान कारण ज्यों के त्यों उपस्थित रहे। हिन्दू लोग समझते हैं कि, अभी तो हम बहुत हैं; कुछ चिन्ता नहीं। परन्तु, यह उनकी भूल है। घटते-घटते करोड़ पति का कोष भी एक न एक दिन खाली हो ही जाता है, और बढ़ते-बढ़ते छदम्मीलाल भी करोड़ीमल हो ही जाते हैं। इसलिये जाति के नेताओं का कर्त्तव्य है कि, उन कारणों पर विचार करें, जिनसे इनकी जन-संख्या में प्रति दिन कमी होती जाती रही है।

उसी रिपोर्ट के पृष्ठ १२० पर हिन्दुओं की वृद्धि के विषय में लिखा है :—

The number of Hindus has increased since 1901 by 5 per cent while that of Mohamedans, Sikhs and Budhists has increased respectively by 7, 37 & 13 per cent. As is now well known, the Hindus are less prolific than the Mohamedans, Budhists and Animists and other communities owing mainly to their **Social customs of early marriage and compulsory widowhood** Girls are commonly married long before they reach maturity to men who may be much older than themselves, and a very large proportion of them lose their husbands while they are still of child bearing age or even before they have attained it.

अर्थात्, हिन्दुओं की संख्या १९०१ से प्रति शतक ५ के हिसाब से बढ़ी है परन्तु, मुसलमान, सिक्ख और बौद्धों की क्रमशः ७,३७ और १३ प्रति शतक। यह एक प्रसिद्ध बात है कि, मुसलमान, बौद्ध तथा भूत-प्रेतादि के पूजकों और अन्य जातियों की अपेक्षा हिन्दू कम वृद्धिशील हैं। इसका मुख्य कारण बाल-विवाह और अनिष्ट वैधव्य आदि सामाजिक कुरीतियाँ हैं। कन्याओं का युवावस्था से बहुत दिन पहले ऐसे पुरुषों से विवाह कर दिया जाता है, जो उनसे बहुत बड़े होते हैं और उनमें अधिकांश के पतियों की ऐसी अवस्था में मृत्यु हो जाती है, जब ये सन्तान उत्पन्न करने के योग्य होती हैं; या जो अभी तक सन्तान उत्पन्न करने के योग्य भी नहीं हुईं।

पृष्ठ १२९ पर लिखा है :—

The greater reproductive capacity of the Mohamedans is shown by the fact that the proportion of married females to the total number of females aged 15—40 exceeds the corresponding proportion for Hindus. The result is that the Mohamedans have 37 children aged 0·5 to every hundred persons aged 15—40 while the Hindus have only 33. Since 1881 the number of Mohamedans in the areas then enumerated has risen 26·4 p.c. while the corresponding increase for Hindus is only 15·1 per cent.

अर्थात्, मुसलमानोंमें अधिक उत्पत्ति-शक्ति होने का एक प्रमाण यह भी है कि, १५ वर्ष से लेकर ४० वर्ष की अवस्था की स्त्रियों में सधवा स्त्रियों की संख्या मुसलमानों में हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक है। इसका परिणाम यह है कि, मुसलमानों में १५ से ४० वर्ष के प्रति १०० मनुष्यों में ५ वर्ष या कम आयु वाले बच्चे ३७ मिलेंगे; परन्तु हिन्दुओं में केवल ३३। १८८१ ई० से इधर मुसलमानों में प्रति शतक २६.४ वृद्धि हुई और हिन्दुओं में केवल १५.१ ही।

पृष्ठ १५१ पर लिखा है :—

The Mohamedans and Christians also have a considerably larger proportion of children than the Hindus, whose **Social customs are less favourable to rapid growth.** Hindu girls are as a rule married before puberty, and the difference in age between them and their husbands is often very great. A very large proportion of them become widows while they are still capable of bearing children and these are frequently not allowed to marry again.

अर्थात्, मुसलमान और ईसाइयों में हिन्दुओं की अपेक्षा बच्चों की संख्या बहुत अधिक है क्योंकि हिन्दुओं के सामाजिक नियम जन-वृद्धि के अनुकूल नहीं हैं। हिन्दू-लड़कियाँ युवावस्था से पूर्व

ही ब्याह दी जाती हैं, और उनकी तथा उनके पतियों की आयु में बड़ा अन्तर होता है। इनमें से अधिकांश तो ऐसे समय विधवा हो जाती हैं जब कि, उनमें उत्पत्ति की पूर्ण रूप से शक्ति होती है और बहुधा उनको पुनर्विवाह की आज्ञा नहीं दी जाती।

१६६ वें पृष्ठ पर एक चित्र दिया है जिस से विदित होता है कि, बङ्गाल में ९ वर्ष से नीचे या ३३ वर्ष से ऊपर, बम्बई प्रान्त में १६ वर्ष से नीचे या ३७ वर्ष से ऊपर, मद्रास प्रान्त में ६ वर्ष से नीचे या ३१ वर्ष से ऊपर, संयुक्त प्रान्त में ८ वर्ष से नीचे या १८ वर्ष से ऊपर मनुष्यों की अपेक्षा स्त्रियाँ कम मरती हैं, अर्थात् चूंकि ९ या १० वर्ष से पूर्व ही लोगों का विवाह हो जाता है इस लिये अधिक स्त्रियाँ इसी अवस्था में विधवा हो जाती हैं। यह बात पृष्ठ २७८ पर दिये हुये एक और चित्र से भी विदित होती है; अर्थात्, हिन्दुओं में प्रति एक सहस्र मनुष्यों में पाँच वर्ष तक की आयु की ५, १० से १५ वर्ष तक की आयु की १७, १५ से ४० वर्ष तक की आयु की १२४ और ४० वर्ष से ऊपर की ६२७। इस प्रकार प्रत्येक अवस्था की विधवा को मिला कर प्रति १००० पर १८८ विधवायें हैं अर्थात् जन-संख्या का लगभग पाँचवाँ भाग विधवा है।

२७३ वें पृष्ठ पर लिखा है :—

The statistics of marriage by caste show that except in Bengal, the proportion of widows is

greatest among the higher castes. Thus in Behar and Orrissa, of every 100 females aged 20—40, more than one fifth are widowed among the Babhans, Brahmans, Kayasthas and Rajputs. In Bombay among Brahmans are one-fourth.

अर्थात्, विवाहित जन-संख्या के जाति-आत्मक अङ्कों से प्रकट होता है कि, बङ्गाल को छोड़कर अन्य प्रान्तों में विधवाओं की संख्या उच्च जातियों में अत्यधिक है। विहार और उड़ीसा में २० से लेकर चालीस वर्ष तक की प्रति १०० स्त्रियों में पाँचवें भाग से अधिक विधवाओं की संख्या बाभन, ब्राह्मण, कायस्थ और राजपूतों में हैं। बम्बई में ब्राह्मणों में चौथाई विधवायें हैं।" इसका कारण यही है कि, उच्च जातियों में विधवा-पुनर्विवाह का निषेध है। समस्त भारतवर्ष में १५ से ४२ वर्ष के भीतर की स्त्रियों में ११ प्रति शतक विधवायें हैं। हिन्दुओं में १२ प्रति शतक और मुसलमानों में ९ प्रति शतक। मुसलमानों में भी इतनी विधवाओं के होने का कारण यह है कि, यद्यपि उनके यहाँ विधवा-विवाह की विधि है; तथापि हिन्दुओं की देखा-देखी मुसलमान उच्च वंश भी विधवाओं का बहुत कम विवाह करते हैं। और इस प्रकार हिन्दुओं के दोष मुसलमानों में भी प्रवेश करने लगे हैं, यद्यपि आधिक्य के साथ नहीं।

हिन्दुओं के सामाजिक दोष इनको अन्य जातियों की अपेक्षा

कई गुनी हानियाँ पहुँचाते हैं। यह एक विचित्र बात है कि, जो रोग मुसलमान आदि को कम हानि पहुँचाता है वही रोग हिन्दुओं के लिये अधिक हानि का कारण हो जाता है। वस्तुतः बात भी यह है कि, दीर्घ रोगियों के लिये छोटी-सी बीमारी भी मृत्यु का कारण होती है।

जन-संख्या पर दृष्टि डालने से प्रकाशित होता है कि, कई सौ वर्षों से हिन्दुओं की संख्या कम और मुसलमानों की अधिक हो रही है; और दिन पर दिन घटते-घटते हिन्दू आज दो-तिहाई रह गये हैं। यह तो एक प्रसिद्ध बात है कि, आज जो भारतवर्ष में छः करोड़ छियासठ लाख मुसलमान पाये जाते हैं, उनमें से एक करोड़ भी बाहर से नहीं आये। परन्तु, इन्होंने हिन्दुओं में ही से अधिक पुरुषों को लिया। इस का परिणाम यह हुआ कि, जितनी संख्या हिन्दुओं की कम हुई, उतनी मुसलमानों की बढ़ गई और इस का एक मुख्य कारण हिन्दुओं में, विधवा-विवाह के प्रचार का अभाव था। मनुष्य-गणना की रिपोट के १२१ वें पृष्ठ पर लिखा है :—

Though there is at present no organized proselytism by the **Mullas,** here and there individuals are constantly attorning to Mohamedanism.......... in the case of widows, the allurement of an offer of marriage. Whenever there is a love affair between

a Hindu and a Mohamedan, it can only culminate in an open union if the Hindu goes over to Islam, while the discovery of a secret liaison often has the same sequel.

अर्थात्, यद्यपि आज कल मुसलमानों में मुल्लाओं के द्वारा मुसलमान बनाने की नियम-बद्ध संस्था नहीं है, तथापि एक दो व्यक्तियाँ सदैव मुसलमानों में मिलती ही रहती हैं......। और विशेष कर विधवायें हैं, जिनको वहाँ विवाह का लालच है। जब कभी किसी हिन्दू और मुसलमान में प्रेम होता है तो हिन्दू मुसलमान हो जाता है, और खुल्लमखुल्ला उनका विवाह हो जाता है, और यदि गुप्त प्रेम होता है तो भेद के खुल जाने पर भी वही परिणाम होता है।" वस्तुतः देखा गया है कि, यदि ख़रबूज़ा छुरी पर गिरे तो भी ख़रबूज़ा ही कटता है, और यदि छुरी ख़रबूज़े पर गिरे तो भी ख़रबूज़ा को ही हानि पहुँचती है। यही हाल हिन्दू और मुसलमान का है। यदि कोई मुसलमान किसी हिन्दू-स्त्री से फँस जाता है तो वह हिन्दू-स्त्री तथा उसकी सन्तान मुसलमान हो जाती है, और यदि कोई हिन्दू किसी मुसलमानिन के साथ लग जाता है तो वह हिन्दू-पुरुष तथा उसकी सन्तान मुसलमान हो जाती है। इस प्रकार दोनों प्रकार से हिन्दुओं की क्षति और मुसलमानों की वृद्धि होती है। वस्तुतः हिन्दू इतने निर्बल हो गये हैं। इनका न वीर्य प्रधान है और न रज। मुसलमानों के रज और वीर्य दोनों ही प्रधान हैं।

अब मुसलमानों के अतिरिक्त एक और धर्म्मानुयायी मैदान में आ गये हैं, जो हमारी विधवाओं के लिये सदा हाथ फैलाये रहते हैं। इनका नाम है ईसाई। इनकी संख्या आज कल मुसलमानों की अपेक्षा भी बढ़ रही है। १८८१ ई० में केवल १३ हजार ईसाई थे। परन्तु, तीस वर्ष में ही उनकी संख्या एक लाख अड़तीस हजार अर्थात्, १०॥ गुनी अधिक हो गई। इस सब के उत्तरदाता हिन्दू हैं। मुझे याद है कि, एक खत्री-विधवा का एक समय एक बङ्गाली ब्राह्मण-युवक के साथ अनुचित सम्बन्ध हो गया। हिन्दुओं में उनका विवाह दुस्तर क्या असम्भव था। अतः वे दोनों ईसाई हो गये। इस समय उन दोनों के ९ बच्चे हैं। इनमें कई लड़के और लड़कियाँ हैं। जब इन लड़के-लड़कियों का विवाह होगा तो बहुत शीघ्र ९ के ५० हो जाँयगे! इस प्रकार हिन्दू-जाति ने विधवा-विवाह का निषेध करके अपने दो व्यक्ति खोकर, थोड़े ही दिनों में ५० की संख्या कम कर दी। और इन ५० के प्रचार के कारण जो हिन्दू ईसाई हो जाँयगे उनकी संख्या अगणनीय है।

जो हिन्दू लोग विधवा-विवाह का निषेध इसलिये करते हैं कि, ब्रह्मचर्य्य की वृद्धि होगी, वह सर्वथा भूलते है कि, ब्रह्मचर्य्य की वृद्धि तो होती नहीं, होता वही है जो प्रकृति के नियमानुसार होता है; परन्तु हिन्दुओं की संख्या घट कर अन्य जातियों की अवश्य बढ़ जाती हैं। आज कल प्रत्येक स्थान में देखा जाता है कि, हिन्दू-विधवायें निकल कर अन्य जातियों के घर में बैठ जाती हैं। यदि विधवा-विवाह

जारी होता तो ऐसा कभी न होता। हिन्दू लोग अपने को उत्कृष्ट रखना चाहते हैं; परन्तु उनको पता नहीं कि, उत्कृष्टता सामाजिक वस्तु है व्यक्तिगत नहीं। अर्थात्, आप अकेले धर्म्मात्मा बन ही नहीं सकते जब तक आप के साथी भी साथ-साथ धर्मात्मा न बनें। जो मनुष्य झूठ से बचना चाहता है उसे यत्न करना चाहिये कि, संसार सत्यवादी बने नहीं तो उसे भी झूठ बोलना ही पड़ेगा। जो मनुष्य स्वयं मांस से घृणा करता है; परन्तु मांसा-हारियों से मांस-भक्षण छुड़ाने का यत्न नहीं करता उसको याद रखना चाहिये कि, कम से कम मांस की दुर्गन्ध ही उसकी नाक द्वारा उसके पेट में अवश्य पहुँचेगी। इसी प्रकार यदि संसार व्यभिचार में फँसा हुआ है तो आप या आप का परिवार ब्रह्म-चर्य्य-व्रत का पालन कर ही नहीं सकता।

यदि केवल हिन्दू ही हिन्दू संसार में होते तो सम्भव था कि, आप विधवा-विवाह न करके भी इन विधवाओं को हिन्दू-जाति में रहने देते। परन्तु, जब अन्य जातियाँ भी उन विधवाओं को लेने और उनसे विवाह करने को तैयार हैं तो उनका हिन्दू रहना कैसे सम्भव हो सकता है ?

बहुत से लोग कहेंगे कि, हमको जन-संख्या बढ़ाने की परवाह नहीं, हम तो गुण-वृद्धि चाहते हैं। हिन्दू-धर्म्म में दो आदमी ही रहें और अच्छे रहें, वह अच्छा है और सहस्रों अधर्म्मी रहना

अच्छा नहीं। परन्तु, यह उनका स्वार्थ है जो धर्म्म के मूल तत्व से सर्वथा विरुद्ध है। दो आदमी भी तभी धर्म्मात्मा रह सकते हैं जब उनको धर्म्म पर स्थित रखने के लिये अनेक पुरुष उपस्थित हों। सहस्रों के अधर्म्मी रहते हुये दो का भी धर्म्मात्मा रहना असम्भव है। यदि आप के नियम इस प्रकार के हैं कि, आप के मित्र मित्रता छोड़ कर शत्रु बन रहे हैं, तो ऐसे नियमों से अनियमित होना ही भला! जिन लोगों ने विधवा-पुनर्विवाह इस समय कराये हैं, वह उनको वैदिक धर्म्म के अनुयायी रखने में कृतकार्य हुये हैं। इनकी सन्तान पूर्व की भाँति ही राम और कृष्ण की भक्त है और वेद-शास्त्रों पर श्रद्धा रखती है। परन्तु, जब पुनर्विवाह के शत्रुओं के कारण विधवायें ईसाई या मुसलमान हो गईं तो उनकी सन्तान सदा के लिये वेद-विमुख हो गई और राम, कृष्ण के स्थान में ईसा, अली आदि को अपने पूर्वज मानने लगेगी। इस प्रकार विधवा-विवाह के विरोधी वस्तुतः वैदिक धर्म्म के मित्र नहीं, किन्तु शत्रु ठहरते हैं। हम प्रमाण देकर बता चुके हैं कि, वैदिक धर्म्म अक्षत योनि विधवा के पुनर्विवाह को विधियुक्त बताता है। परन्तु, यदि ऐसा न होता तो भी संसार की दशा को देख कर विधवा-विवाह की आज्ञा देनी ही उचित थी, क्योंकि आज कल वैदिक धर्म्म के आदर्श तक ले जाने के लिये लोगों को कई ऐसी अवस्थाओं से गुजरना है, जो यदि निरन्तर धर्म्म नहीं तो धर्म्म की ओर ले जाने वाली

ज़रूर हैं; और जिन पर न गुज़रने से हम वैदिक आदर्श तक पहुँच ही नहीं सकते।

इस समय विधवा-विवाह का विरोध करने से कई गौओं की हत्या का पाप लगता है। वह इस प्रकार। सभी जानते हैं कि, यद्यपि चींटी मारना पाप है, किन्तु बकरी के मारने में सैकड़ों चींटियों के मारने के बराबर पाप लगता है और गौ के मारने में कई बकरियों के बराबर। इसी प्रकार मनुष्य के मारने में कई गौओं के बराबर पाप होता है। विधवा-विवाह के विरोधी भ्रूण-हत्या की वृद्धि के एक मुख्य कारण हैं; अतएव गो-हत्या के पाप से वह मुक्त नहीं हो सकते। स्मृति भी कहती है कि, भ्रूण-हत्या और ब्रह्म-हत्या बराबर है। अतः ब्रह्म-हत्या के पाप से बचना भी विधवा-विवाह के विरोधियों के लिये दुस्तर है। इसके अतिरिक्त विधवा-विवाह के न होने से वेश्याओं की वृद्धि हो रही है; और यह एक प्रसिद्ध बात है कि, वेश्याओं की आय का एक अंश गौओं के बध की भेंट होता है। इस प्रकार विधवा-विवाह करने से गो-हत्या में भी बहुत कुछ कमी हो सकती है।

बारहवाँ अध्याय

विधवाओं का कच्चा चिट्ठा
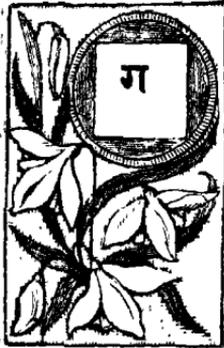
त १८ फ़रवरी सन १९२३ के, सहयोगी उर्दू प्रताप (लाहौर) का कहना है :—

मौज़ा बागड़ियाँ, ज़िला लुधियाना की एक विधवा को अपने सम्बन्धी के साथ अनुचित सम्बन्ध होने के कारण गर्भ रह गया और बच्चा उत्पन्न हुआ। बच्चा पैदा होने की कोई रिपोर्ट दाख़िल नहीं की गई। गाँव के पास एक स्थान पर नवजात बच्चा फेंक दिया गया; जिसकी लाश कुत्ते नोंच-नोंच कर खा रहे थे। पुलिस में ख़बर पहुँचने पर भारतीय दण्ड-विधान की ३१८ वीं धारा के अनुसार उस विधवा का चालान किया गया······।"

*　　　*　　　*

पुत्र की घातक माता

बम्बई प्रान्त में २५ अगस्त १९१७ ई० को गङ्गाबाई नाम की एक विधवा के एक लड़का उत्पन्न हुआ। उसका मित्र काशीराम और उसकी स्त्री वहीं उपस्थित थे। लड़का जीवित उत्पन्न हुआ था। कुछ देर के बाद लड़का चिल्लाने लगा। गङ्गाबाई ने अपना पैर उसके गले पर पटक कर उसे मार डाला और लड़के को एक कपड़े में लपेट कर अपने यार को दे दिया। वह उसे कहीं छिपा आया। अगले दिन लड़के की लाश मिली और काशीराम पकड़ा गया।

* * *

बच्चे को फाँसी

३ कार्तिक १९७४ विक्रमी के "आर्य गज़ट" लाहौर में एक सज्जन लिखते हैं:—

हमारे यहाँ एक वैश्य अग्रवाल की १४ वर्ष की लड़की विधवा हो गई और कुछ दिनों पश्चात् एक जुलाहे नौकर से फँस गई। जब गर्भ रहने का हाल जेठ और ससुर को मालूम हुआ तो मैके भेज दी गई। जब माँ-बाप को पता मिला तो उसे लुधियाना अस्पताल में भेजा गया। परन्तु, गर्भ के कारण माता-पिता उसके साथ न गये। किन्तु, दो और पुरुषों को साथ कर दिया गया कि, या तो गर्भ गिरा आवें या उस

लड़की को खो आवें। वह लड़की पहिले मिस जोन के पास गई, फिर हरिद्वार चली गई। वहाँ उसके बच्चा उत्पन्न हुआ जो उसी समय फाँसी लगा कर गङ्गा जी में डुबो दिया गया। लड़की घर वापिस आ गई; परन्तु अब माता-पिता को यह कोशिश थी कि, उसको किसी प्रकार मार दिया जावे। इस भय से लड़की किसी का पकाया भोजन न करती, रातों रोती और लड़की की माँ उसको बहुत तङ्ग किया करती थी। इस वर्ष कई स्त्रियों ने गुरुकुल काङ्गड़ी जाने का विचार किया जिन में वह भी एक थी। मुझे ज्ञात न था इसलिये साथ ले आया। गुरुकुल में हरिद्वार आकर वह लड़की गुम हो गई। थोड़े दिनों पश्चात ससुराल से पता चला कि, हरिद्वार से रेल में सवार होकर लड़की जुलाहे नौकर के घर पहुँची और पुलिस ने गिरफ़्तार करके उसे जेठ के सुपुर्द किया। इस समय न ससुराल वाले उसे रखते हैं न मैके वाले उसका बुरा हाल है।

* * *

बच्चा फेंक दिया गया

तीर्थराज प्रयाग में अगस्त १९१९ में एक अभियोग चला था जिसका वृत्तान्त यह है :—

एक विधवा गोमती और उसके ससुर केदारनाथ पर एक मुक़दमा चला था। जिसमें उन पर दोष लगाया गया था कि,

उन दोनों में अनुचित सम्बन्ध था। उससे जो बच्चा उत्पन्न हुआ उसको एक वृक्ष के नीचे फेंक दिया गया। जिसे एक मातादीन नामक पुरुष ने देखा और पुलिस में पहुँचा दिया। आठ दिन पीछे वह मर गया। केदारनाथ कहता है कि, गोमती का एक ब्राह्मण से सम्बन्ध था यह उसी का लड़का है।

* * *

प्रयाग का दूसरा मामला

लगभग दो वर्ष हुए इलाहाबाद के अहियापुर मोहल्ले की एक गली में जहाँ कूड़ा फेंका जाता था, एक नवजात बालक की लाश पाई गई थी। बच्चे में उस समय कुछ-कुछ जान बाक़ी थी। बालक लम्बे क़द का बहुत सुन्दर और प्यारा था। वह रस्सियों से इस बुरी तरह जकड़ कर बाँधा गया था कि, उसके मुँह से खून जा रहा था। अहियापुर-निवासी घर-घर इस घटना से परिचित हैं ....।"

* * *

लोहार के घर में ब्राह्मणी

सोनीपत्ति के निकट एक गाँव ब्राह्मणों की गढ़ी है वहाँ सन् १९१७ ई० में एक विधवा ब्राह्मणी लोहार के घर में बैठ गई। उसका पिता पुनर्विवाह करने को राजी था, परन्तु, उसके भाई-

बान्धवों ने उसका विरोध किया। अब वह और लोहार कालका में है।

* * *

हृषिकेश में बाल-हत्या

एक विधवा ब्राह्मणी की सास ने अपनी सम्पत्ति एक हृषिकेष के महन्त के सुपुर्द कर दी कि, वह विधवा उसके संरक्षण में रह कर भगवान का स्मरण करे। सास के मरने पर वह हृषिकेश में रहने लगी। परन्तु, वहाँ उसे गर्भ रह गया। गर्भपात का बहुत यत्न किया गया, पर बच्चा उत्पन्न ही हुआ; जिसे बड़ी भयानक रीति से मारा गया। उस विधवा की भी बड़ी हृदय-वेधक दुर्गति हुई। हा दैव !!

* * *

ससुराल की दुकान के सामने वेश्या।

लुधियाना के एक प्रसिद्ध वंश की कन्या ज़िला जालन्धर में विवाही थी। थोड़े दिनों में उसका आचार बिगड़ने लगा। ससुराल वालों से पुनर्विवाह के लिये कहा गया, परन्तु उन्होंने कहा-हमारी नाक कट जावेगी। उसका आचार और भी बिगड़ने लगा, तब लोगों ने किसी के साथ उसका पुनर्विवाह कर दिया। इस पर उसके ससुराल वाले बड़े क्रुद्ध हुये कि, हमारे घर की विधवा दूसरे घर में बैठी है। बिरादरी को उसकाया और उस लड़की

को बड़ा तङ्ग किया गया। अन्त में उसके दूसरे पति ने उसके ससुराल वालों के कहने से उसे निकाल दिया। अब वह ससुराल वालों की दूकान के सामने ही वेश्या बन कर बैठी है। शायद अब तो उनकी नाक बच गई होगी।

* * *

मुसलमान के साथ निकाह

आर्य-समाज-मन्दिर लाहौर में एक विधवा अपनी लड़की के साथ आई और शुद्ध होने की प्रार्थना की। इसका वृत्तान्त उसी के मुख से यह है—

मैं एक हिन्दू थानेदार की स्त्री हूँ जिसकी दो स्त्रियाँ थीं। थानेदार बूढ़ा था और मेरा विवाह इसके बुढ़ापे में हुआ था। थानेदार की मृत्यु पर मेरी सौत की सन्तान ने अभियोग किया; क्योंकि, थानेदार अपनी सब जायदाद मुझे दे गया था। मेरा कोई तरफ़दार न था। मैं पूर्ण युवा थी। मैं ने स्वयं ही मुक़दमे की पैरवी की। दो वर्ष तक मेरी दुर्गति रही और मैं मुक़दमा भी हार गई। तब एक मुसलमान मिला जिसके साथ मुसलमान बन कर निकाह कर लिया। इससे पहले एक लड़की मेरे पैदा हो चुकी थी। अब मुसलमान से भी न बनी। मुझे अपनी पुरानी दशा पर पश्चात्ताप है और शुद्ध होना चाहती हूँ।

* * *

एक ज़मींदार का क़त्ल

बाबू प्राण क्रिस्टो सरकार बङ्गाल के एक ज़मींदार अपने पड़ोस की एक २० वर्ष की विधवा से सम्बन्ध रखते थे। एक दिन विधवा को घर में न पाकर उसके भाई और चचा प्राण क्रिस्टो के घर में पहुँच गये और उसको वहीं मार डाला ; मुक़द्दमा भी चलाया।

* * *

१८ वर्ष के लिये कालापानी

ज़िला बिजनौर के एक रईस ने मरते समय एक युवती छोड़ी जिसका शीघ्र ही एक ज़मींदार से अनुचित सम्बन्ध हो गया। यह बात उसके भाञ्जे को बुरी लगी और उसने ज़मींदार को बन्दूक़ से मार दिया। कहते हैं कि, भाञ्जे का भी दोष था। अब वह १८ वर्ष की सजा भोग रहा है। उस स्त्री का अब भी यही हाल है।

* * *

गर्भवती को विष

राजपूताने की एक रियासत में ओसवाल जाति के एक पुरुष की विधवा चाची किसी प्रकार गर्भवती हो गई। लाला जी ने विष देकर अपनी चाची और गर्भस्थ बच्चे दोनों को

समाप्त कर दिया। यह वह हैं जो चींटी को मारना भी पाप समझते हैं।

* * *

भ्रूण हत्या की पुनरावृत्ति

जिला मुरादाबाद की एक कायस्थ विधवा को गर्भ रह गया जो उसके पिता ने बड़े यत्न से गिरवाया। जब वह लड़की ससुराल पहुँची तो वहाँ देवर से गर्भ रहा, वह भी गिराया गया। इस समय समस्त बिरादरी जानती है कि, उसका देवर से गुप्त सम्बन्ध है।

* * *

पिता और विधवा-पुत्री

सेण्ट्रल इण्डिया की एक रियासत में एक बाल-विधवा महाजनी का उसके पिता से ·············· पुलिस में रिपोर्ट हुई। हा दैव !!

* * *

"देवदर्शन" में भी कुछ स्त्रियों के बयान छपे हैं वह इस प्रकार हैं :—

विश्वबन्धु के मकान के पास ही एक कुलीन ब्राह्मण महाशय का घर था। उनके यहाँ एक परम रूपवती विधवा थी। उनके यहाँ परदे का बड़ा नियम था, तो भी विश्वबन्धु उनके यहाँ बे रोक-टोक जाया करते थे। कुछ दिनों के बाद न जाने क्यों ब्राह्मण महाशय ने मकान छोड़ देने का निश्चय किया। तब विश्व-

बन्धु ने अपनी माँ से कह सुन कर उस मकान को ख़रीद लिया। ब्राह्मण महाशय सपरिवार अपने देश (क़न्नौज) चले गये; और उस मकान की मरम्मत शुरू हुई। एक कोठरी जिसे पण्डिताइन, "ठाकुर जी की कोठरी" कहा करती थीं और जो साल में केवल कुल-देव की पूजा के समय खोली जाती थी, (बड़ी सड़ी नम और बदबूदार थी) उसे पक्की करा देना निश्चय किया। जब मिट्टी को मज़दूर खोदने लगा, सुना जाता है कि, उसमें से एक ही उम्र के कई बच्चों के पञ्जर निकले। एक तो हाल ही का दफ़नाया हुआ जान पड़ता था।

लेखक का फिर कहना है :—

सिविल सार्जन साहब जेल और अस्पताल आदि में लौट कर लगभग एक बजे बँगले पर आये। मेज़ पर तार मिला जिसका आशय यह था, "रोगी सख़्त बीमार है; जल्दी आने की कृपा कीजिये; देवदत्त।" साहब बड़े दयालु थे। उसी समय घोड़े पर सवार हो गये। उन्होंने देवदत्त के घर जा कर पूछा कि, रोगी कहाँ है? देवदत्त हाँफते-हाँफते आये और बोले हुज़ूर बड़ी ग़लती हुई; माफ़ कीजिये। साहब ने डपट कर पूछा कि, रोगी कहाँ है? देवदत्त गिड़गिड़ाते हुये साहब के हाथ में फ़ीस रख कर पैरों पर लोट गये और गर्भ-पात (Abortion) की दवा पूछने लगे। साहब लाल हो गये, ज़मीन पर ज़ोर से पैर पटक कर छिः कहकर लौट गये।

बँगले पर पहुँच कर उन्होंने इस बात की सूचना पुलिस-कप्तान के पास भेज दी।

उसी दिन रात को देवदत्त की चचेरी बहिन अकस्मात् मर गई और रातों रात चिता पर भस्म कर दी गई। यह विधवा थी। कई दिनों के बाद देवदत्त की तलबी कोतवाली में हुई। सुना जाता है कि, वहाँ के देवता ने अपनी पूजा पाई और रिपोर्ट में लिख दिया कि, देवदत्त एक प्रतिष्ठित रईस हैं। उस दिन उनकी बहिन को हैजा हो गया था इसी लिये साहब को बुलवाया था। वे Abortion नहीं बल्कि बन्धेज की दवा पूछना चाहते थे और यह क़ानूनन कोई जुर्म नहीं है।

* * *

(१) रामकली, विन्ध्याचल—मैं क्षत्राणी हूँ। मेरे भाई दर्शन कराने के बहाने से मुझे छोड़ गये। उनके इस तरह त्याग का कारण मैं समझ गई। इसलिये मैं ने कभी पत्र नहीं भेजा और न लौटने की चेष्टा की। अब भीख माँग कर अपनी गुज़र करती हूँ, मैं सर्वथा असहाय हूँ और कोई ज़रिया पेट पालने का नहीं है। उमर २०-२२ वर्ष की है। यहाँ मुझ-सी अभागिनी ८-९ स्त्रियाँ और हैं। उनका चरित्र ठीक नहीं है।

* * *

(२) लक्ष्मी, वृन्दावन—मैं ब्राह्मणी हूँ। मेरी सास आदि कई स्त्रियाँ मुझे यहाँ छोड़ कर चल दीं। पत्र भेजने पर उत्तर मिला कि,

अपना कर्त्तव्य स्मरण करो। यहाँ लौट कर क्या मुँह दिखलाओगी। वहाँ जमुना में डूब मरो। मेरी माँ नहीं है। पिता ने मेरे पत्र का कभी उत्तर नहीं दिया।

* * *

(३) श्यामा, हरिद्वार – मेरे पिता मुझे यहाँ छोड़ गये हैं............."

* * *

(४) राजदुलारी, गया—मेरे ससुराल के लोग बड़े धनी हैं। यहाँ मुझे पुरोहित जी छोड़ गये हैं। कुछ दिनों तक पाँच रुपया मासिक आता रहा। पर, अब कोई खबर नहीं लेता, पत्रोत्तर भी नहीं आता।

* * *

(५) नलिनी और सरोजनी, काशी—हम दोनों अभागिनें बङ्गाल की रहने वाली हैं। हम दोनों का एक ही घर में विवाह हुआ था। नलिनी विधवा हो गई। मेरे पति मुझे एक लड़की होने पर वैराग लेकर चल दिये। मेरे ससुर जो १०) रु० मासिक पेन्शन पाते थे काशी-वास करने वहाँ आये और हम दोनों को साथ लेते आये। तीन महीने बाद वह मर गये। एक परिचित बङ्गाली महाशय सहायता देने के बहाने से मिले और एक दिन हम दोनों का जेवर चुरा ले गये। फिर इसी से लगी हुई पुलिस

की एक घटना से बलपूर्वक हम अनाथों का सर्वनाश किया गया और इस दीन-हीन दशा को पहुँचाई गईं। एक सौ बीस रुपया क़र्ज़ हो गया है। इस पुत्री के सयाने होने पर इसी को बेच कर अथवा वेश्या बनाकर क़र्ज़ अदा करूँगी।

*　　　*　　　*

सहयोगी "प्रताप" के विशेष सम्वाददाता ने कुछ विधवाओं के बयान प्रकाशित कराये थे जो नवम्बर मास के 'चाँद' में भी प्रकाशित हो चुके हैं। वह इस प्रकार है :—

मुसम्मात मायादेवी, ब्राह्मणी, मौज़ा अशरफ़पुर, थाना जलालपुर अथवा बसरवारी, ज़िला फैज़ाबाद—

मेरा विवाह बहुत बचपन में मेरे माता-पिता ने अपना धर्म्म समझ कर कर दिया। दो वर्ष पश्चात् मेरा पति मर गया। मैं विधवा हो गई। विधवा होने की वजह से ससुराल और मायके में, दोनों ओर मेरा निरादर होता था। खाने-पीने को ठीक न मिलता था। कपड़े तक अच्छे नहीं पहन सकती थी। शादी-विवाह में विधवाओं का शरीक होना पाप समझा जाता था। मैं जवान हो गई। घर वालों ने मेरा कोई इन्तज़ाम नहीं किया। सरदार सिंह सिक्ख, जो मौज़ा भल्लू ज़िला गुजरात का रहने वाला है कपड़ा बेचने को जाया करता था। वह मुझे लालच देकर भगा लाया। १० वर्ष तक उसके

घर में रही। वहीं पर मेरे एक लड़की पैदा हुई। जब मैं कुछ बीमार हुई, काम करने के क़ाबिल न रही तब उसने एक दिन मेरे पेट में एक लात ज़ोर के साथ मारी; मैं ज़मीन पर गिर पड़ी। मेरे पाख़ाने और पेशाब की जगह से ख़ून गिरने लगा। उसने मेरा ज़ेवर और पैसा छीन कर निकाल दिया। अब बीमार होकर धर्म्मशाला में पड़ी हूँ। मेरी लड़की घरों से रोटी माँग लाती है; तब खाना खाती हूँ। अब वह एक मोहनी नाम की ब्राह्मणी बाराबङ्की के ज़िले से भगा लाया और २००) रु० में स्यालकोट बेच आया है। उधर से सैकड़ों औरतें पञ्जाब में भगा लाई जाती हैं और बेची जाती हैं। प्रायः कपड़े बेचने वाले पूरब से औरतें भगा लाते हैं। बहुत सी हिन्दुओं की औरतें मुसलमानों के हाथ फ़रोख़्त की गई हैं। बहुत सी हिन्दुओं की औरतें ईसाइन भी हो गईं। यह केवल बाल-विवाह का कारण है। अब मेरी बहुत बुरी दशा है।

निशानी अँगूठा—मायादेवी

* * *

मुसम्मी रामलाल बेटा मायादेवी—मेरी अवस्था १२ वर्ष की है। मेरा पहिला बाप हाकिम सिंह सन्तपुर ज़िला गुजरात का था। फिर मेरी माँ मायादेवी सरदार सिंह, ग्राम भल्लू ज़िला गुजरात वाले के घर आई। अब उसने मुझे और मेरी माँ को निकाल दिया। वह सख़्त बीमार है। यहाँ से कपड़े बेचने

वाले पूर्व में जाते हैं और औरतों को निकाल लाते हैं। मुसलमानों के हाथ बेच डालते हैं। ब्राह्मण-क्षत्रियों की सैकड़ों औरतें मुसलमान हो गई हैं।

निशानी अँगूठा—रामलाल, झेलम

* * *

कपड़े के व्यापार करने वाले जो पञ्जाबी स्त्रियों को भगा लाते हैं और पञ्जाब में उन्हें बेच लेते हैं, उनका वृत्तान्त कुछ लिख चुका हूँ, किन्तु वह लेख पूरा नहीं हुआ। मैं ने पता मँगाया है कि, सैकड़ों की संख्या में विधवा स्त्रियाँ संयुक्त प्रान्त से भगाई गईं और पञ्जाब में बेची गई हैं। पञ्जाब के कपड़े के व्यापारी देहली और कानपुर से सड़े-गले कपड़े खरीद कर संयुक्त प्रान्त में उधार देकर फ़सल पर अच्छा मुनाफ़ा करते हैं; और फिर अपने दलालों द्वारा विधवा-स्त्रियों को अपने साथ भगा लाते हैं और वे पञ्जाब में बेची जाती हैं। नीचे मैं उन कुछ स्त्रियों की फ़ेहरिस्त देता हूँ जो संयुक्त प्रान्त से भगा लाई गई हैं—

(१) मुसम्मात मायादेवी, ब्राह्मणी, मौज़ा अशरफ़पुर, (फ़ैज़ाबाद)।

(२) रामदेवी, ब्राह्मणी, शहर बरेली इसे ससियाँ भगा लाया और कुञ्जाह ज़िला गुजरात में रहता है।

(३)........मौज़ा गुलग्राम का जबलपुर से तीन औरतें

भगा लाया। एक को ४००) रुपये में बेचा, दूसरी को रावलपिण्डी में २५०) में बेचा, तीसरी को एक गूजर के हाथ बेचा।

(४)........मौज़ा कुञ्जाह जिला गुजरात का—सुन्दरिया ब्राह्मणी को शहर प्रयाग से भगा लाया। २००) रुपये में मुसलमानों के हाथ बेचा जो मौज़ा सिरगोदा के रहने वाले थे।

(५) मथुरी ब्राह्मणी को शहर सीतापुर से......पाचों फ़रोश कुञ्जाह का रहने वाला भगा लाया। ४००) रुपये में...के हाथ बेचा।

(६) शहर सीतापुर की लछमिनियाँ ब्राह्मणी को जो बेवा हो गई थी........कुञ्जाह का पाचों फ़रोश भगा लाया। एक माह उसे रखकर, मुसलमान के हाथ ७०) में बेच दिया।

(७) रामप्यारी क्षत्राणी शहर पीलीभीत की बेवा को कुञ्जाह का भगा लाया........और अपने मामा के लड़के के हाथ बेच डाला।

कृपा करके "प्रताप" द्वारा आप आन्दोलन करें कि, बाल-विवाह बन्द किया जाय; और विधवा-विवाह जारी करके या किसी भी उपाय से हिन्दू-समाज की रक्षा की जाय।

नोट—इसी प्रकार के सैकड़ों बयान और घटनायें हमारे पास मौजूद हैं, पर स्थानाभाव के कारण उन सभों को हम यहाँ प्रकाशित करने में असमर्थ हैं। समाज में हर तरह की होने वाली घटनाओं का केवल एक नमूना ही हमने पाठकों के सामने रक्खा है।

—लेखक

तेरहवाँ अध्याय
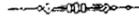
विधवाओं की दुर्दशा

एक प्रतिष्ठित महिला का पत्र

श्रीयुत सम्पादक महोदय "चाँद",

बारम्बार नमस्कार !

चाँद द्वारा स्त्री-संसार का जो अकथनीय उपकार आप कर रहे हैं इसके लिये हमारी बहिनों को ही नहीं बल्कि उनकी सन्तानों को आजीवन आप का ऋणी रहना होगा। ख़ास कर विधवाओं की दीन दशा पर जो प्रकाश आप समय-समय पर फेंकते आये हैं यह बात संसार से आज छिपी नहीं है। "समाज-दर्शन" द्वारा भी आपने विधवाओं की दशा का वास्तविक चित्र जनता के सामने रक्खा है। मैं एक अभागी विधवा अपनी समस्त विधवा-बहिनों की ओर से आपको हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। जिस समय आपके प्रभावशाली लेख अन्य मासिक पत्रिकाओं में छपा करते थे; मैं ने

उन सभों को भी बड़े ध्यान से पढ़ा है और उनका सदैव प्रचार करती रही हूँ। अभी मैं ने कलकत्ते के "भारत-मित्र" में इस बात की सूचना पढ़ी है कि, 'चाँद' का अगला अङ्क विधवाङ्क के रूप में निकल रहा है। सर्वशक्तिमान परमात्मा आपको इसमें सफलता प्रदान करें; और जनता को इतनी बुद्धि दें कि, वे हम अभागी विधवाओं की ओर शीघ्र ध्यान दें। हमारी दशा बड़ी करुणाजनक और लाचार है, और देश की उन्नति में इसके द्वारा भारी बाधा पड़ रही है।

मैं भी एक अच्छे घराने की लड़की और उससे भी अच्छे खत्री घराने की बहू हूँ। मेरे पिता कट्टर सनातन-धर्म्मी और भारत-धर्म्म-महामण्डल के सदस्य भी हैं। पर चूँकि मैं विवाह के केवल २१ दिन बाद विधवा हो गई और तब से उनके गले पड़ी हूँ; इसलिये उन्हें मेरी दशा पर दया आई और उन्होंने मेरा पुनर्विवाह करना निश्चय किया।

जिस समय मेरा विवाह हुआ उस समय मेरे पति को पहिले से ही संग्रहिणी की बीमारी थी। जो शायद शादी-विवाह में कुपथ्य (बदपरहेज़ी) के कारण बढ़ गई और ठीक इक्कीसवें दिन तार आया कि, वे परलोक सिधार गये। उस समय मेरी उम्र ८ वर्ष की थी। मैं ने सुना था कि, वे (पति) पहले से ही बीमार रहते थे। उनकी आयु जब विवाह हुआ, तो ३५ साल की थी और उनकी पहिली दो स्त्रियाँ प्रसूत-रोग से मर चुकी थीं।

इस समय मेरी अवस्था १७ साल की है। मैं ने·········क्लास तक अङ्गरेजी शिक्षा भी पाई थी। मेरी माता भी सौतेली होने के कारण स्वभावतः मुझ पर वह प्रेम नहीं रख सकतीं जो आज मेरी वह माता कर सकती, जिसके उदर से मैं जन्मी हूँ। उनका विरोध होते हुये भी मेरे पिता जी ने मुझ से एक दिन एकान्त में कई प्रश्न पूछे। थोड़ी देर की लज्जा को त्याग कर और सौतेली माता के अत्याचार से रिहाई पाने की अभिलाषा से मैं ने सजल नेत्रों से उनके प्रश्न का निर्भीकता से उत्तर दिया। उन बातों का खुलासा केवल इतना ही है कि, मैं ने पुनर्विवाह करने की अनुमति दे दी। मेरे पिता उस समय बहुत फूट-फूट कर रोये और घण्टों तक रोते रहे। मेरी······अवस्था की ओर देखते ही वे एकदम अधीर हो उठे और उसी दिन उन्होंने मेरा पुनर्विवाह करना निश्चित कर लिया जैसा कि, मैं पहिले ही निवेदन कर चुकी हूँ।

जिस दिन से घर और बाहर वालों को इस बात का पता लगा है—कि, मेरा दूसरा विवाह होने वाला है—घर-घर में मेरे पिता जी की निन्दा हो रही है; और लोग उन्हें बहुत दिक्क कर रहे हैं। हमारे रिश्तेदारों ने भी हम लोगों को छोड़ देने की धमकियाँ दीं और बहुत ही नीचता का परिचय दिया।

मुझे समाज से कुछ नहीं कहना है। मैं केवल यह बात जानना चाहती हूँ कि, किस वेद, पुरान या क़ुरान में यह आज्ञा दी गई है कि, पुरुष जब चाहें पैर की जूतियों के समान हमें त्याग कर

एक, दो, तीन, चार अथवा पाँच-पाँच विवाह कर लें। पर, स्त्रियाँ बेचारी ऐसी स्थिति में रहते हुये भी, जैसी आज मैं हूँ—दूसरा विवाह न कर सकें? यह समाज की भयङ्कर नीचता नहीं तो और क्या है?

मैं विधवा-विवाह के पक्ष में तो अवश्य हूँ, पर मेरे साथ यदि मेरी माता तथा घर वालों का अच्छा व्यवहार होता तो मैं अपने पुनर्विवाह की कल्पना, अपने दिल में भी न आने देती, और चूँकि अब मेरे विवाह कर लेने से मेरे पिता जी पर एक भारी आपत्ति आ जाने की सम्भावना है इसलिये पहिले तो मैं ने आत्म-हत्या की बात सोची थी। पर नहीं—मैं ऐसा न करूँगी। मैं अपने घर का परित्याग अवश्य करूँगी।

मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि, आजीवन मैं अपनी विधवा-बहिनों की सेवा में अपना शेष जीवन लगाऊँगी और जो कुछ मैं इस सम्बन्ध में कर सकती हूँ, करूँगी।

भारत में ऐसी कोई संस्था भी नहीं है कि, जिससे मिल कर मैं कार्य्य कर सकूँ। आप निसङ्कोच मेरे इस पत्र को विधवा-अङ्क में प्रकाशित कर दें; पर मेरा नाम वग़ैरह न लिखें, ताकि हमारी अन्य विधवा बहिनें, जिनका जीवन भी आज मेरे जैसा ही हो रहा है, स्वयं अपनी सहायता करें; और शीघ्र एक बड़ा भारी आन्दोलन महात्मा गाँधी जी, और उनके अनुयायियों के सामने उपस्थित कर दें, और उन्हें इस बात के लिये बाध्य करें

कि, राजनैतिक आन्दोलन करते हुये वे अपनी विधवा-बहिनों की दशा पर भी जरा ध्यान दें। मेरा पूर्ण रूप से विश्वास है कि, जब तक स्त्रियाँ, स्वयं इन बातों पर ध्यान न देंगी उनका उद्धार न हो सकेगा। अतएव परमात्मा के नाम पर, समाज के नाम पर और राष्ट्रीयता के नाम पर उन्हें तुरन्त इस ओर ध्यान देना चाहिए। सम्पादक जी! अन्त में मैं फिर आपको हार्दिक धन्यवाद देती हूँ और इस बात का विश्वास दिलाती हूँ कि, अन्य कार्यों के साथ ही साथ 'चाँद' जैसे अमूल्य पत्र का घर-घर प्रचार करना भी मेरा एक प्रधान उद्देश है; क्योंकि मैं स्वयं 'चाँद' को अपना पथ-प्रदर्शक समझती हूँ। मेरी भूल-चूक को क्षमा कीजिएगा......।

देहली, — भवदीया—

ता० ....३-२३ — ....कपूर

* * *

विधवा-विवाह-सहायक-सभा, लाहौर के मुख्य उर्दू पत्र "विधवा-सहायक" के गत मार्च १९२३ वाले अङ्क में दो भिन्न-भिन्न पत्र प्रकाशित हुए हैं जो विधवा-विवाह-सहायक- सभा के मन्त्री महोदय के पास आये थे। हम उनका हिन्दी अनुवाद दे रहे हैं :—

एक विधवा के पिता का पत्र

धर्ममूर्ति परोपकारीजन लाला जी साहब,

तस्लीम

निवेदन है कि, मेरी पुत्री जिसकी अवस्था इस समय १८ वर्ष की है, विधवा हो गई है। दो साल हुए मैं ने एक विद्यार्थी के साथ विवाह कर दिया था लेकिन दुर्भाग्यवश वह लड़का कठिन परिश्रम करने के कारण इन्ट्रैन्स की परीक्षा पास करते ही बीमार हो गया। मैं ने, यद्यपि मेरी हैसियत न थी—मगर मरता क्या न करता—डॉक्टरों की आज्ञानुसार उसे एक साल पहाड़ पर भी रक्खा लेकिन वह अच्छा न हो सका। चार मास हुए देहान्त हो गया !

लाला जी......................उसे * देख कर मुझे बहुत ही दुख और क्लेश होता है। मेरे परम मित्र लाला.................हेडक्लर्क दफ़्तर...............लाहौर में हैं। उन्हों ने यह सलाह दी थी कि, ऐसी विधवा हो जाने वाली लड़कियों की दूसरी शादी करा देने का प्रबन्ध करने वाले आप हैं—उनसे तुम पत्र व्यौहार करो। सो आपकी सेवा में विनीत और बहुत नम्र निवेदन है कि, मेरी लड़की के वास्ते कोई सुशील.........लड़का जिसकी अवस्था २० या २२ हद्द पच्चीस वर्ष की हो—और

* अर्थात् पुत्र-वधू को।

पहिली स्त्री से उसे कोई सन्तान न उत्पन्न हुई हो तो कृपा करके उसके पूरे पते से मुझे क़ायदे से, या लाहौर में लाला.........जी को बतला दें।

और यदि इसी समय आपकी निगाह में कोई ऐसा लड़का नहीं है, तो मेरा नाम अपने रजिस्टर में नोट कर लें। सुविधा होने पर अवश्य इसकी सूचना दें। मैं आपकी इस महती कृपा को कभी न भूलूँगा।

बैसाख तक मैं लड़की का पुनर्विवाह अवश्य कर देना चाहता हूँ; क्योंकि नव-विवाहित युवती बालिका को घर में बैठी देखकर मेरा और मेरी स्त्री का दिल बहुत दुखी होता है।

लाला...........जी ने श्रीमान् लाला शिवदयाल साहब, एम० ए० से भी इस बात की चर्चा की थी और उन्होंने भी इस बात की सलाह दी थी कि, आप लाला लाजपतराय साहनी के पास इसलिये प्रार्थना-पत्र भेज दें, फिर हम सोच कर और अच्छा लड़का देख कर इस बात की सूचना दिला देंगे। लाला शिवदयाल जी को मेरी इस बिपत्ति का सारा हाल विदित है।

सो आप कृपा करके इस मामले में अवश्य मेरी सहायता करें और कोई बहुत ही सुशील, नेकचलन और किसी उच्च कुल का लड़का अवश्य बतला दें।

लड़की की अवस्था १८ वर्ष की है......क्लास तक पढ़ी हुई है। उर्दू भी लिख-पढ़ सकती है। घर-गृहस्थी के काम-काज से भी

भली-भाँति परिचित है और वह बेचारी देवी फेरों की चोर है। एक दिन भी अपने ससुराल के घर नहीं गई है। अगर आपके यहाँ चन्दे के रूप में कुछ रुपया जमा करने का नियम हो तो वह बाबू...........जी से वसूल कर लीजिये या मुझे लिख दीजिये। मैं यहाँ से मनीआर्डर द्वारा भेज दूँगा। *

यदि इसके अलावा आप कोई बात जानना चाहें तो मैं आप के लिखने पर लिख दूँगा।

आवश्यक प्रार्थना यह है कि, इस बात को गुप्त रक्खा जावे † और मैं सामाजिक रीति ‡ से या सनातनी रीति से अर्थात् जैसा कि, लड़का या उसके माता-पिता स्वीकार करेंगे, विवाह करने

---

* लाहौर की विधवा-सहायक-सभा ऐसे सम्बन्ध कराने में किसी प्रकार का चन्दा नहीं लेती, बल्कि यथाशक्ति आर्थिक सहायता भी देती है। पत्र-व्यवहार लाला लाजपतराय जी साहनी, बी० ए०, अवैतनिक मन्त्री, विधवा-सहायक-सभा, मैकलागन रोड, सलीम बिलडिंग्ज़, लाहौर (पञ्जाब) से करना चाहिये।

† ऐसी घटनाओं के प्रकट हो जाने पर ऐसे सज्जनों की, जो अपनी कन्याओं का वास्तव में पुनर्विवाह करना चाहते हैं, घर-घर निन्दा होने लगती है और समाज उनका बहिष्कार कर देता है।

‡ अर्थात्, आर्यसमाजी नियमानुसार।

को तैयार हूँ। यद्यपि मेरे अपने विचार सनातनी हैं, किन्तु मुझे सामाजिक रीति से कर देने में कोई आपत्ति नहीं है।

भवदीय.........

*　　*　　*

एक विधवा कन्या का अपने हाथ से हिन्दी में लिखे हुए पत्र का सारांश

दुखियों पर दया करने वाले पूजनीय मन्त्री जी,

सेवा में निवेदन है कि, मैं एक विधवा दुखियारी आपकी सहायता के लिये प्रार्थना करती हूँ। मेरी अवस्था इस समय १८ वर्ष की है। मुझे विधवा हुये ३ साल हो गये। मैं वैश्य-अग्रवाल जाति की हूँ। मेरे एक लड़की हुई थी जो इस समय ४ वर्ष की है और कोई सन्तान नहीं हुई। मेरे माता-पिता जाति का डर होने के कारण और निर्धन होने के कारण चुप हैं और मेरे शत्रु बन रहे हैं। मेरे सास-ससुर भी, जैसा हिन्दू-विधवा के साथ, इस जाति में घोर अत्याचार प्रचलित है कर रक्खा है, करते हैं। शोक है, मेरे जेठ जिनकी उम्र ५० वर्ष से कम नहीं है, जिसके दो लड़के १७ और १२ वर्ष के और एक लड़की ११ वर्ष की है— पिछले साल १९ साल की एक विधवा से विवाह कर लाये, लेकिन मुझ दुखिया पर जिसका न पिता के घर जीविका का सहारा है और न ससुराल में, किसी को परमात्मा के भय का भी ख़्याल नहीं

होता। दिन भर सारे कुटुम्ब की सेवा करते रहने पर भी रोटी का सहारा नहीं दीखता ! हर समय सब की घुड़कियों और तानों से अति दुखित हो रही हूँ। कई बार जी में आता है कि, कुए में छाल मार कर इस मुसीबत से छुटकारा पा लूँ।

हे दयालु ! मैं आपसे इस बात की प्रार्थना करती हूँ कि, इस पत्र का पता मेरे सम्बन्धियों को न हो और यदि किसी प्रकार आप मेरा पुनर्विवाह कर दें या करवा दें तो आजीवन आपका अहसान न भूलूँगी और ईश्वर आपको इस दया का शुभ फल देंगे। मेरे पिता का पता यह है :—

लाला.....................मौज़ा..........................तहसील ....और मेरे ससुर लाला......................... क़सबा........में रहते हैं। मेरी खुफ़िया कोशिश करो तो पिता जी से ही करना। ससुर जी से न करना। मेरे पास कोई पत्र न डालना। मैं अबला दुखिया पराधीन हूँ। यदि आप मेरा काम कर दें तो मानों मुझे मरने से बचा लेंगे। सिवाय ईश्वर के या आप ऐसे परोपकारियों के मेरा कोई नहीं। आशा है, मेरी प्रार्थना पर शीघ्र ध्यान देकर कोई उचित प्रबन्ध कर देंगे।

आपसे परोपकारियों की शुभचिन्तका—

दीन दुखिया........'वैश्य अग्रवाल'

* * *

अभी हाल ही की बात है। एक रानी साहिबा ने अपनी एक बङ्गाली मित्र (स्त्री) को इस आशय का एक पत्र लिखा था :—

बहिन,

तुमने कई बार मुझसे ऐसे प्रश्न किये हैं जिनसे मैं अत्यन्त लज्जितहूँ, पर आज मैं तुम्हें अपनी कहानी जी खोल कर सुनाऊँगी.........

मैं १२ वर्ष की अवस्था ही में विधवा हो गई। अपने पति की मैं तीसरी स्त्री थी ! वे जीवन-पर्यन्त वेश्याओं के हाथ की कठपुतली बने रहे। उनमें और भी कई दुर्व्यसन की शिकायतें थीं। पर, थे तो—मेरे धैर्य्य धरने को यही बहुत था। उनके देहान्त के बाद जब मैं ने १६ वें वर्ष में पदार्पण किया तो मुझे जिन कष्टों का सामना करना पड़ा उन्हें मैं ही जानती हूँ। मैं ने अपनी सास से एक दिन बातों-बातों में विधवा-विवाह की सराहना की। मेरा मतलब यह था कि, शायद यह मेरा मतलब समझ सकेंगी। पर, वह तो उलटी आग-बबूला हो गई और न जानें क्या-क्या बकने लगी। मेरे जी में तो आया कि, बुढ़िया का गला घाट दूँ, पर जी मसोस कर रह गई, क्योंकि वह जानती थी कि, जब से मेरा विवाह हुआ मैं ने एक दिन भी पति का मुँह नहीं देखा था। परदे का मेरे यहाँ बड़ा कड़ा प्रबन्ध था। सन्तरी वरदी तलवार लिये पहरे पर खड़ा रहता था। केवल नौकर चाकर या मेरे सम्बन्धी ही कोठी के भीतर आ

सकते थे। मैं ने मन ही मन अपनी काम-वासना को शान्त करने की बात स्थिर कर ली। पर, सोचने लगी कि, इन इने-गिने लोगों में से किसको अपने प्रेम का पात्र चुनूँ। एक नौकर (बारी) पर एक दिन मेरा दिल आ गया। मैं ने अपना सर्वस्व उसीको सौंप दिया और यहाँ से मेरी पाप-वासना का 'श्रीगणेश' आरम्भ हुआ। कुछ दिनों के बाद लोग कुछ-कुछ भाँप गये। मैं ने उसको (बारी को) निकलवा दिया। पर, मुझे चैन नहीं पड़ा। फिर पति के एक नज़दीकी रिश्तेदार पर मैं मुग्ध हो गई। पर, उनसे भी पटी नहीं। फिर रामलाल खिदमदगार से मेरा सम्बन्ध हो गया। कहने का सारांश यह कि, केवल बीस साल के भीतर ही क़रीब तीस व्यक्तियों का आश्रय मैं ने लिया। पर, किसी से भी मैं सन्तुष्ट नहीं हुई। अन्त में एक दिन मैं ने मन ही मन बड़ा पश्चात्ताप किया। अपने को धिक्कारा भी बहुत, पर मैं ने अपने को अन्त में दोषी नहीं पाया। इन कुल व्यभिचारों का दोष मैं ने समाज के सर छोड़ा। मैं पहिले ही पुनर्विवाह करना चाहती थी, वह क्यों नहीं किया गया? क्या जहाँ पानी नहीं होता वहाँ प्यास भी नहीं लगती? उस दिन बजाये इसके कि, मैं अपने किये पर पश्चात्ताप करूँ, मैं नित्य नया आनन्द लूटने लगी, पर मेरी पापात्मा को शान्ति कभी भी प्राप्त नहीं हुई। कहते लाज आती है कि, चौदह बार मुझे गर्भ रह चुका, पर बनारस आदि से दाइयें बुलवा कर मुझे ख़ासी भ्रूण हत्यायें करनी पड़ीं। फिर भी मेरे स्वास्थ का अन्त नहीं हुआ।

जिस प्रकार विधवाओं को शास्त्रानुकूल रहना चाहिए मैं ठीक उसके विपरीत रहती भी थी। मैं नित्य कामोत्पादक वस्तुयें खाती। मेरा आहारादि भी, कहने की ज़रूरत नहीं, रानियों ही की तरह होना चाहिये। शास्त्र में लिखा है कि, विधवाओं को एक बार भोजन करना चाहिये; वह भी रींधा हुआ चावल, लपसी और केवल एक साग; सोना चाहिये तख़्त पर अथवा ज़मीन पर; कम्बल ओढ़ना चाहिये और कफ़नी पहिननी चाहिये; पान-इत्र आदि से परहेज़ करना चाहिये, इत्यादि। अब मैं अपना हाल क्या कहूँ? प्रातःकाल ४१ बादाम और आध सेर दूध, बंसलोचन और इलायची आदि डाल कर पीती हूँ, फिर हलुआ या ऐसी ही कोई पुष्ट चीज़ ९ बजे खाती हूँ, दोपहर को रसोई और खीर वग़ैरह, फिर सो रहती हूँ। मेरा पलङ्ग कलकत्ते के Whiteway Laidlaw के यहाँ से ५८०) रुपये में आया है। उस पर से तो उठने का जी नहीं चाहता। फिर शाम को शर्बत आदि पीती हूँ। मेरे कहने का मतलब सिर्फ़ इतना ही है कि, भला यह ख़ुराक आदि खाकर कौन ऐसा पुरुष अथवा स्त्री है जो अपने को वैधव्य में सँभाल सके। हाँ, एक बात तो कहना मैं भूल ही गई। मैं कम से कम पाँच छः सौ पान प्रति दिन खाती हूँ, यहाँ तक कि, मेरे दाँत घिस गये हैं। मेरी अवस्था इस समय ५० वर्ष के ऊपर है पर, मैं अब भी उन युवतियों के कान काटती हूँ जिनको १५ या १६ वर्ष की नवयुवती होने का घमण्ड है।...तुमसे कोई बात छिपी तो

है नहीं। आज कल मेरा सम्बन्ध एक......से है, पर नहीं कह सकती कि, यह प्रेम कब तक क़ायम रहेगा। मैं ने भी प्रतिज्ञा कर ली है कि, अब मैं बदनाम तो काफ़ी से ज्यादा हो चुकी हूँ, मेरे बहुतेरे सम्बन्धियों ने भी मुझे छोड़ दिया है और जो आते-जाते हैं उनको मुझ से 'पैदा' की आशा है। धन मेरे पास काफ़ी है और ऐसा है कि, अभी हजारों वर्ष इस दौलत पर चैन कर सकती हूँ। बहिन! क्या करूँ, मेरे हृदय में अग्नि दहक रही है। मैं भीतर से तो समझती हूँ कि, घोर नरक की यातना है पर, बिना लिखी-पढ़ी हूँ। कथा-पुराण मैं ने बहुत सुने हैं। पूजा भी वर्षों की है, पर आत्मा को शान्ति नहीं! फिर सोचती हूँ कि, मनुष्य का चोला बार-बार थोड़े ही मिलता है। पर साथ ही बहिन, मैं साफ़ कहे देती हूँ कि, यदि मेरा विवाह दुबारा हो गया होता तो आज मैं ऐसी व्यभिचारिणी कदापि न होती। पर, यह मैं ने इतना उपद्रव किया है, जान-बूझ कर इसलिये कि, हमारे बिरादरी वाले देखें और मुझसे सबक़ लें। नवयुवतियों का, जो विधवा हैं और जिन को पति की आवश्यकता है, उनका पुनर्विवाह करें और इस पापमय जीवन से उनकी रक्षा करें। मुझे आशा है कि, मेरी कहानी से लोग जरूर सबक़ सीखेंगे और यदि वास्तव में ऐसा हुआ तो मेरी आत्मा बहुत कुछ शान्ति लाभ कर सकेगी और तभी मैं अपने दुष्कर्मों का प्रायश्चित करूँगी। पर, बात गुप्त रखना, नहीं तो लोग मुझसे नफ़रत करेंगे। बहिन!

यदि लोग मुझे प्रेम से वश किये होते तो क्या ही अच्छा होता।

तुम्हारी..................

ता०....५-१९१७

रानी...........

*　　　*　　　*

इस पत्र का उत्तर बङ्गालिन-स्त्री ने इस प्रकार दिया था :—

रानी बहिन !

नमस्ते,

तुम्हारा पत्र मिला। जितनी बार पढ़ती हूँ उतना ही आनन्द और दुख दोनों ही होते हैं। मैं आपके प्रेम की पात्र हो सकी यह जान कर मुझे बड़ा ही हर्ष हुआ। आप जानती हैं कि, मैं भी इस वेदना का बहुत नहीं, तो कुछ अंशों में अवश्य अनुभव कर चुकी हूँ और करती भी हूँ। मेरा विवाह कब हुआ और मेरे पति देवता कब चल बसे इसका मुझे ज्ञान भी नहीं है। मेरी अवस्था केवल सात वर्ष की थी, तभी मेरा सब कुछ हो चुका था। पर, पिता जी ने मेरी शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। मैं ने १० वर्ष तक संस्कृत अध्ययन करने से बहुत कुछ सीखा और देखा भी। मेरे पिता पुनर्विवाह के पक्ष में थे और मैं ने स्वयं ऐसा करना उचित तो समझा, पर किया नहीं। मैं ने मन ही मन इस बात की प्रतिज्ञा अवश्य की कि, आजीवन मैं अपना तन-मन इस

आन्दोलन में लगाऊँगी कि, मेरी अन्य बहिनों का कष्ट नाश हो सके। मैं परमात्मा का स्मरण करती थी। घण्टों प्रार्थना करती थी कि, मुझमें इतना बल दें कि, मैं अपने कठिन व्रत को कुछ अंशों में पूरा कर सकूँ। आपको यह जान कर हर्ष होगा कि, मैं बहुत कुछ करने में सफल हो सकी। इस समय मेरी अवस्था ४२ साल की है। मैं अन्य बहिनों से विशेष सन्तुष्ट हूँ। समय-समय पर मुझे अपार आनन्द प्राप्त होता है।

मनुष्य को अपनी बुद्धि के अनुसार परमात्मा का ज्ञान होता है। ज्यों-ज्यों वह परमात्मा की कृपालुता, दयालुता और प्रेम को अपने चित्त में स्थापना करके उसे अनुभव करता है त्यों-त्यों वह सर्वशक्तिमान परमात्मा के समीप होता जाता है।

मैं भी आज दिल खोल कर अपना हाल कहूँगी, पर आपके चरणों की शपथ खाकर कहती हूँ, वास्तव में मैं प्राणिमात्र को देवता समझती हूँ और उनकी सेवा करना अपना कर्त्तव्य।

मैं ने आपका पत्र पढ़ा, और कई बार पढ़ा। आपके चित्त की स्पष्टता और सच्चाई देख कर मैं गद्गद् हो गई हूँ। आपने सच्चे दिल से अपने हार्दिक भावों को मुझ पर बड़े ही मार्मिक शब्दों में प्रकट किया है। मैं आपको सादर एक सलाह दूँगी या यों कहिये कि, आपका सर्वनाश करूँगी।

आप जानती हैं कि, संसार भर के भाग्य का निपटारा होने वाला है। भारत की जानों की भी बाज़ी लगी हुई है। विजय-लक्ष्मी

भारत-माता की गोद में कब आवेंगी यह कोई नहीं कह सकता, पर उद्योग करना भारतीय मात्र का, चाहे वह स्त्री हो वा पुरुष, लक्ष्य होना चाहिये। समय बड़ा उत्तम है। मैं जानती हूँ कि, आपके पास जङ्गम सम्पत्ति अपार है और गोकि आप उसे बेच नहीं सकतीं, पर साथ ही मैं यह भी जानती हूँ कि, नक़दी भी अपार है। मेरी राय में, यदि आप उचित समझें तो यह कुल धन राष्ट्रीय कोष में मेरा पत्र पहुँचते ही दान दे दें। स्वयं स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करें। अपने नौकर-चाकर और अन्य सम्बन्धियों को भी यही सलाह दें। अपना रहन-सहन बड़ा ही सीधा और सरल कर लें। हर साल आपको एक लाख के ऊपर धन मिलेगा। इसे आप किसानों की उन्नति में व्यय करें। यही सब कार्य ऐसे हैं जिनसे इस पाप का वास्तविक प्रायश्चित हो सकेगा और आपकी आत्मा शान्ति लाभ कर सकेगी।

परमात्मा को साक्षी देकर आपको सच्चे दिल से अपने इन कामों के लिये पछताना होगा। तभी आप में धैर्य्य और आत्म-शक्ति का सञ्चार होगा। अपने चित्त को सदैव शुद्ध और एकाग्र रखना नितान्त आवश्यक है।

मैं आपको शिक्षा नहीं देती; नहीं, दे ही नहीं सकती। आप स्वयं बड़ी हैं, बुद्धिमान हैं और यदि जरा भी ध्यान दें तो बड़ी सरलता से समझ सकती हैं। आपके पत्र द्वारा मैं स्पष्ट रूप

से समझ सकी हूँ कि, आप अवश्य ही इस ओर ध्यान देने की कृपा करेंगी।

सदैव आपकी—

.................."

("समाज दर्शन" से उद्धृत)

* * *

बाल-हत्या

श्री० छेदालाल सिंह, बी० ए०, हेडमास्टर गवर्नमेन्ट नॉर्मल स्कूल फ़ैज़ाबाद ने सहयोगी "विधवा-सहायक" में प्रकाशित कराया है कि, नवेली नाम की एक विधवा बालिका को, जो जिला पीलीभीत की रहने वाली है, अनुचित सम्बन्ध से एक बच्चा उत्पन्न हुआ। उसने नवजात बालक के मुँह में रुई ठूँस कर एक तालाब में डाल दिया ताकि उसकी बदनामी न हो, लेकिन दुर्भाग्यवश बच्चे की लाश पानी पर तैरती हुई पाई गई। पुलिस ने जाँच करके स्त्री को गिरफ़्तार कर लिया और उस पर मुक़दमा चलाया गया। गत १९ मार्च १९१३ को पीलीभीत के सेशन जज ने स्त्री को आजीवन काले पानी की सजा दी। हाईकोर्ट में अपील की गई। स्त्री का ख़्याल करके हाईकोर्ट ने नवेली को केवल ६ मास का कठोर दण्ड देकर छोड़ दिया।

चौदहवाँ अध्याय

विद्वानों की सम्मतियाँ

महात्मा गाँधी के विचार

“नवजीवन” में विधवाओं के विषय में मि० खाण्डेलवाल ने एक लेख लिखा था। उसमें उन्होंने समस्त भारत की मनुष्य-संख्या से निम्नलिखित अङ्क दिये थे। मुसलमान हिन्दुओं में विधवाओं की संख्या साथ वा अलग-अलग, नीचे दी जाती है :—

उमर	विवाहित बालिकायें	विधवायें
१ महीने से १२ महीने तक	१३,२१२	१७,०१४
१ वर्ष से २ वर्ष तक	१७,७५३	८५६
२ ” ३ ”	४९,७८७	१,८०७
३ ” ४ ”	१,३४,१०५	९,२७३
४ ” ५ ”	३,०२,४२५	१७,७०३
५ ” १० ”	२२,१९,७७८	९४,२४०
१० ” १५ ”	१,००,८७,०२४	२,२३,०३२

उमर	हिन्दू विधवायें	मुसलमान विधवायें
१ महीने से १२ महीने तक	८६६	१०९
१ वर्ष से २ वर्ष तक	७५५	६४
२ " ३ "	१,५६४	१६६
३ " ४ "	३,९८७	५,८०६
४ " ५ "	७,६०३	१,२८१
केवल ५ वर्ष की	१४,७७५	२,१३२
५ से १० वर्ष की	७७,५८५	२४,२७६
१० से १५ "	१,८१,५०७	३६,२६४

भिन्न-भिन्न प्रान्तों में विधवाओं की संख्या इस प्रकार है :—

बंगाल ...	१७,५८३	यू० पी० ...	१७,२०९
बिहार ...	३६,२७५	बड़ौदा ...	७८३
बम्बई ...	६,७२६	हैदराबाद ...	६,७८२
मद्रास ...	५,०३८	× ×	×

इन संख्याओं पर महात्मा गाँधी ने यह टिप्पणी की थी—"जो इन अङ्कों को पढ़ेगा वह अवश्य रोवेगा, अन्धे सुधारक यह कहेंगे कि, विधवा-विवाह इस रोग की सबसे अच्छी औषधि है। किन्तु, मैं यह नहीं कह सकता। मैं बाल-बच्चों वाला आदमी हूँ। मेरे कुटुम्ब में भी विधवायें हैं। किन्तु, मैं उनसे यह कहने का साहस

देखो तो बूढ़े की बातें, पहुँच चुका यम का फ़र्मान ।
तो भी उसको बना हुआ है, अभी जवानी का अर्मान ॥

नहीं कर सकता कि, तुम पुनर्विवाह कर लो, पुनर्विवाह करने का ख्याल तक उनके दिल में न आवेगा। इसका मतलब यह है कि, पुरुष यह प्रतिज्ञा कर लें कि, हम पुनर्विवाह न करेंगे। किन्तु, इसके अलावा और भी उपाय हैं जिनको हम काम में नहीं लाते, नहीं उन्हें हम काम में लाना ही नहीं चाहते, और वे यह हैं :—

(१) बाल-विवाह एक दम रोक दिया जावे।

(२) जब तक पति और पत्नी इस अवस्था तक नहीं पहुँचे कि, एक दूसरे के साथ रह सकें तब तक उनका विवाह न होना चाहिये।

(३) जो बालिकायें अपने पति के साथ नहीं रही हैं उन्हें केवल विवाह करने की आज्ञा ही नहीं, किन्तु पुनर्विवाह करने के लिये उत्साहित भी करना चाहिये। ऐसी लड़कियों को तो विधवा ख्याल ही न करना चाहिये।

(४) वे विधवायें जिनकी अवस्था १५ साल से कम है या जो अभी जवान हैं उन्हें पुनर्विवाह की इजाज़त देनी चाहिये।

(५) विधवा को लोग अशुभ समझते हैं, किन्तु इसके विपरीत उसे पवित्र समझना चाहिये और उनका सन्मान करना चाहिये; और :—

(६) विधवाओं की शिक्षा का उचित प्रबन्ध होना चाहिये।

* * *

श्री० ईश्वरचन्द्र जी विद्यासागर के विचार

अनन्य समाज-सुधारक और विधवाओं की मुक्ति के कार्य में अविरल परिश्रम करने वाले प्रसिद्ध विद्वान् पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी ने भारतीय विधवाओं को घोर दुख से छुड़ाने के लिये पुरुष-समाज से कितने मार्मिक शब्दों में अपील की है :—

देश-निवासियो ! आप धोखे और निद्रा में कब तक पड़े रहेंगे ? एक बार तो अपने नेत्र खोलिये और देखिये कि, हमारे ऋषियों और पूर्वजों की वही धर्म-प्राण भूमि भारत-मही, जो एक समय में संसार के सर्वोच्च आसन पर विराजमान थी, आज व्यभिचार की प्रबल धार में बही जा रही है। भयङ्कर और गहरी खड्ड में आप गिरे हुये हैं। अपने वेद और शास्त्रों की शिक्षाओं की ओर दृष्टि फेरिये और उनकी आज्ञाओं पर चलिये तब आप अपने देश की कलङ्क-कालिमा को धो सकेंगे। परन्तु, अभाग्यवश सैकड़ों वर्षों के पक्षपात से आप ऐसे प्रभावित हो गये हैं और पुरानी रीति-रिवाज के ऐसे 'लकीर के फ़क़ीर' हो गये हैं कि, मुझे भय है कि, आप शीघ्र ही अपनी मर्यादा पर आकर शुद्धता और ईमानदारी के मार्ग पर नहीं आ सकेंगे। आपकी आदतों ने आपकी बुद्धि पर ऐसा परदा डाल दिया है और आपके विचारों को ऐसा सङ्कुचित कर दिया है कि, आपको अपनी विधवा-बहिनों पर दया का भाव लाना कठिन हो गया है।

जब काम-शक्ति के प्रबल आक्रमण के कारण वे वैधव्य के नियमों का उल्लङ्घन कर देती हैं उस समय आप उनके व्यभिचार से आँख मूँद लेते हैं। उस समय उनका उचित प्रबन्ध न कर और अपनी मान-मर्यादा खोकर उन्हें व्यभिचार करने देते हैं। किन्तु, कितने आश्चर्य का स्थान है कि, आप अपने शास्त्रों की आज्ञा नहीं मानते और शास्त्रों की आज्ञानुसार उनका पुनर्विवाह करके उन्हें भयङ्कर दुखों से छुटकारा नहीं दिलाते। उनका पुनर्विवाह करने से आप भी अनेक पाप, दुख और अधर्म से बच जाँयगे। आप सम्भवतः यह ख्याल करते हैं कि, पति के मर जाने के बाद स्त्रियाँ मनुष्यता तथा प्रकृति के प्रभावों से सर्वथा शून्य हो जाती हैं और उनकी कामेच्छा भी उन्हें नहीं सताती। किन्तु, व्यभिचार के नित्य नये उदाहरण से आपका विश्वास सर्वथा ग़लत सिद्ध हो जाता है। खेद है कि, आप जीवन के वृक्षों से ज़हर के बीज बो रहे हैं। यह कैसा शोक का स्थान है! जिस देश के मनुष्यों का हृदय दया और तर्स से शून्य है, जिन्हें अपने भले-बुरे का ज्ञान नहीं है और जहाँ के मनुष्य साधारण शिक्षा देना ही अपना बड़ा भारी कर्तव्य और धर्म समझते हैं उस देश में स्त्रियाँ कभी उत्पन्न ही न हों।

*　　*　　*

डॉक्टर सपरू के विचार

डॉक्टर सर तेज बहादुर सप्रू महोदय, एम० ए०, एल० एल० डी०, के० सी० आई० ई० से विधवाओं के सम्बन्ध में उनके विचार जानने के लिये 'चाँद' के ख़ास प्रतिनिधि ने उनसे भेंट की थी, अतएव आपके विचार हम प्रश्नोत्तर के रूप में नीचे देते हैं :—

प्रश्न—विधवाओं के पुनर्विवाह के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर—मैं बहुत ज़ोरों से विधवा-विवाह के पक्ष में हूँ। विधवाओं का पुनर्विवाह अवश्य और ज़रूर होना चाहिये। ऐसा न करना मैं मनुष्यता के ख़िलाफ़ (inhuman) समझता हूँ।

प्रश्न—यह ख़्याल आपका समस्त विधवाओं के लिये है अथवा केवल बाल-विधवाओं के लिये ?

उत्तर—बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह तो अवश्य ही होना चाहिये पर, अन्य विधवाओं की इच्छा पर ही पुनर्विवाह का प्रश्न छोड़ देना चाहिये। यदि स्त्री की इच्छा है कि, वह पुनर्विवाह करे तो इसमें किसी प्रकार की रोक-टोक न होनी चाहिये और समाज में उनके प्रति अश्रद्धा के भाव न उत्पन्न होने चाहिये।

प्रश्न—जो विधवायें कुछ दिन अपने पति के साथ रह चुकी हैं अथवा जिन्हें बच्चे उत्पन्न हो चुके हैं उनके बारे में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर—मैं इन विधवाओं में और उनमें कोई भी फ़र्क नहीं समझता। यदि वे चाहें तो फ़ौरन उनका विवाह कर देना चाहिये।

प्रश्न—आप सुनते और समाचार-पत्रों में पढ़ते होंगे कि, प्रायः स्त्रियाँ और ख़ास कर विधवायें भगाई और बेची जा रही हैं, इन्हें किस प्रकार रोका जावे और किस तरह उनकी रक्षा हो सकती है?

उत्तर—स्त्रियों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध होना चाहिये ताकि वे बदमाशों के बहकावे में न आ जावें। जो लोग विधवाओं को इस तरह बहकाकर उनका जीवन नष्ट करते हैं उन्हें सरकार की ओर से कठोर से कठोर और सख़्त से सख़्त दण्ड मिलना चाहिये। इतना ही नहीं, समाज को चाहिये कि, ऐसे बदमाशों का सामाजिक वहिष्कार (Social boycott) अवश्य करे और यथाशक्ति उन्हें कड़े से कड़ा दण्ड दिलाने का प्रयत्न करे। इसके लिए क़ानून मौजूद हैं।

प्रश्न—क़ानून मौजूद तो अवश्य हैं, पर होता कुछ भी नहीं। सरकार की ख़ुफ़िया पुलिस की समस्त शक्ति तो अपने बचाव में लगी है। वह राजनैतिक आन्दोलनकारियों के पीछे लगी रहना ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझती है तो भला इन मामलों की जाँच किस प्रकार हो?

उत्तर—मैं यह बात मानने के लिये तैयार नहीं हूँ। किसी दूसरे मामले में पुलिस भले ही आनाकानी करे, पर ऐसे मामलों

में वह अवश्य काफ़ी जाँच-पड़ताल करती है। जब तक उसे ऐसी घटनाओं का पता ही न लगेगा वह क्या कर सकती है ?

प्रश्न—सो बात तो नहीं है। पञ्जाब की सरकार इस बात को भली-भाँति जानती है कि, वहाँ लड़कियों की ख़रीद-फ़रोख़्त अन्य प्रान्तों से अधिक है। सन १९११ में स्वयं पञ्जाब की सरकार ने हिन्दू-सभा की रिपोर्ट को सत्य बतलाया है और इस बात को तसलीम किया है। लेकिन जानते हुये भी कोई ख़ास प्रबन्ध मेरी समझ में आज तक नहीं किया गया। रही बात पता लगाने की सो यह असम्भव है कि, यदि वास्तव में इन मामलों की जाँच की जाय और पता न चले। असल बात तो यह है कि, भारत-सरकार को ऐसी बातों की परवाह ही नहीं है। क़ानून पास कर देने ही से क्या होता है ?

उत्तर—यह सच है कि, ऐसी घटनाओं की जाँच उचित रीति से नहीं की जाती, पर मैं तो समझता हूँ कि, जनता को स्वयं यह कार्य करना चाहिये। जहाँ कहीं भी ऐसे धूर्तों का पता लगे अथवा वे ऐसी बातें सुनें उन्हें तुरन्त पुलिस में इसकी सूचना देना चाहिये और जाँच में पुलिस का साथ देना चाहिये। मैं ने अकसर देखा है कि, लोग यथाशक्ति ऐसी बातों को, बदनामी के भय से, छिपाने की कोशिश करते हैं, पर ऐसा कदापि न होना चाहिये।

प्रश्न—ख़ैर। विधवाओं की वास्तविक सहायता के लिये आप क्या करना उचित समझते हैं ?

उत्तर—मेरा तो ख्याल है कि, विधवाओं का यदि पुनर्विवाह कर दिया जावे तो इससे काफ़ी संख्या में विधवाओं की तकलीफ़ें घट सकती हैं, पर साथ ही विधवाओं के लिये जगह-जगह आश्रम खुलने चाहिये और उनका इन्तज़ाम बहुत ही माक़ूल होना चाहिये; और बाल-विवाह की कुप्रथा, जिससे हिन्दोस्तान को बेशुमार हानि हो रही है, जल्द से जल्द अवश्य रोकना चाहिये।

प्रश्न—भारत जैसे अन्धपरम्परा के चक्कर में पड़े हुये देश में—बाल-विवाह की प्रथा रोकने के लिये बहुत समय की जरूरत है। मेरा ख्याल है कि, इस प्रथा को रोकने में हमें तब तक सफलता कभी प्राप्त नहीं हो सकती जब तक सरकार इसके विरुद्ध कोई क़ानून पास न करे। क़ानून पास हो जाने से अन्य नियमों की भाँति जनता इस आज्ञा का पालन अवश्य करेगी और तभी कुछ सफलता भी हो सकती है।

उत्तर—पर, सरकार धार्म्मिक मामलों में दख़ल ही क्यों देने लगी ?

प्रश्न—अव्वल तो यह मामला बिलकुल सामाजिक (purely social) है और धर्म्म से इसका सम्बन्ध ही नहीं होना चाहिये पर, यदि थोड़ी देर के लिये इसे धार्म्मिक मामलों में हस्तक्षेप ही मान लिया जावे तो लॉर्ड बेण्टिक (Lord Bentick) ने विधवाओं का सती होना ही क्यों रोका था ?

उत्तर—वह समय और था और अब समय और है। यह

बात उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य की है। उसके बाद सरकार ने और भी कई ऐसे क़ानून पास कर डाले थे, पर इसके पहले कि, उन्हें अमली जामा पहनाया जावे, सन् ५७ का बलवा हो गया और इससे सरकार बहुत डर गई। मैं तो समझता हूँ कि, कोई भी विदेशी सरकार (Foreign Government) ऐसे मामलों में हाथ न देगी।

प्रश्न—सन् ५७ से आज ज़माना बहुत बदल गया है। सभी लोग आज दिन बाल-विवाह को बुरा समझने लगे हैं और जनता इस प्रथा को मिटाना चाहती है अवश्य, पर भिन्न-भिन्न जात-पाँत होने के कारण सभी लोग अपने-अपने विश्वास के अनुसार काम करते हैं। हिन्दुस्थान की तो सभी बातें धर्म्म से मढ़ी हैं। "स्नान करना हिन्दुओं का धर्म्म है, गीला कपड़ा पहन कर भोजन करना धर्म्म है।" कहने का मतलब यह है कि, इसी प्रकार आठ वर्ष की बालिकाओं का विवाह कर देना भी 'धर्म्म' है। देखिये न, मुसलमानों के शासनकाल में उनके पाप-पूर्ण नेत्रों से बालिकाओं के सतीत्व की रक्षा करने के लिये धर्म्म-ग्रन्थों में नये श्लोक जोड़-जाड़ कर ही यह बात सिद्ध की गई थी कि, बाल-विवाह करना धर्म्म है। क्योंकि उस समय भी विचारशील नेता इस बात को भली-भाँति जानते थे कि, जब तक धर्म्म में लपेट कर कोई बात न कही जायगी भारतवासी उसे मानने के लिये तैयार न होंगे और यह था भी ठीक। जैसा मैं पहिले कह आया हूँ कि, स्वभाव

से अन्धविश्वासी और सरल हृदय होने के कारण जब तक भारतवासी किसी बात को धर्म्म अथवा क़ानून के जामे में नहीं देख लें उनको विश्वास ही नहीं होता और वे उसे मानते भी नहीं।

उत्तर—यह तो ठीक ही है, पर सवाल तो इतना ही है कि, यदि आज सरकार ने कोई ऐसा क़ानून पास कर दिया तो कल ही एक बड़ा भारी आन्दोलन खड़ा हो जायगा कि, "हिन्दू-धर्म्म में हस्तक्षेप किया गया और इसकी रक्षा करो।" "Hindu Religion in danger" की घोषणा कर दी जायगी।

प्रश्न—यह बात तो हुई सरकार के क़ानून पास करने के सम्बन्ध में। मैं आप से केवल यह बात पूछना चाहता हूँ कि, किसी तरह यदि ऐसा क़ानून पास हो जावे तो उससे बाल-विवाह की प्रथा रुक भी सकती है कि नहीं ?

उत्तर—ज़रूर ! इससे निसन्देह बहुत कुछ लाभ हो सकता है। पर, इस विषय में सरकार को दोषी ठहराना अन्याय होगा। यह कार्य तो कौंसिल के मेम्बरों का है। सरकार इन मामलों में बिलकुल दख़ल न देगी। स्वयं जैसा चाहें कर सकते हैं, पर मुश्किल तो यह है कि, आम तौर से कौंसिल के मेम्बर स्वयं ही ऐसे महत्वपूर्ण सामाजिक मामलों से दिलचस्पी ही नहीं लेते। यदि वे चाहें जो बहुत कुछ काम कर सकते हैं।

प्रश्न—यही तो मैं भी कहता हूँ कि, यदि डॉक्टर गौड़ जैसे

सुयोग्य मेम्बर लोग इन मामलों को उठावें और प्रस्ताव द्वारा जनता की नब्ज टटोल कर इन्हें कार्य-रूप में परिणत कर सकें तो बात की बात में बहुत कुछ हो सकता है।

उत्तर—मैं आपकी इस राय से बिलकुल सहमत हूँ।

*　　　*　　　*

पं० कृष्णाकान्त मालवीय के विचार

विधवाओं के सम्बन्ध में पण्डित कृष्णाकान्त जी मालवीय, बी० ए०, सम्पादक "अभ्युदय" के विचार जानने के लिये चाँद के ख़ास प्रतिनिधि ने उनसे भेंट की थी। आपके विचार भी हम प्रश्नोत्तर के रूप में नीचे दे रहे हैं :—

प्रश्न—विधवाओं के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं? उनका पुनर्विवाह कर देना आप उचित समझते हैं कि, नहीं?

उत्तर—अवश्य। जो विधवायें विवाह करना चाहें उनके मार्ग में अड़चनें न होनी चाहियें। इसके साथ ही बाल-विधवाओं से, उनकी अवस्था और भविष्य जीवन पर ध्यान रखते हुये यह परामर्श देना कि, वे अपना विवाह कर लें अनुचित न समझा जाना चाहिये।

प्रश्न—जो लोग अपने घरों की विधवाओं का पुनर्विवाह करना चाहते हैं उन्हें समाज बुरी निगाह से देखती है। हमेशा ही ऐसे

लोग, उचित समझते हुये भी, समाज के डर से अपनी कन्याओं का विवाह नहीं कर सकते। इस विषय में समाज का सुधार किस प्रकार हो सकता है?

उत्तर—समाज को सुधारने के लिये कोई राजपथ नहीं बतलाया जा सकता। समाज को किसी विशेष मत को स्वीकार करने के लिये समय की आवश्यकता है। समाज अपनी अवहेलना के लिये कठिन से कठिन दण्ड देना अपना कर्त्तव्य समझती है। अपने सिद्धान्तों के लिये तैयार होवे, "क्या करें?" यह सवाल हमारी समझ में उठता ही नहीं। जिनमें आत्म-बल की कमी है या जो अपने सिद्धान्त के लिये कष्ट सहन करने को तैयार नहीं हैं, उनको बातचीत, व्याख्यान, पुस्तकों और लेखों द्वारा समाज के मत में परिवर्तन करने की चेष्टा करनी चाहिये।

प्रश्न—जो विधवायें कुमार्ग के पथ में पड़ चुकी हैं अथवा मुसलमानों या ईसाइयों के हाथ में पड़ चुकी हैं और अब पश्चात्ताप प्रकट करती हैं आप उन्हें फिर अपने समाज में ले लेना उचित समझते हैं या अनुचित?

उत्तर—जो पवित्र जीवन व्यतीत करने को तैयार हों उन्हें फ़ौरन ले लेना चाहिये। प्रायश्चित के बाद उनको समाज में ले लेना सर्वथा उचित है। अगर समाज में सम्मिलित होकर वे शीघ्र ही विवाहित जीवन धारण कर लें।

प्रश्न—आप रोज़ ही देखते और सुनते होंगे कि, कुछ धूर्त

लोग स्त्रियों और खास कर विधवाओं को भड़का कर दूसरे प्रान्तों में ले जाते हैं और उन्हें बेच कर बेजा फ़ायदा उठाते हैं इसका क्या इलाज हो सकता है ?

उत्तर—विधवाओं को शिक्षा देना, उन्हें इस योग्य बनाना कि, वे दुष्टों के बहकाने में न आ जावें—समाज का कर्त्तव्य है। समाज अगर अपना कर्त्तव्य पालन करेगी तो कन्याओं और विधवाओं की बिक्री की समस्या इतने विकट रूप में समाज के सामने न उपस्थित होगी।

* * *

स्वामी राधाचरण गोस्वामी के विचार

कट्टर सनातन-धर्म्म के आचार्य वृन्दावन-निवासी श्रीस्वामी राधाचरण जी गोस्वामी महोदय के विचार :—

हाय ! अन्धपरम्परा !!

२५-३० वर्ष से बड़ी कान्फरेन्सें हो रही हैं! हज़ारों रुपये ख़र्च हो रहे हैं! हर एक जाति के नेता अपनी नोंक-झोंक में मस्त हैं! मामूली कामों में बहुत सी नुक़ताचीनी करते हैं, पर विधवा-विवाह का नाम सुनते ही होश फ़ाख़्ता! हमारी जाति के लोग हम से बिगड़ न जाँय, हमारा नेतृत्व न मारा जाय, इससे विधवा-विवाह का प्रकरण आते ही चुप! चुप! हमारी सभा न टट

जाय ! भीतर से कुछ लोग विधवा-विवाह के सपक्ष भी हैं, पर क्या करें अन्धपरम्परा के तोड़ने योग्य साहस नहीं ! न इतना बल ! न स्वार्थ-त्याग ! अमेरिका से ग़ुलामों का व्यवसाय केवल बकवाद से नहीं उठा ! इन अनाथ विधवाओं का उद्धार भी बिना पूर्ण कष्ट उठाये न होगा। पानीपत की गौड़ महासभा में कुछ ग्रामीण गौड़ों ने अपनी विधवाओं को जाट मुसलमान आदि के द्वारा नष्ट-भ्रष्ट होते देखकर, सभा से विधवा-विवाह की आज्ञा माँगी, हर सभा ने केवल चिकनी-चुपड़ी बातों में टाल दिया। दिल्ली में भटनागर कायस्थों की सभा में स्त्रियों की अर्ज़ी पेश हुई कि, विधवा-विवाह की आज्ञा हो, परन्तु दाख़िल दफ़्तर ! कब तक यह बहाना चलेगा ?

पन्द्रहवाँ अध्याय

कवितायें

अपने दुखड़े

[ले० कविवर पण्डित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय]

(१)

देखता हूँ कि, जाति डूबेगी,

है जमा नित्त हो रहा आँसू !

लाखहां बेगुनाह बेवों की,

आँख से है घड़ों बहा आँसू !!

(२)

सोग बेवों का देखती बेला,

बैठती आँख, टूटती छाती !

जो न रखते कलेजे पर पत्थर,

आँख पथरा अगर नहीं जाती !!

(३)

ब्याह दी जाँयगी न बेवायें,

कौन सिर पर कलङ्क ले जीवे !

नीच का घर बसा-बसा करके,

मूँछ नीची करें भले ही वे !!

(४)

सुन सकें क्यों गोहार बेवों की,

क्यों गले पर छुरी न हो फिरती !

हम गिरेंगे कभी न ऊँचे चढ़,

गिर गई मूँछ तो रहे गिरती !!

(५)

जानि कैसे भला न डूबेगी,

किस लिये जाय बहन दे खेवा !

जब नहीं सालती कलेजे में,

चार और पाँच साल की बेवा !!

(६)

दिन बदिन बेवा हमारी हीन बन,

दूसरों के हाथ में हैं पड़ रहीं !

जन रही हैं आँख का तारा वहीं,

जो हमारी आँख में हैं गड़ रहीं !!

(७)

लाज जब रख सके न बेवों की,

तब भला किस तरह लजायें वे !

घर बसे किस तरह हमारा तब,

जब कि, घर और का बसायें वे !!

(८)

गोद में ईसाइयत इसलाम की,

बेटियाँ, बहुयें लटाकर हम लटे !

आह ! घाटा पर हमें घाटा हुआ,

मान बेवों का घटा कर हम घटे !!

(९)

हैं अगर बेवा निकलने लग गईं,

पड़ गया तो बढ़तिया का काल भी !

आबरू जैसा रतन जाता रहा,

खो गये कितने निराले लाल भी !!

—"चाँद"

* * *

जग-निठुरई

[ले० कविवर पण्डित श्रीधर जी पाठक]

सखिरी रीति बैरिनि भई ।

प्रीति मान मृजाद की विधि मूल सों मिटि गई ।

निरपराधिनि बालिका लघु बैस मृदु लरिकई ।

ब्याहि राँड बनाइये यह कौनसी सुघरई ।

जन्म भर त्रिय देह जारत काम बल कठिनई ।

निबल प्रान सताइबे में, कहु कहा ठकुरई ।

स्वार्थप्रिय पाषान सो हिय, निपट शठ निरदई ।

भयो आर्य अनार्य भारत कुमति मन में छई ।

होय छिन छीन तन सहि आपदा नित नई।
मूढ़ सर्वस खोय निज-हित-सीख नेंक न लई।
बाल-विधवा-स्राप-बस, यह भूमि पातक-मई।
होत दुःख अपार सजनी, निरखि जग-निठुरई।

—"मनोविनोद" से

* * *

बाल विधवा

[ले० श्री० "विनय"]

(१)

कोमल कुसुम कली के ऊपर,
क्यों निष्ठुर बिजली टूटी?
स्वयं बाल-परिणय की आँखों—
से वह जल धारा छूटी?
किसका तारा सा टूटा है,
भाग्य जगत के नभ में आज?
जिसकी जली चमक सी सजती,
चिता-लपट, करुणा का साज?
सदय-दिवाकर किस नलिनी का,
आज सदा को अस्त हुआ?
आज चन्द्रमा किस कुमुदिनि का,
सतत ग्रहण से ग्रस्त हुआ?

(२)

औचक किसकी ऐंठ गई हैं,
भावी आशायें अज्ञात?
बादे बाल-मधु के ही तप हैं,
फिर है आँसू की बरसात!
बालापन में हाय! खुल गये,
आज सदा को किसके केश?
किस जीवित पुतली में—
पाया है मुर्दे ने आज प्रवेश?
किसे जलाने वाला है, आ—
करके यौवन का अङ्गार?
आहों की बारूद भरी है,
बाल-हृदय का बना अनार?
किसका विधि के कोपानल में,
भस्म हुआ सारा शृङ्गार?
किस की छाया शुभ-कार्यों में,
हुई छूत की अब आगार?

(३)

किसके लोचन बदन-श्री में,
लगे हुये से दो अङ्गार?
देख देख कर जला करेंगे,
कभी जगत का सौख्य-प्रसार?

और जलावेंगे दर्शक गण—
को, पड़ उन पर बारम्बार।
लाल लाल रह कर नित—
करते, व्यक्त वह्निमय हृदय-विकार ?
किसकी दृष्टि गिरेगी भू पर,
खो करके अपना आधार ?
खो देंगे किसके कटाक्ष हृद-
भेदन का अपना अधिकार ?
किसकी आँखों में दिखता है,
हम को यह अद्भुत व्यापार ?
चरम-शुष्कता-मरु से,
टकराता आँसू का पारावार ?

(४)

छिपा आज किसकी बेफ़िकरी,
में चिन्ता का नीरागार।
जिसकी सरल हँसी की सीपी,
में है जल मद-मुक्ताहार ?
रस नायक की छाया भी छू,
नहीं सकेगा किसका प्रेम ?
शारीरिक सुख से विरक्त हो—
कर, ही होगा किसका क्षेम ?

किस दुखिया का हटा रहेगा,
सदा बाह्य दुनियाँ से ध्यान ?
हुई क्रूरता से समाज के,
नष्ट कौन बाला अनजान ?
देखेंगे सर्वस्व चित्र में,
किस दुखिया के लोचन म्लान ?
देख देख कर किया करेंगे,
मन में वह गत-मूर्ति विधान।

(४)

सुना करेंगे गत जीवन की,
गुण-गाथा ही किसके कान ?
किया करेगी कम्पित रसना,
जिसके विगत गुणों का गान।
जीते जी ही किसे मिलेगा,
श्वेत वस्त्र का शव-परिधान ?
गूँजा सदा करेगी किसके,
मन में नीरव करुणा-तान ?
पारस के विपरीत धातु ने,
किसका सोने का संसार,
बनकर के वैधव्य, बनाया,
आज लोहमय जगत अपार ?

(६)

जैसे शिशु हँस कर बढ़ता है,
छूने को जलता अङ्गार।
हँस कर श्वेत वस्त्र पहनेगी,
रोयेगा सारा संसार॥

खसक गया है छोड़ अधर में,
तुझे हाय! तेरा आधार।
अगर सार* होता तुझ में तो,
गिर कर हो जाती निस्सार॥

रोती है इस लिये कि सुन्दर,
चूड़ी फोड़ी जाती हैं।
क्या समझे! तेरे सुहाग की,
हड्डी तोड़ी जाती हैं॥

(७)

हाय! करेगा भाल न भूषित,
अब तेरा, प्यारा सिन्दूर।
रङ्ग बिरङ्गापन जीवन के,
नभ का होगा उससे दूर॥
उसकी नील छटा भी होगी,
सतत मेघमाला का ग्रास।

* (१) भार, (२) समझ।

तारों की मृदु चमक न होगी,
और न शशि का हास्य-विलास ॥

हाय जलाया सदा करेगा,
तुझे चन्द्रमा का आभास।
उषा और सन्ध्या सखियाँ,
होकर भी देंगी तुझको त्रास ॥

ऋतु-पति का स्वागत करने को,
मुग्ध प्रकृति का नूतन साज।
तेरे मन की मरुस्थली में,
ला देगा निदाघ का राज ॥

(८)

तारे छेद करेंगे उर में,
प्रभा करेगी तमः प्रसार।
शीतल पवन स्वेद लावेगा,
झुलसावेगा चन्दन सार ॥

मलय पवन, प्रमत्त, वासन्तिक,
कोइलियों की कूक रसाल।
लूक लगाती, हूक उठाती,
हुई हृदय में होंगी काल ॥

आस पास व्यापक शोभा,
मुख-विकृति का देगी उपहार

हरियाली हर लेगी मुख-श्री,
कर पीला अन्तर्संसार ॥

(९)

गरज गरज कर घन उत्थित—
कर देंगे मन में हाहाकार।
चमक चमक कर चपला मन में,
चिलक उठावेगी हर बार ॥
इन्द्र-धनुष को देख आँख में,
मुख पर रङ्गों का सञ्चार।
वर्षा की रिमझिम में आँसू,
उमड़ पड़ेंगे बारम्बार ॥
चमक करेगी जुगनू की,
मन में चिनगारी का सञ्चार।
कूक मोरनी की करती दो—
टूक हृदय को, होगी पार ॥
हिलती हुई अधखिली कलियों—
पर, भौरों की मृदु गुञ्जार।
आग लगा देगी नस-नस में,
दहक उठेगा तृण-भाण्डार ॥

(१०)

शशि से देख निशा का मिलना,
करके तारों से शृङ्गार।

तुझसे आ वैकल्य मिलेगा,
पहने अङ्गारों का हार ॥
सागर को जाता ज्योत्स्ना में,
स्नात-सरित का स्वच्छ प्रवाह ।
देख, हृदय पर बढ़ जावेगा,
द्रव लपटोंमय अन्तर्दाह ॥
देख श्याम घन की गोदी में,
चपला का सानन्द विहार ।
अन्धकार से भरे हृदय पर,
होगी तड़ित-व्यूह की मार ॥
देख नई बधुओं की ब्रीड़ा,
प्रौढ़ा का स्वच्छन्द विलास,
मुग्धाओं की नटखट क्रीड़ा,
पीड़ित होंगे नयन उदास ॥

(११)

चपल नाव पर देख सकुचमय,
पति-पत्नी का सलिल-विहार ।
छूटेगा तेरे हाथों से,
जीवन-नौका का पतवार ॥
देखेगी सर में ललना गण—
की व्रीड़ामय जल-क्रीड़ा ।

निकल वहीं कमलों से तेरे,
मन को खायेगा कीड़ा ॥
देख देख फूले फूलों को,
स्थिर मन कुम्हला जायेगा।
उनपर बिखरी देख ओस, दृग—
रुधिर-बिन्दु टपकायेगा ॥

देख शरत्शोभा का आना,
दिल मुँह को आ जायेगा।
रङ्ग-विरङ्गा देख गगन को,
मुँह का रँग उड़ जायेगा ॥

(१२)

सुन कर मत्त खगों का गाना,
तुझको रोना आयेगा ॥
देख मौज से उनका उड़ना,
मन तेरा उड़ जायेगा ॥

बहते देख नदी मन करुणा—
धारा में बह जायेगा।
झरनों की झर-झर सुन कर,
वह हहर-हहर रह जायेगा ॥
देख मीन की केलि-हृदय पर,
लोट साँप-सा जायेगा।

देख सुखी पशुओं की क्रीड़ा,
मानस पीड़ा पायेगा॥
मन्द पवन की मृदु सर-सर से,
वह थर-थर कँप जायेगा।
अर्द्ध निशा के झन्नाटे से,
सन्नाटे में आयेगा॥

(१३)

देख झूलना पत्तों का मारुत-
लहरों के झूलों में।
मन झूलेगा झूले के अनुरूप,
गुण-ग्रथित शूलों में॥
दिन में देख कमल को विकसित,
मन होगा सङ्कुचित नितान्त।
देख कुमुद के दृग खुलना निशि,
में दृग होंगे बन्द अशान्त॥

* * *

किन्तु, देख कर देह जीव के,
बिना करो मन में सन्तोष।
सूखी हुई नदी को देखो,
नहीं तुम्हीं पर विधि का रोष॥
दिन को दशा कुमुद की देखो,
और कमल का निशि में हाल।

एक तुम्ही को नहीं फँसाये—
है कितनों को दुख का जाल ॥

(१४)

साँझ सबेरे सूर्य-चन्द्र की,
महिमा का देखो अवसान।
नभ का शोक-वस्त्र पहने वसुधा—
का देखो मुखड़ा म्लान ॥
देखो कोयल का दुखियापन,
जब बौरें हों नहीं रसाल।
एकाएक सूखता देखो,
कोई मीन-वृन्द का ताल ॥
देख प्राणियों को कितने ही,
कतिपय दुःखों से आक्रान्त।
समझ एक ही अपने दुख को,
तुम हो जाओ कुछ तो शान्त !!
दुष्पति के दुर्व्यवहारों से,
सधवा का भी विधवापन।
देख-भाल कर सोचो समझो,
तनिक उठाओ अपना मन ॥

(१५)

फिर देखो दुनियाँ के सारे,
सुख हैं कैसे क्षणिक नितान्त।

कभी चार दिन भी रह पाता,
कहाँ एक रस कोई शान्त ?

आते-जाते ही रहते हैं,
सुख-दुख एक-एक के बाद।

रक्खेगा आह्लाद मूल्य क्या,
जो होगा ही नहीं विषाद ?

इस पर भी सन्तोष न हो तो,
फैले हैं आशा के हाथ।

उससे मिल जाओ, पाओगी,
जन्मान्तर में पति का साथ॥

—"चाँद"

*　　*　　*

अबल विधवा

[ले० श्री० "विक्रम"]

(१)

हरे चन्द्र ! तू क्यों करता है, मुझ अबला पर अत्याचार ?
सह न सकूँगी तेरी शीतल, किरणों का मैं कोमल भार !!
तेरी सुधामयी किरणें हैं, विषमय तीरों की बौछार।
लम्पट पुरुषों के सम तू, क्यों करता है गर्हित व्यवहार ?

(२)

इस विराग के श्वेत-वसन पर, उठे न क्या श्रद्धा के भाव ?
क्या इन कङ्कन-हीन-करों पर, हुआ न करुणा रस का स्राव ?
क्या इस सेंदुर-हीन माँग पर, तुझे न लज्जा आई चाँद ?
क्या मेरे बिखरे बालों पर, तू ने तरस न खाई चाँद ?

(३)

क्या इस विन्दु-विहीन भाल को, देख नहीं पाया तू चाँद ?
मुझे बता दे किस धोखे से, मेरे ढिग आया तू चाँद ?
आदि काल से देख रही हूँ, कलुषित तेरा कोमल अङ्क ?
क्या ईर्षा से प्रेरित होकर, मुझे लगायेगा "अकलङ्क" ?

(४)

हाय ! विवशतः होता जाता है मेरे तन में रोमाञ्च ।
किसका पाहन हृदय न पिघला देगी तेरी मधुमय आँच ?
हरे निर्दयी ! किस अनर्थ का करता है तू आयोजन ।
किस अनिष्ट की ओर खींचता जाता है तू मेरा मन ?

(५)

दौड़ो ! अपना सारा बल ले कर हे स्मृति के पावन दूत !
टूट न जाये धक्का खाकर मर्यादा का कच्चा सूत ॥
तितर-बितर होती जाती है संयम की सारी सेना ।
इस दुर्बल मानस के कारण मुझे न फिर गाली देना ॥

(६)

अखिल-प्रकृति की प्रबल शक्तियों से करती हूँ मैं संग्राम।
कब तक रमणी की लज्जा का व्यूह सकेगा रिपुदल थाम ?
बच न सकूँगी उच्चादर्शों के इस सूक्ष्म-कवच की ओट !
सह न सकेगी ख़्याली बख़्तर व्यवहारिक शस्त्रों की चोट।

(७)

मानस-सर में रह कर मुझको है जल-कण छूना भी पाप।
अनल-कुण्ड के बीच बसूँ पर, लगे न मेरे तन को ताप !
हरे-भरे उपवन में रह कर है निषिद्ध फूलों का वास।
मधुर रसीले इन अधरों पर कभी न वाञ्छित सुखमय हास॥

(८)

है विकसित यौवन, पर दूषित है मादकता का सञ्चार।
बहती प्रबल वेग की आँधी, पर वर्जित है मुझे बयार॥
प्रखर धार में फेंक दिया, पर, दिया न बहने का अधिकार।
अगर डूब मरने पाती मैं तो भी हो जाता निस्तार॥

(९)

कैसे देवी बन सकती हूँ भगवन् ! इन असुरों के बीच।
जिधर निकलती उधर छेड़ते हैं, कुत्सित मन वाले नीच॥
किया विधाता ने नारी को पुरुषों पर आश्रित निर्माण।
यदि आश्रय-दाता धोखा दे, तो हो किस विधि अबला का त्राण॥

(१०)

हे भगवन् ! हो इन पुरुषों को निज मर्यादा का सम्मान ।

या वह बल दे जिससे, अपने कर से हो अपना कल्यान ॥

विधवापन की जो महिमा का करते हैं गौरवमय गान ।

वही चलाते हैं क्यों उन पर मतवाले नयनों के बान ?

(११)

उच्च शिखर से विश्वप्रेम का जो हमको देते उपदेश ।

वही हमारा मन हरने को धारण करते नाना वेष ॥

धृष्ट कुटिल भ्रमरों से घिर कर, रहे अछूता क्यों कर फूल ?

कब तक पौधा जी सकता है पाकर जल-वायू प्रतिकूल ?

(१२)

उठें न क्यों कर प्रलोभनों से उत्तेजित हो मनोविकार ।

सुस्थिर सर में भी झोकों से उठे न क्यों लहरों का तार ?

मनोवेग की रगड़ मिटा देती है अस्फुट-स्मृति का दाग़ ।

प्रबल मोह की आँधी में बुझता विवेक का मन्द चिराग़ ।

(१३)

जो बहनें इस कठिन परीक्षा से निकला करतीं बेदाग ।

त्रिभुवन का स्वामी करता है उनके चरणों में अनुराग ।

सीता, सावित्री का सत् भी, है उनके चरणों की धूल ।

स्वयं विधाता उन्हें चढ़ाता, है अपनी श्रद्धा का फूल ॥

(१४)

मुझ दुर्बल-हृदया को दुर्लभ है वह दैवी पदाधिकार।

यद्यपि लज्जा-वश न करूँगी खुल कर दुर्बलता स्वीकार॥

पर तुमसे क्या छिपा हुआ है, हे समाज के चतुर सुजान!

कर सकते हो सहृदय होकर मेरे भावों का अनुमान!

(१५)

यदि निर्बल को घृणित समझ कर जाने दोगे उसकी राह।

अधःपतन के साथ उसी के होगी सारी सृष्टि तबाह॥

कर निर्बल का त्याग न होगा केवल सबलों का उत्कर्ष।

ले कर डूब मरेगी अबला, सबला के ऊँचे आदर्श!!

(१६)

हे समाज! यदि तुझको दुनियाँ में रखना है ऊँचा माथ।

तो आगे बढ़ जीवन-यात्रा में विधवा को लेकर साथ।

उच्चकोटि की विधवाओं का कर देवी-सम तू सम्मान।

अधम कोटि को समझ मानवी, रच दे उनके योग-विधान॥

—"चाँद"

* * *

स्वर्गीय प्रीतम के प्रति

[ले० श्रीमती विमला देवी जी]

(१)

पता नहीं तुम क्या करते हो, स्वर्गलोक में प्राणाधार?

करते हो विरह-व्रत पालन, या परियों के सङ्ग विहार?

करते थे अद्वैत हृदय से, हा ! प्रियतम, तुम मुझको प्यार ।
फिर भी यों शङ्का करना हा ! हन्त !! मुझे सौ-सौ धिक्कार !

(२)

पर जो कुछ मैं देख रही हूँ, जग में पुरुषों के व्यवहार ।
उससे अनायास उठते हैं, मन में शङ्का के अविचार ॥
एक प्रेयसी से ख़ाली जो, आज हुई प्रियतम की गोद ।
अन्य प्रियतमा उसमें आकर, कल करती है मनोविनोद ॥

(३)

प्रथम प्रेयसी के विछोह में, आज बहे नयनों से नीर ।
लगी दूसरी के हित हा ! पति—को, कल पुनर्व्याह की भीर ॥
यदि वसुधा में पुरुष-जाति के, क्षणिक प्रेम का है यह हाल ।
तो सुनती हूँ स्वर्गलोक में, सुन्दरियों का नहीं अकाल ॥

(४)

हा ! मेरे मन में उठते हैं, क्यों ईर्षा के कलुषित भाव ?
किन्तु कहाँ मेटा जा सकता, मानव-हिय का सहज स्वभाव ?
आत्मा के अनन्त जीवन-हित, जिसको अपनाया इक बार ।
अखिल विश्व में जिसे समझतीं, हम अपनी सम्पति का सार ॥

(५)

पञ्चभूत में मिल कर भी, जो नारी जीवन का आधार ।
क्या उस पति पर तनिक नहीं है, हम पत्नीगन का अधिकार ?
रुष्ट न होना प्यारे प्रियतम ! सुनकर मेरे नये विचार ।
निशिवासर-सा साथ लगा है, कर्तव के पीछे अधिकार ॥

(६)

प्यारे पति का हृदय छोड़ कर, जिस ललना का स्थान न और !
हा ! उससे भी वञ्चित होकर, कहाँ उसे त्रिभुवन में ठौर ?
मुझे बता दो प्राणनाथ यदि, बना हुआ मेरा वह स्थान ।
तो मैं इस वैधव्य-क्लेश को, समझूँगी तृणमात्र समान ॥

—"चाँद"

*　　*　　*

विधवायें

[ले० श्री० अनूप शर्म्मा जी, बी० ए०]

[चौपदे]

(१)

थी बदी भाग्य-हीन भारत की, इस तरह हाय ! दुर्गती होना ।
इन दुराचार के प्रभावों से, श्रेय था अग्नि में सती होना ॥

(२)

देश की ये असंख्य विधवायें, बालिकायें विदीर्ण-हृदय-सी ।
रो रहीं फूट फूट कर दिल में, कुप्रथा की बनीं दासी ॥

(३)

हाय ! इनके जले कलेजे से; पूछिए तो भला कथा इनकी ।
कौन सहृदय न कह देगा, 'हो रही दुर्दशा वृथा इनकी ॥'

(४)

हो गया भाग्य सङ्कुचित जैसा, हो चला है क्षीण बदन वैसा ।
सास सधवा, बहू बनी विधवा, हो जहाँ, स्वाँग है सदन कैसा ?

(५)

विश्व भर की असीम इच्छायें, हृदय में जिस समय उछलती हैं ?
ये बिना भाग्य के विधाता के, भाल को ठोंक, हाथ मलती हैं ?

(६)

कामिनी, ये अस्वामिनी होकर, मारतीं, चित्त मार कर ढाढ़ें ।
भस्म सारा समाज हो जावे, चित्त से आह ! आह ! जो काढ़ें ॥

(७)

माँग है शून्य, स्वल्प इच्छा है, लाख की चूड़ियाँ चहैं दो ही ।
देके छीना कठोरता द्वारा, ईश लोभी हुआ महा द्रोही ॥

(८)

प्राण प्राणेश सङ्ग जो जाते, पूजती बैठ व्यर्थ ब्रीड़ा क्यों ?
बुद्धि विपरीत है विधाता की, आँख फोड़ी, हरी न पीड़ा क्यों ?

(९)

सारे जग से वियोगिनी बन कर, नारियाँ—वीतराग कैसे हों ?
भक्ति का हेतु ही नहीं उनके, युग नहीं, योग-याग कैसे हों ?

(१०)

जिनके हों भाव वे तहा डालें, जिनके हो धैर्य्य वे ढहा डालें ।
नेत्र को फोड़ फोड़ कर अपने, जितने आँसू हों, वे बहा डालें ॥

—"चाँद"

* * *

विधवा-विनय

[ले० श्रीयुत "किरीट"]

हाय विधाता ! उठा लिया क्यों, तुमने मेरा जीवन-धन ?
सुना, सदा हित ही करते हो, है यह कैसा हित-साधन ?
विधि, मैं तुम्हें पूजती थी नित, चढ़ा-चढ़ा कर कितने फूल ?
तुमने मन में चुभा दिये, चुन-चुन कर उनके सारे शूल !
इस वियोग के द्वारा ही क्या, देना है अनन्त संयोग ?
याकि परीक्षा है कञ्चन की, 'विधवापन' है 'अग्नि-प्रयोग' ?
वह कैसा कमनीय कुसुम है, लगा हुआ जिसमें यह शूल ?
है तो नहीं तुम्हारी, बोलो, विधि यह कोई भारी भूल ?
निष्ठुर ! बतला कर रहस्य, कुछ तो कम कर दो मन का भार।
लिये हुये हूँ अभी तुम्हारे लिये, एक अन्तिम उपहार ॥
मत बोलो, प्रतिकूल स्वयं हूँ, यदि तुम मुझसे हो प्रतिकूल।
तुम्हें न दूँगी फटे हृदय का, भुवन-पूज्य यह बिखरा फूल ॥

—"चाँद"

* * *

विधवा

[लेखिका श्रीमती महादेवी जी वर्मा]

(१)

क्यों व्याकुल हो, विरहाकुल हो, शोकाकुल प्यारी भगनी ?
सन्तापित हो अविकासित हो, सर-भारत की न्यारी नलिनी ?

(२)

आशा नहीं, अभिलाष नहीं, निस्सार तुम्हारे जीवन में !
क्यों तोष नहीं, परितोष नहीं, निर्दोष दुखारे जीवन में !!

(३)

पावनता की पूर्ति अहो, मृतप्राय हुई वैधव्य हनी।
करुणोत्पादक मूर्ति लखो, अति दीन हुई दुखरूप बनी ॥

(४)

हा हन्त ! हुई यह दीन दशा, फिर स्वार्थ दली दुर्दैव छली ।
नव कोमल जीवन की कलिका, हा सूख चली बिन पूर्ण खिली ॥

(५)

अम्बर तन जीर्ण मलीन खुले, कुच रुक्ष हुए श्रृङ्गार नहीं ।
मधुराधर पै मुसकान नहीं, उर में आशा-सञ्चार नहीं ॥

(६)

अश्रु-भरे नयनाम्बुज में, दीना-कृत है तन क्षीण अहो ।
लख कर तव दीन दशा भगिनी, है कौन, धरे जो धैर्य कहो ?

(७)

तुमने क्या कण्टक ही आकर, इस जग-उपवन में पाये हैं ।
नये मुकुल तव आशा के कैसे, हा ! हा ! मुरझाये हैं !

(८)

जला मनोरथ कञ्ज दिया हिम, वैधव ने क्या मञ्जु खिला !
हृदय हुआ मरु-भूमि गया, सिन्दूर साथ सौभाग्य चला !!

(९)

प्रकृति-विपिन की कलिका हो, तुम पुत्री भारत-माता की।

प्यारी आर्य्य कुमारी हो तुम, सृष्टि पुनीत विधाता की॥

(१०)

शान्ति सौम्यता की प्रतिमा, तुमने उन्नत थी अपनाई।

सुविचारों ने सद्भावों ने, उत्पत्ति तुम्हीं से थी पाई॥

(११)

स्वार्थ-अन्ध, स्वेच्छाचारी, पुरुषों ने किन्तु सताया है।

हृदय-हीन निर्दय हो, तुम को अवनत दीन बनाया है !!

(१२)

जब तुम थी निर्बोध मृदुल, कलिका ही जीवन डाली की।

करती मधुर विकास मधुर, प्यारी रचना थी माली की॥

(१३)

शैशव में ही प्रिय स्वजनों ने, तुम से कैसा बैर लिया।

स्वामि-अर्थ-अनभिज्ञ बालिका, का विवाह अविचार किया॥

(१४)

भाग्य-चक्र ने उस पर तुम पर, किया घोरतर अत्याचार।

उजड़ गया सौभाग्य दीन का, बिगड़ गया सुखमय संसार॥

(१५)

होकर परवश बाध्य पड़ी हो, कठिन आपदायें लेनी।

ज्वालामय संसार-कुण्ड में, पड़ी जीवनाहुति देनी॥

(१६)

किया किसी ने दोष और, प्रतिफल ऐसा हमने पाया।
नहीं किसी को किन्तु तुम्हारा, मुख-दर्शन भी अब भाया॥

(१७)

करके सेवा-वृत्ति स्वजन की, जीवन-धारण करती हो।
होकर कुमति अधीन कभी फिर, पद कुपन्थ में धरती हो॥

(१८)

ध्यान न देते किन्तु अहो, निद्रित हो सारे भ्राता।
लज्जा पाते नहीं, नहीं, बनते अबलाओं के त्राता॥

(१९)

स्वयं साठ के होने पर भी, विषय-वासना से जलते।
प्रिया-वियोग कठिन लगता है, मरघट के मग में चलते॥

(२०)

पाके किसी नवल कलिका को, वृद्ध-भ्रमर ! हरषाते हो।
होगा क्या भविष्य कलिका का, नहीं ध्यान में लाते हो॥

(२१)

विधवाओं, अबलाओं ने है, किया कौन अपराध अहो !
उनकी अवनति देख तुम्हे क्यों होता है आह्लाद कहो ?

(२२)

दीन हुई, श्रीहीन हुई, मझधार बही भव-सागर में।
आधार गया, सुख-सार गया, और आश रही करुणा-कर में॥

(२३)

देशबन्धु यदि नहीं कभी तुम, इनकी ओर निहारोगे।
दैव-पीड़िता विधवाओं का, दारुण कष्ट निवारोगे।

(२४)

पाप-मूर्ति बन जायेंगी, है जो पावनता मूर्ति अभी।
तुम भी होगे हीन, नहीं पाओगे उन्नति, कीर्ति कभी॥

—"चाँद"

*　　*　　*

विधवाओं की आह!

[ले० श्री० "बहादुर"]

(१)

सावधान! पाण्डित्य परम प्रकटाने वालो!
कर पुरोहिती-धर्म्म, धर्म्म विनसाने वालो!!
बाल-विवाह करा कर, कुछ न लजाने वालो!
गणना विधवाओं की सदा बढ़ाने वालो!!
सभलो बड़वानल बनी, विधवाओं की आह है!
इन आहों की दाह में, भला कहीं निर्वाह है!!

(२)

सुन विधवा की आह आसमाँ हिल जाता है,
और कलेजा सहृदय का मुँह को आता है,

क्रूर हृदय पर नहीं तनिक भी शर्माता है,
कौन नहीं कुत्सित कर्म्मों का फल पाता है ?
फलतः हो सकता नहीं, कुछ भी जाति-सुधार से।
विधवाओं की वेदना, औ आहों की मार से॥

(३)

सनातनी हो तो नियोग मत करो कराओ,
पर झट बाल-विवाह-प्रथा का नाम मिटाओ,
प्रौढ़-विवाह कराय वीर सन्तति उपजाओ,
मृत-प्राय मत दिव्य जाति का नाम धराओ,
यत्न करो अब वह सखे, निज अदम्य उत्साह से।
जिसमें हो न विकल महा, विधवाओं की आह से!

(४)

बाल-व्याह कर वंश न जो निर्बल उपजाते,
प्लेग महामारी न हमें यों चट कर जाते,
कभी विपक्षी मनमानी हमको न सताते,
बतलाते हम उन्हें हमें जो हवा बताते,
सब अनर्थ का मूल बस, विधवाओं की आह है।
ध्यान इधर भी दें जिन्हें, देशोन्नति की चाह है॥

—"चाँद"

* * *

फ़रयादे विधवा

[ले० श्री० मोहनलाल जी मोहियाल]

(१)

अजब दुख दर्द सहती हूँ, ग़मो से नीमजाँ होकर।
टपकते ख़ून के आँसू इन आँखों से रवाँ होकर।
सिधारे प्रानपत, डेरा जमाया यास हसरत ने।
बिसारी सुध गुलिस्ताँ की, उन्होंने बाग़बाँ होकर।

(२)

ससुर ससुराल ने त्यागा व ताने दे करें घायल।
हुई दूबर हूँ मैके में, मुफ़्त बारे गिराँ होकर।
न पुरसाँ हाल है कोई, न दुख और दर्द का साथी।
सुनायें किसको ग़म अपना, जो पूछे मेहरबाँ होकर ?

(३)

बुलावे जो कोई हमको, बराबर पुत्र या भाई।
वह ख़ुद बदनाम होता है, हमारा पासबाँ होकर।
किया मोहताज क़िस्मत ने, ग़ज़ब की बेबसी डाली।
ज़मीं लरज़े फ़लक काँपे शफ़क़ से खूं-फ़िशाँ होकर।

(४)

हज़ारों लानतें रहतीं, हमारे ताक में हर दम।
डुबाने के लिये अस्मत, हमारी बेहमाँ होकर।

ग़रज़ रुसवाई है हरसू, तलख़ जीना हुआ अपना।
न मिलती मौत भी माँगे, है डरती बेगुमाँ होकर।

(५)

पछत्तर वर्ष के रण्डवे, हैं करते शादियाँ देखो ?
मगर हम सितम सहती हैं, ख़ुर्द-साला जवाँ होकर।
गुज़रती दिल पै जो जो है, हमारा दिल ही सहता है।
मज़े से ऐश करते हो, मरें हम नातवाँ होकर।

(६)

तुम्हें तो नींद प्यारी है, हमें अख़्तर शुमारी है।
निकलती जान फ़ाक़ों से, बेहालो रायगाँ होकर।
ग़रज़ मजबूर हों 'मोहन' धरम से, गिरती जाती हैं।
मिटा देंगी तुझे ऐ क़ौम, ईसाई मुसलमाँ होकर।
—"विधवा-सहायक"

* * *

एक बेवा की फ़रयाद

[ले० श्रीयुत "फ़िदा," बी० ए०]

(१)

हिन्दुओं तुमको अगर कुछ भी दिखाई देता,
चर्ख़ पर नालः मेरा यों न दोहाई देता।
मैं वह बेकस हूँ कि जुज़ नालः कोई काम नहीं,
दर्द होता तो तुम्हें भी वह सुनाई देता।

विद्या-विनोद-ग्रन्थ-माला

के

ग्राहक बनिए !

इस ग्रन्थ-माला का एकमात्र उद्देश्य सामाजिक जीवन में क्रान्ति पैदा करा देना, स्त्रियों के स्वत्वों के लिए अन्यायी समाज से झगड़ना और स्त्रियों के हित की बातें उन्हें बतलाना है। इन्हीं सब बातों को सामने रख कर इसमें बराबर नई-नई और उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। यही कारण है कि, इसके स्थायी ग्राहक टकटकी लगाए हमारी नई पुस्तकों की राह देखा करते हैं। आप भी इस ग्रन्थ-माला के स्थायी ग्राहक बन कर इसके लाभ देख लीजिए।

नियमावली

१—आठ आने 'प्रवेश-फ़ीस' देने से कोई भी स्थायी ग्राहक बन सकता है। यह 'प्रवेश-फ़ीस' एक साल के बाद, यदि मेम्बर न रहना चाहें, तो वापस भी कर दी जाती है।

२—स्थायी ग्राहकों को हमारे कार्यालय की प्रकाशित कुल पुस्तकें पौनी क़ीमत से दी जाती हैं।

३—ग्राहक बनने के समय से पहिले प्रकाशित हुए ग्रन्थों का

लेना ग्राहकों की इच्छा पर निर्भर है, परन्तु आगे निकलने वाले ग्रन्थ उन्हें लेने पड़ते हैं।

४—वर्ष भर में कम से कम बारह रुपयों के मूल्य के (कमीशन काट कर) नवीन ग्रन्थ प्रत्येक स्थायी ग्राहक को लेने पड़ते हैं; बारह रुपयों से अधिक मूल्य की पुस्तकें, यदि एक वर्ष में निकलें तो १२) रुपये की किताबें लेकर शेष ग्रन्थों के लेने से ग्राहक, यदि वे चाहें, तो इन्कार कर सकते हैं।

५—किसी उचित कारण के बिना, यदि किसी पुस्तक की वी० पी० वापस आती है, तो उसका डाक-खर्च आदि ग्राहक को देना पड़ता है। वी० पी० वापस करने वालों का नाम ग्राहक-श्रेणी से अलग कर दिया जाता है।

६—'प्रवेश-फ़ीस' के आठ आने पेशगी मनीऑर्डर से भेजना चाहिए।

७—स्थायी ग्राहक पुस्तकों की चाहे जितनी प्रतियाँ, चाहे जितनी बार, पौनी क़ीमत में मँगा सकते हैं।

८—स्थायी ग्राहकों को अपनी पुस्तकों के अलावा हम सभी हिन्दी-पुस्तकों पर, जो हमारे यहाँ विक्रयार्थ प्रस्तुत रहती हैं, एक आना फ़ी रुपया कमीशन भी देते हैं।

पत्र-व्यवहार करने का पता :—

व्यवस्थापिका—

'चाँद' कार्यालय, २८ एलगिन रोड, इलाहाबाद

विद्या-विनोद-ग्रन्थ-माला की विख्यात पुस्तकें

प्रेम-प्रमोद

[ले० श्री० प्रेमचन्द जी]

यह बात बड़े-बड़े विद्वानों और अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने एक स्वर से स्वीकार कर ली है कि, श्री० प्रेमचन्द जी की सर्वोत्कृष्ट सामाजिक रचनाएँ "चाँद" ही में प्रकाशित हुई हैं। प्रेमचन्द जी का हिन्दी-साहित्य में क्या स्थान है, सो हमें बतलाना न होगा। आपकी रचनाएँ बड़े-बड़े विद्वान तक बड़े चाव और आदर से पढ़ते हैं। हिन्दी-संसार में मनोविज्ञान का जितना अच्छा अध्ययन प्रेमचन्द जी ने किया है, वैसा किसी ने नहीं किया। यही कारण है कि, आपकी कहानियों और उपन्यासों को पढ़ने से जादू का-सा असर पड़ता है; बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी आपकी रचनाओं को बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में प्रेमचन्द जी की उन सभी कहानियों का संग्रह किया गया है, जो "चाँद" में पिछले तीन-चार वर्ष में प्रकाशित हुई हैं। इसमें कुछ नई कहानियाँ भी जोड़ दी गई हैं, जिनसे पुस्तक का महत्त्व और भी बढ़ गया है। प्रकाशित कहानियों का भी फिर से सम्पादन किया गया है। प्रत्येक घर में इस पुस्तक की एक प्रति होनी चाहिए। जब कभी कार्य की अधिकता से जी ऊब जावे, एक कहानी पढ़ लीजिए, सारी थकान दूर हो जायगी और तबीयत एक बार फड़क उठेगी! कहानियाँ

में ? (३) पुरुषों का पुनर्विवाह और बहु-विवाह धर्मानुकूल है या धर्म-विरुद्ध ? शास्त्र इस विषय में क्या कहता है ? (४) स्त्री का पुनर्विवाह उपर्युक्त हेतुओं से उचित है या अनुचित ? (५) वेदों से विधवा-विवाह की सिद्धि । (६) स्मृतियों की सम्मति । (७) पुराणों की साक्षी । (८) अङ्गरेजी-क़ानून (English Law) की आज्ञा । (९) अन्य युक्तियाँ । (१०) विधवा-विवाह के विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर :—(अ) क्या स्वामी दयानन्द विधवा-विवाह के विरुद्ध हैं ? (आ) विधवाएँ और उनके कर्म तथा ईश्वर-इच्छा : (इ) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं, (ई) कलियुग और विधवा-विवाह, (उ) कन्यादानविषयक आक्षेप, (ऊ) गोत्र-विषयक प्रश्न, (ऋ) कन्यादान होने पर विवाह वर्जित है, (ॠ) बाल-विवाह रोकना चाहिए, न कि विधवा-विवाह की प्रथा चलाना, (ऌ) विधवा-विवाह लोक-व्यवहार के विरुद्ध है, (ॡ) क्या हम आर्यसमाजी हैं, जो विधवा-विवाह में योग दें ? (११) विधवा-विवाह के न होने से हानियाँ :—

(क) व्यभिचार का आधिक्य, (ख) वेश्याओं की वृद्धि, (ग) भ्रूण-हत्या तथा बाल-हत्या, (घ) अन्य क्रूरताएँ, (ङ) जाति का ह्रास और (१२) विधवाओं का कच्चा चिट्ठा ।

इस पुस्तक में बारह अध्याय हैं, जिनमें क्रमशः उपर्युक्त

विषयों की आलोचना बड़े ही ओजस्वी एवं मार्मिक ढङ्ग से की गई है। कई तिरङ्गे और सादे चित्र भी हैं।

इस मोटी-ताज़ी सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु० है; पर स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात् २।) रु० में दी जावेगी!

*
* *

शान्ता

(नवीन-संस्करण)

शिक्षाप्रद सामयिक उपन्यास

[ले० श्री० रामकिशोर जी मालवीय, सहकारी-सम्पादक 'अभ्युदय']

इस पुस्तक में देश-भक्ति और समाज-सेवा का सजीव वर्णन किया गया है। देश की वर्तमान अवस्था में हमें कौन-कौन सामाजिक सुधार करने की परमावश्यकता है और वे सुधार किस प्रकार किए जा सकते हैं आदि आवश्यक एवं उपयोगी विषयों का लेखक ने बड़ी योग्यता के साथ दिग्दर्शन कराया है। उपन्यास होते हुए भी, यह पुस्तक एक व्याख्यान है और इसके पढ़ने से देश की वास्तविक स्थिति आँखों के सामने चित्रित हो जाती है। शान्ता और गङ्गाराम का शुद्ध और आदर्श प्रेम देख कर हृदय गद्गद् हो जाता है। इसमें इस दम्पति का सच्चरित्र और समाज-सेवा

की लगन का भाव ऐसी उत्तमता से वर्णन किया गया है कि, पुस्तक छोड़ने की इच्छा नहीं होती। साथ ही साथ हिन्दू-समाज के अत्याचार और षड्यन्त्र से शान्ता का उद्धार देख कर उसके साहस, धैर्य और स्वार्थ-त्याग की प्रशंसा करते ही बनती है। पुस्तक बालक-बालिकाएँ, स्त्री-पुरुष सभी के लिए शिक्षाप्रद हैं। छपाई-सफ़ाई अत्युत्तम और पृष्ठ-संख्या १८५ होने पर भी इसका मूल्य ॥|) बारह आने है। स्थायी ग्राहकों से ॥-) ही लिए जाते हैं!

*

* *

उमासुन्दरी

(नवीन संस्करण)

[स्त्रियोपयोगी सामाजिक उपन्यास]

(ले० श्रीमती शैलकुमारी देवी)

इस उपन्यास की लेखिका छपरा से निकलने वाले 'महिला-दर्पण' की सञ्चालिका हैं। इस पुस्तक में पुरुष-समाज की विषय-वासना, अन्याय तथा भारतीय रमणियों के स्वार्थ-त्याग और पातिव्रत का ऐसा सुन्दर और मनोहर वर्णन किया गया है कि, उसे पढ़ते ही बनता है। सुन्दरी सुशीला का अपने पति सतीश पर अगाध प्रेम एवं विश्वास, उसके विपरीत सतीश बाबू का उमा-

सुन्दरी नामक युवती पर मुग्ध हो जाना, उमा सुन्दरी का अनुचित सम्बन्ध होते हुए भी सतीश को कुमार्ग से बचाना और उपदेश देना और उसे सन्मार्ग पर लाना आदि सुन्दर और शिक्षाप्रद घटनाओं को पढ़कर हृदय उमड़ पड़ता है। इतना ही नहीं; इसमें हिन्दू-समाज की स्वार्थपरता, काम-लोलुपता, विषय-वासना तथा अनेक कुरीतियों का हृदय-विदारक वर्णन किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि, यह शिक्षाप्रद उपन्यास भारतीय महिलाओं के ही लिए नहीं; वरन हिन्दू-समाज के लिए बहुत उपकारी सिद्ध होगा। पुस्तक बहुत ही सरल और रोचक भाषा में लिखी गई है। छपाई-सफाई सब सुन्दर है। इस पर भी इस अत्युत्तम पुस्तक का मूल्य केवल ।।।) आने है। स्थायी ग्राहकों को ।।-) में ही दी जाती है।

मानिक-मन्दिर

(एक क्रान्तिकारी मौलिक सामाजिक उपन्यास)

[लेखक श्री० मदारीलाल जी गुप्त]

इस रत्न की विमल ज्योति में आप सरल भाषा और रोचक शैली में अनेक भावों के अच्छे, मनोहर और विचित्र दृश्य देख सकेंगे! मानिक का असीम साहस देख कर आप

स्तम्भित रह जाँयगे! मानिक का अपूर्व चातुर्य आपको मुग्ध कर लेगा! मानिक के अद्भुत कार्य-कलाप पर आपका हृदय बाँसों उछलने लगेगा। मानिक के अप्रतिम कृत्यों से आपको ज्ञात हो जायगा कि, उसका हृदय कायर नहीं था! अत्याचार सह कर वह चुपचाप बैठ रहने वाली स्त्री न थी। अपने शत्रुओं से बदला लेने का उसने भरसक प्रयत्न किया और कृतकार्य हुई!

साथ ही साथ अनुचित प्रेम से मनुष्य की अधोगति के चित्र से आपकी आँखें खुल जाँयगी। उलझाने वाली मनोरञ्जक घटनाओं के साथ ही साथ इसमें ऐसी उपयोगी बातों का ख़ाका नज़र आवेगा, जो बिगड़े का सुधार और बिगड़ने वालों का सावधान कर देगा। स्त्रियों का सुधार बहुत कुछ पुरुषों की सच्चरित्रता और उनकी विज्ञता पर निर्भर है; किन्तु इससे मालूम होगा कि, स्त्रियाँ यदि चाहें तो अपनी शक्ति को पहिचान कर लम्पट और अज्ञानी पुरुषों के दाँत खट्टे कर सकती हैं और इस प्रकार उन्हें सुमार्ग पर लाकर समाज तथा देश का मुखोज्ज्वल कर सकती हैं।

यह उत्तम और गुणकारी रत्न प्रत्येक स्त्री-पुरुष को अपने पास रखना चाहिए। हमारा आपसे विशेष अनुरोध है कि, इसे ज़रूर पढ़ें! इसको पढ़ कर आप अवश्य प्रसन्न होंगे—इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं है। सर्वसाधारण की पहुँच से बाहर न होने पावे—इस विचार से, सर्वगुण-सम्पन्न रहने पर भी

विद्या-बिनोद-ग्रन्थ-माला की विख्यात पुस्तकें

इसका मूल्य केवल २) रुपये। स्थायी ग्राहकों से इसके १।।) ही लिए जाते हैं।

*

* *

बनमाला

[ले० श्री० चण्डीप्रसाद जी, 'हृदयेश', बी० ए०]

इस पुस्तक की उपयोगिता और सरसता को आप लेखक के नाम ही से मालूम कर सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि, 'हृदयेश' जी ने अपनी लेखन-शैली द्वारा हिन्दी-संसार को चकित कर दिया है और वे स्वर्ण-पदक भी प्राप्त कर चुके हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में 'हृदयेश' जी की लिखी हुई "चाँद" में प्रकाशित सभी गल्पों का संग्रह किया गया है। इन गल्पों-द्वारा सामाजिक अत्याचारों तथा कुरीतियों का हृदयविदारक दिग्दर्शन कराया गया है और इस विश्व के रङ्गमञ्च पर होने वाले पाप और पुण्यमय कृत्यों का मधुर और सुन्दर विवेचन किया गया है। जिन सज्जनों ने 'हृदयेश' जी के उपन्यासों और गल्पों को पढ़ा है, उनसे हमारी प्रार्थना है कि, इन छोटी परन्तु सारगर्भित एवं सरल भाषायुक्त गल्पों को भी पढ़कर अवश्य लाभ उठावें। पुस्तक के अन्त में २-३ छोटे-छोटे रूपक (नाटक) भी दिए गए हैं।

पुस्तक छप रही है। इसकी छपाई-सफाई अत्यन्त सुन्दर होगी

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

और लगभग ४०० पृष्ठ होंगे। सजिल्द पुस्तक का मूल्य लगभग ३) रु० होगा।

*
* *

अबलाओं पर अत्याचार

(स्त्री-समाज पर होने वाले अत्याचारों का हृदयविदारक वर्णन)

[ले० श्री० जी० एस० पथिक बी० ए०, बी० (कॉम)]

इस पुस्तक में भारतीय स्त्री-समाज का इतिहास बड़ी रोचक भाषा में लिखा गया है। इसके साथ स्त्री-जाति के महत्व को, उससे होने वाले उपकार, जागृति एवं सुधार को बड़ी उत्तमता और विद्वत्ता से प्रदर्शित किया गया है। पुस्तक में वर्णित स्त्री-जाति की पहिली अवस्था, उन्नति एवं जागृति को देख कर हृदय छट-पटा उठता है और उस काल को देखने के लिए लालायित हो जाता है।

साथ ही साथ वर्तमान स्त्री-समाज की करुणाजनक स्थिति का जो सच्चा और नङ्गा चित्र चित्रित किया गया है, वह हृदय में क्रान्ति पैदा करता और करुणा एवं घृणा का मिश्रित भाव हृदय में अङ्कित कर देता है।

इतना ही नहीं, स्त्री-समाज के प्रत्येक पहलू को लेखक ने बड़ी योग्यता से प्रतिपादित किया है। अधिक न कह कर, यदि कहा

जाय कि, पुस्तक स्त्री-समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस पुस्तक को प्रत्येक गृहस्थी में रखना चाहिए।

छपाई-सफ़ाई अत्युत्तम होगी और लगभग ५०० पृष्ठ होंगे। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३); स्थायी ग्राहकों से २।) मात्र !

*

* *

मङ्गल-प्रभात

[ले० श्रीयुत चण्डीप्रसाद जी, बी० ए०, 'हृदयेश']

इस सुन्दर उपन्यास में मानव-हृदय की रङ्गभूमि पर वासना के नृत्य का दृश्य दिखलाया गया है! सामाजिक अत्याचार और बेमेल विवाह का भयङ्कर परिणाम पढ़कर जहाँ हृदय काँप उठता है, वहाँ विशुद्ध प्रेम, अतुल सहानुभूति और समाज की हित-कामना इत्यादि के सुन्दर दृश्यों को देखकर हृदय में एक अनिर्वचनीय शान्ति का स्रोत बहने लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि, प्रस्तुत उपन्यास में इस विश्व की रङ्गभूमि पर अभिनीत होने वाले पाप और पुण्य के कृत्यों का बड़ा ही मधुर-सुन्दर विवेचन किया गया है।

भाषा सरस, सरल एवं कवितामयी है। बङ्ग-भाषा के ऐसे-

निन्दनीय व्यवहार करती हैं, किस प्रकार उन्हें घरेलू काम-काज से घृणा उत्पन्न हो जाती है, अपने पति से वे किस प्रकार खिदमतें कराती हैं और उनका गार्हस्थ-जीवन कितना दुखपूर्ण हो जाता है !

दूसरी ओर यह दिखाया गया है कि, पढ़े-लिखे युवकों के साथ फूहड़ तथा अनपढ़ और गँवार कन्याओं का बेजोड़ विवाह जबर्दस्ती कर देने से दोनों का जीवन कैसा दुखमय हो जाता है।

इन सब बातों के अलावा स्त्री-समाज के प्रत्येक महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाल कर उनकी बुराइयाँ दूर करने के उदाहरण दिए गए हैं। चित्रों को देखकर आप हँसते-हँसते लोट-पोट हो जायँगे।

इस पुस्तक में एक खास विशेषता यह है कि, समाज में फैली हुई लगभग सभी बुराइयाँ आपके आँखों के आगे नाचने लगेंगी। दो तिरङ्गे और चार सादे चित्रों से सुसज्जित लगभग २५०पृष्ठ की इस सुन्दर पुस्तक का मूल्य केवल १॥) स्थायी ग्राहकों से १=)

मनोरञ्जक कहानियाँ

[ले० श्री० अध्यापक ज़हूरबख़्श जी, "हिन्दी-कोविद"]

श्री० जहूरबख़्श जी की लेखन-शैली बड़ी ही रोचक और मधुर है। आपने बालकों की प्रकृति का अच्छा अध्ययन भी किया

है। आपने यह पुस्तक बहुत दिनों के कठिन परिश्रम के बाद लिखी है। इस पुस्तक में कुल १७ छोटी-छोटी शिक्षाप्रद, रोचक और सुन्दर हवाई कहानियाँ हैं जिन्हें बालक-बालिकाएँ बड़े मनोयोग से सुनेंगे। बड़े-बूढ़ों का भी इससे यथेष्ट मनोरञ्जन हो सकता है।

पृष्ठ-संख्या २०० से अधिक, छपाई-सफ़ाई अच्छी, मूल्य केवल १), स्थायी ग्राहकों से ॥।)

*

* *

मनोरमा

(एक क्रान्तिकारी मौलिक सामाजिक उपन्यास)

[ले० श्रीयुत चण्डीप्रसाद जी, 'हृदयेश', बी० ए०]

यह उपन्यास निस्सन्देह हिन्दू-समाज में क्रान्ति उत्पन्न कर देगा। समाज का नङ्गा चित्र जिस योग्यता से इस पुस्तक में अङ्कित किया गया है, हम दावे के साथ कह सकते हैं कि, वैसा एक भी उपन्यास अब तक हिन्दी-संसार में नहीं निकला है। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के भयङ्कर दुष्परिणामों के अलावा भारतीय हिन्दू-विधवाओं का जीवन जैसा आदर्श और उच्च दिखलाया गया है, वह बड़ा ही स्वाभाविक है।

इस पुस्तक के लेखक हिन्दी-संसार के रत्न हैं, अतएव भाषा के सम्बन्ध में कुछ भी कहना वृथा है! पुस्तक की भाषा इतनी

होने पर भी उसका देवदास पर अपने पति से अधिक दावा देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है! पार्वती के वियोग के कारण देवदास का विक्षिप्तावस्था में करुणाजनक पतन पढ़कर हृदय व्याकुल हो जाता है। सच्चे प्रेम के अद्भुत प्रभाव के कारण चन्द्रमुखी नाम की एक पतिता वेश्या को धर्ममय जीवन को अपनाते देख कर चमत्कृत हो जाना पड़ता है। अधिक प्रशंसा कर कागज़ काला करने से कोई लाभ नहीं। पुस्तक पढ़ने ही से सच्चा आनन्द मिलेगा और उसका महत्व मालूम होगा। पुस्तक की भाषा भी सरल, ललित और मुहावरेदार लिखी गई है। लगभग पौने दो-सौ पृष्ठ की इस उत्तम पुस्तक का मूल्य केवल १) रु० है; पर ग्रन्थ-माला के स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात ।॥) में ही दी जाती है।

*
* *

राष्ट्रीय गान

यह पुस्तक चौथी बार छप कर तैयार हुई है। इसी से इसकी लोक-प्रियता का अनुमान हो सकता है। इसमें वीर-रस से सने हुए देश-भक्ति पूर्ण सुन्दर गानों का अपूर्व संग्रह है; जिन्हें पढ़ कर आपका दिल फड़क उठेगा। यह गाने हारमोनियम पर भी गाने क़ाबिल हैं और हर समय भी गुनगुनाए जा सकते हैं। शार्दा-

करना आदि-आदि अनेक रोचक विषयों का प्रतिपादन बड़ी योग्यता से किया गया है। पुस्तक इतनी रोचक है कि, उठा कर छोड़ने को दिल नहीं चाहता।

टाइटिल पेज पर वृद्ध-विवाह का एक तिरङ्गा चित्र भी दिया गया है। पृष्ठ-संख्या २००, काग़ज़ बहुत चिकना २८ पाउण्ड का. छपाई-सफ़ाई सब सुन्दर होते हुए भी मूल्य केवल एक रुपया रक्खा गया है; पर, स्थायी ग्राहकों को पुस्तक पौने मूल्य अर्थात् केवल बारह आने में ही दी जाती है।

*

* *

प्राणनाथ

(नवीन संस्करण)

[लेखक श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

श्रीवास्तव महोदय का परिचय हिन्दी-संसार को कराना लेखक का अपमान करना है। पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि, हास्य-रस के नामी लेखक होने के अलावा श्रीवास्तव महोदय कट्टर समाज-सुधारक भी हैं। "लम्बी दाढ़ी" आदि अनेक पुस्तकों में भी लेखक ने सामाजिक कुरीतियों का नङ्गा चित्र जनता के सामने रक्खा है।

इस वर्तमान पुस्तक (प्राणनाथ) में भी समाज में होने वाले

भरपूर लाभ उठा सकती हैं। मन चाहा पदार्थ पुस्तक सामने रख कर आसानी से तैयार किया जा सकता है। दाल, चावल, रोटी, पुलाव, मीठे, नमकीन चावल, भाँति-भाँति के शाक, सब तरह की मिठाइयाँ, नमकीन, बङ्गला-मिठाई, पकवान, सैकड़ों तरह की चटनी रायते, आचार-मुरब्बे आदि बनाने की विधि बड़ी उत्तमता से इस पुस्तक में लिखी गई है। प्रत्येक महिला को यह पुस्तक सदैव पास रखनी चाहिए। लगभग ८०० पृष्ठ की सुन्दर सजिल्द पुस्तक की क़ीमत केवल ५) रु०। स्थायी ग्राहकों से ३।।।) रु०!

*
* *

सती-दाह

[लेखक श्री० शिवसहाय जी चतुर्वेदी]

हिन्दी में 'सती' विषय की यह पहली ही पुस्तक है। 'सती-प्रथा' का इतिहास इस पुस्तक में बड़ी उत्तमता से सप्रमाण अङ्कित किया गया है। इसके अतिरिक्त 'सती-प्रथा' द्वारा होने वाले अनर्थ आदि का दिग्दर्शन भी कराया गया है। इस पुस्तक को पढ़ने से हृदय में करुणा का स्रोत उमड़ आता है। पुस्तक-लेखन की प्रणाली और भाषा इतनी उत्तम और प्रभावोत्पादक है कि, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह पुस्तक प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी को पढ़नी चाहिए। २०० पृष्ठ की सचित्र और उत्तम सजिल्द

विद्या-विनोद-ग्रन्थ-माला की विख्यात पुस्तकें

पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रु०; पर, स्थायी-ग्राहकों से १॥=) ही लिया जायगा !

*
* *

मन-मोदक

[सम्पादक श्री० प्रेमचन्द जी]

यह पुस्तक बालक-बालिकाओं के लिए खिलौना है। जैसा पुस्तक का नाम है, वैसा ही इसमें गुण है। इसमें लगभग ४० मनोरञ्जक कहानियाँ और एक से एक बढ़ कर ४० हास्य-प्रद चुटकुले हैं। एक कहानी बालकों को सुनाइए वे हँसी के मारे लोट-पोट हो जायेंगे। यही नहीं कि, उनसे मनोरञ्जन ही होता हो, वरन उनसे बालकों के ज्ञान और बुद्धि की वृद्धि के अतिरिक्त, हिन्दी-उर्दू के व्याकरण-सम्बन्धी ज़रूरी नियम भी याद हो जाते हैं। इस पुस्तक को बालकों को सुनाने से 'आम के आम और गुठलियों के दाम' वाली कहावत चरितार्थ होती है। छपाई-सफ़ाई सुन्दर, १६० पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक की क़ीमत केवल बारह आने, स्थायी-ग्राहकों से ॥=) आने !

*
* *

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

विद्या-विनोद-ग्रन्थ-माला की विख्यात पुस्तकें

पतिगतप्राणा मेहरुन्निसा सतीत्व धर्म को ख़ूब पहचानती थी। पर हाय, उसका रूप ही उसका काल हुआ! वह अबला जहाँगीर के अन्तःपुर में लाई गई। उसने सम्राट् को अपना मुँह तक दिखाना उचित नहीं समझा। जहाँगीर ने क्षोभ और क्रोध से उसकी उपेक्षा की। मेहरुन्निसा ने दुखी होकर अपनी प्यारी सखी कल्याणी के आग्रह से सम्राट् की सम्राज्ञी होना स्वीकार कर लिया। फिर भी सम्राट् ने उपेक्षा की। एक दिन मेहरुन्निसा ने अत्यन्त दुखित होकर, बड़े ही करुणापूर्ण शब्दों में कहा—"आज सभी शान्त होकर सो रहे हैं। बाँदियों को आनन्द मनाने के लिए कह चुकी हूँ। इसकी अपेक्षा और सुन्दर सुयोग कहाँ मिलेगा! आज मरूँगी। हे जगदीश्वर! हे दयामय! हे अगति की गति! तुम साक्षी हो। यह अविश्रान्त दुख अब नहीं सहा जाता। अब यह घृणित अवस्था अच्छी नहीं लगती। कहाँ हो तुम हृदयेश्वर! बड़े आदर के साथ हृदय में रखते थे—एक पहर के लिए भी मुझे न छोड़ते थे! आज तुम्हारी समाधि के पास, सुख के साथ बर्दवान में नहीं मर सकी। यही बड़ा दुख है। और तुम दुनिया के बादशाह, असीम क्षमताशाली दिल्लीश्वर! तुम्हारी करुणा को धन्य है! तुम्हारे प्रेम को धन्य है! तुम्हारे मनुष्यत्व को धन्य है!"

आत्माभिमानिनी वैधव्य-दुख-कातरा, प्रताड़िता, रूपसी

विद्या-विनोद-ग्रन्थ-माला की विख्यात पुस्तकें

मेहरुन्निसा का यह करुण-रस-पूर्ण चरित्र एकबार दिल को दहला देता है। इसके पश्चात यह उदात्त-चित्ता मेहरुन्निसा सम्राट् की प्रेयसी और श्रेयसी बनकर किस प्रकार नूरजहाँ के नाम से भारत की सम्राज्ञी बनी यह सब घटनाएँ इस उपाख्यान में बड़े ही कवित्वपूर्ण शब्दों में वर्णित हैं। प्रत्येक रमणी को इस रमणी-रत्न का चरित्र पढ़कर अपूर्व लाभ उठाना चाहिए। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

※

※ ※

स्मृति-कुञ्ज

(छप रही है)

[लेखक "एक निर्वासित ग्रेजुएट"]

नायक और नायिका के पत्रों के रूप में यह एक दुःखान्त कहानी है। प्रणय-पथ में निराशा के मार्मिक प्रतिघातों से उत्पन्न मानव-हृदय में जो-जो कल्पनाएँ उठती हैं और उठ-उठ कर चिन्ता-लोक के अस्फुट साम्राज्य में विलीन हो जाती हैं—वे इस पुस्तक में भली-भाँति व्यक्त की गई है। हृदय के अन्तः प्रदेश में प्रणय का उद्भव, उसका विकास और उसकी अविरत आराधना की अनन्त तथा अविच्छिन्न साधना में मनुष्य कहाँ तक अपने

पहिले ही सन्देह एवं निराशा के अनन्त-तम में विलीन हो गई। इसका परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए। कमला को उन्माद-रोग हो गया। उसके अन्तिम पत्र प्रणय की स्मृति और उन्माद की विस्मृति की सम्मिलित अवस्थाओं में लिखे गए हैं। जो हो, उन पत्रों में जिन भावों की प्रतिपूर्ति की गई है, वे विशाल और महान हैं। उन पत्रों के प्रत्येक शब्द से एक वेदना उठती है, उस वेदना में मानव-जीवन का नीरव रोदन प्रतिध्वनित होता है; और उस प्रतिध्वनि में अनन्त का अव्यक्त सङ्गीत प्रतिपादित होने लगता है। यह एक अनुपम पुस्तक है। मूल्य लगभग २)

निर्मला

[एक उत्कृष्ट सामाजिक उपन्यास]

[सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्रीयुत प्रेमचन्द जी]

इस मौलिक उपन्यास में लब्धप्रतिष्ठ लेखक ने समाज में बहुलता से होने वाले वृद्ध-विवाहों के भयङ्कर परिणामों का एक वीभत्स एवं रोमाञ्चकारी दृश्य समुपस्थित किया है। जीर्ण-काय वृद्ध अपनी उन्मत्त काम-पिपासा के वशीभूत होकर किस प्रकार

विद्या-विनोद-ग्रन्थ-माला की विख्यात पुस्तक

प्रचुर धन-व्यय करते हैं, किस प्रकार वे अपनी वामाङ्गना षोड़शी नवयुवती नवल लावण्य सम्पन्ना के कोमल अरुण वर्ण अधरों का सुधा-रस पोशण करने की उद्भ्रान्त चेष्टा में अपना विष उसमें प्रविष्ट करके, उस युवती का नाश करते हैं, किस प्रकार गृहस्थी के परम पुनीत प्राङ्गण में कौरव-काण्ड प्रारम्भ हो जाता है, और किस प्रकार ये वृद्ध अपने साथ ही साथ दूसरों को लेकर डूब मरते हैं—किस प्रकार उद्भ्रान्ति की प्रमत्त सुखद कल्पना में उनका अवशेष ध्वंस हो जाता है, यह सब इस उपन्यास में बड़े ही मार्मिक ढङ्ग से अङ्कित किया गया है। चाँद के अनेक मर्मज्ञ पाठकों के निरन्तर अनुरोध से यह पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया है।

प्रचार की दृष्टि से इसका मूल्य लगभग २) रु० रक्खा जायगा। शीघ्रता कीजिए। विलम्ब करने से पछताना पड़ेगा।

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद